

प्राक्कथन

पावनता एवं प्रोज्ज्वलता के विशाल तथा आदर्श तपोवनों में विहार करने वाली, स्वर्गलोक और मर्त्यलोक को परस्पर अनुस्यूत करने वाली, नाना भाव-भगियों से छलाछल भरी हुई, दिव्य-संगीतमयी तथा ससार की प्रत्येक वस्तु के साथ अठखेलियाँ करने वाली महाकवि भास की प्रतिभा की तुलना इस जीवलोक में दुर्लभ ही है ।

सच बात तो यह है कि महाकवि की प्रतिभा, सब प्राणियों के साथ, चाहे वे ससार में अवहेलना के पात्र समझे गए हों अथवा स्पृहणीय, एक-सा व्यवहार करती है । वह न तो किसी को साक्षात् भगवान् ही समझती है और न किसी को सर्वथा जघन्य, अपेक्षणीय एवं घृणा का भाजन ही ।

हम पहले कह चुके हैं कि महाकवि की प्रतिभा प्रत्येक वस्तु के साथ अठखेलियाँ करती है, उसके साथ दौड़ लगाती है, ऊपर उछलती है, नीचे कूदती है और सर्वथा तन्मय एवं तद्रूप हो जाती है ।

सहृदय वाचक वृन्द ! आप कहेंगे कि यह तो भास पर इस प्रकार

सामने अग्नि में धाँय धाँय करके जल रही है और उसका जलता हुआ पहिया सूर्य के समान जगमगा रहा है !

वायु-त्रिकंपित वाँस थे, जलते छू मख-ज्वाल ।

जाते जन के भाग्य ज्यों, नीचे औ उत्ताल ॥

यहाँ पर, जरा ध्यान से देखिएगा कि—कवि की प्रतिभा-बाला, वायु से झौटे दिए गए वासों के झूले पर, किस प्रकार जगमग करती झूल रही है ! और देखिए,

‘स्रुक, अरणी, कुश-जाल का, करे अनल उपभोग ।

वसन, विभूषण का यथा, व्यसनी, निर्धन लोग ॥’

यहाँ मुनिवर भास की प्रतिभा-श्रुति कितना सुंदर एवं कल्याण-मय उपदेश दे रही है ! अनल स्रुक, अरणी आदि यज्ञ-सवधी वस्तुओं का इस प्रकार उपभोग कर रहा है, जैसे कि व्यसनी मनुष्य, निर्धन होकर, वस्त्र और आभूषण बेच बेचकर अपना पेट भरने लगता है । क्या संसार में, किसी भी कवि की प्रतिभा-नटी ने, लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करके, उनकी भक्ति के प्रसाद-स्वरूप उन्हें इतना सुंदर उपदेश दिया है ? प्राचीन काल में भारतीय रंग-मंच का क्या वास्तविक उद्देश्य था—इसका आभास हमें महाकवि की इस प्रकार की अनेक सूक्तियों से मिलता है । नाट्यशास्त्र में लिखा है कि —

त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम् ।

ना ना भा वो प सं प षं नानावस्थान्तरात्मकम् ॥

लो क वृ त्ता नु क र णं नाट्यमेतन्मया कृतम् ।

उ त्त मा ध म म ध्या नां नराणां कर्मसंश्रयम् ॥

भास का
चरित्र-चित्रण

अपने पात्रों के चरित्र-चित्रण में तो भास ने कमाल ही कर दिया है। सांसारिक दृष्टि-कोण से उनका दृष्टि-कोण सर्वथा विभिन्न है। हम कह चुके हैं कि—वे न तो किसी को संसार में सर्वथा उपेक्षणीय एवं तिरस्कार का भाजन ही समझते हैं और ना ही किसी को साक्षात् भगवान् ही। 'प्रतिभा' नाटक में वे जहाँ राम की स्वर्गीयता का वर्णन करते हैं, वहाँ मर्त्य-लोक-संबंधी विचारों से भी उन्हें सर्वथा अछूता नहीं रखते। इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं कि राम के चरित्र-चित्रण में कुछ त्रुटि है। राम का चरित्र आदर्श-रूप एवं सर्वथा अनुकरणीय है। किंतु, किसी भी प्राणी को सर्वथा भगवान्-रूप बना कर सर्व साधारण के चरित्र को उतना उन्नत नहीं बनाया जा सकता, जितना कि उनके-जैसे पुरुष की विशेषताओं को चित्रित करके उन्हें सत्य पर चलाया जा सकता है।

अपने इस निराले दृष्टि-कोण के कारण ही भास ने कैकेयी आदि के चरित्र को भी सर्वथा गहणीय एवं उपेक्षणीय नहीं रहने दिया है। अपनी प्रतिभा के बल पर उसमें भी उन्होंने स्पृहणीयता उत्पन्न कर दी है। वस, भास के और अन्य कवियों के दृष्टि-कोण में यही एक महान अंतर है।

प्रस्तुत नाटक 'पंचरात्र' में भी महाकवि ने महाभारत के प्रतिकूल दुर्योधन तथा कर्णादि के चरित्र को भी स्पृहणीय एवं अनुकरणीय बना दिया है।

दुर्योधन का
चरित्र चित्रण

कवि ने, दुर्योधन के जीवन-रूपी चित्र-पट में, अपनी रंग-बिरंगी तूलिका से किस चातुर्य से रंग भरकर, उसमें आकर्षण उत्पन्न कर दिया है, यह

‘दुर्योधन—सारथि ! कहो, कहो । अभिमन्यु को कौन हर ले गया ?
मैं ही उसे छुड़ाऊँगा । क्योंकि,

कुल-रिपुता इसके पितरों से मैंने ठानी,
दोष मुझे ही इससे दूँगे सब जन ज्ञानी ।
किंतु प्रथम वह मम सुत, पीछे पांडवगण का,
कुल-विरोध मैं क्या कसूर है बालकजन का ॥’

कैसे पुनीत एवं स्वर्गीय उद्धार है ! भास ! तुम धन्य हो, मुनि
हो, आदर्श के पुतले हो । तुम्हारा प्रत्येक अक्षर ससार के कल्याण के
लिए, दिव्य आदर्श की निर्मरिणी बहा रहा है । अहो ! कविता-कामिनी
की अलौकिक मुसकान तुम्हारे साथ ही विलुप्त होगई !

<p>कर्म का चरित्र-चित्रण</p>	<p>दुर्योधन के गुट में शामिल होने के कारण महा- भारत में कर्म का चरित्र भी गर्हणीय ही-सा हो गया है । भास ने इनके चरित्र में भी स्पष्टहणीयता उत्पन्न करके एक प्रकार का आदर्श उपरिथत किया है ।</p>
----------------------------------	---

द्रोणाचार्य के, दक्षिणा में पांडवों का आधा राज्य देने की भिक्षा
माँगने पर, जब दुर्योधन शकुनि के साथ सलाह कर रहा था तो वह
कर्म को चुप देखकर कहता है—‘मित्र अंगराज ! आपने अभी कुछ
नहीं कहा !’ देखिए, कर्म इसका क्या उत्तर देते हैं:—

‘कर्म—मैं अब क्या कहूँगा !

श्रीराम ने जिसका प्रथम अनुभव तथा पालन किया,
प्रतिषेध उस सौभ्रात्र का करता नहीं मेरा दिया ।

‘राज्याद्ध देना चाहिए अथवा न आप प्रमाण हैं,
समर स्थली में यम सहायक ये हमारे प्राण हैं ॥’

कितना सचित उचर है किंतु कितना सहृदयता पूण !

और क्षात्रिण अभिमन्यु के बड़ी होजान पर कय दुर्योधन से क्या
कहत है— गांधारी पुत्र !

स्य जन भीति से, पुत्र-प्रेम से मत तुम ठानो—
उमे लुडाने की, निज हिन रण बदी जानो ।
रक्षित वह अभिमन्यु नहीं हा, हमसे अपना ,
घारो बलकल, त्याग धनुष का अथ तो सपना ॥’

कैसी मधुर एवं तात्पर्य भासना है ! पवित्र निरद्वल प्रममय एवं
कर्तव्य-परायण हृदय का कैसा विद्वज्ज रसात है !

महाभारत का सब स जघन्य धृष्टित एवं उपद्रव्याय समस्ता
जान बाबा अब कवल एक ही पात्र रह जाता है और वह है शकुनि ।
वद्यपि वास्तविकता को परस्परन वाल कवि न उसक चरित्र म रष्टहृषी
यता एवं अनुकरणीयता उत्पन्न नहीं की और उल्लग उमे अपराधी ही
टहराया है किंतु फिर भी—समर में कोई प्राणी निरा घुरा हा होता है
और वह कभी भी सहृदय नहीं हो सकता—हम जाक-बाग को के
नहीं सह सक । अभिमन्यु क बदी हा जान पर, क्षत्रिण मुनि जी
शकुनि के मुँह स क्या कहजात है —

‘अधुन-सुन—यह जान विराट नरेश्वर तज दे !
रण-बदी उसे—याद कर दामोदर तज दे !
तज दे कुपित हली से अधथा भय स्वा के !
थली भीम या ल आप, कर अरि-बध जा के !’

यहाँ पर शकुनि के गुणज्ञ हृदय का स्पष्ट आभास मिलता है । यद्यपि महाकवि ने भीष्म, द्रोण, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, अभिमन्यु, विराट तथा उत्तर आदि सभी नाटकीय पात्रों के चरित्र-चित्रण में अद्भुत चातुर्य का परिचय दिया है, किंतु इनके विषय में विस्तार के भय से हमें यहाँ कुछ नहीं कहना । फिर भी अभिमन्यु और उत्तर इन दो राजकुमारों के विषय में हमसे बिना कुछ कहे नहीं रहा जाता ।

सहृदयगण ! यदि आप भास की तूलिका की
 अभिमन्यु का स्वच्छ एव मधुर छवि का साक्षात् दर्शन किया
 चरित्र-चित्रण चाहते हैं, तो आप अभिमन्यु के चरित्र को पढ़ें ।

देखिए, महाकवि अथवा चतुर चित्तेरे ने, उसके चरित्र को चित्रित करने में कैसे छविमय रंग भरे हैं ! बड़ी अभिमन्यु के साथ छद्म-वेपी भीम और अर्जुन बातचीत कर रहे हैं । वे दोनों उसे उसका नाम लेकर पुकारते हैं और उसकी माता का कृशल-समाचार पूछते हैं । इस पर अभिमन्यु अत्यंत क्रुद्ध होता है, और कहता है —

‘अभिमन्यु—क्यों, क्यों ! माता के विषय में पूछते हो ?

धर्मराज क्या भीम तुम, अथवा अर्जुन तात ।

पितृ-सम स्वर में पूछते, जो मुझसे खी-वात ॥’

बृहत्तला-वेप-धारी अर्जुन फिर देवकी-पुत्र कृष्ण का मगल-समाचार पूछ बैठते हैं । अभिमन्यु इसका ‘क्यों, उनका भी नाम लेते हो ? जी, हाँ ! जी, हाँ ! कुशलपूर्वक है—आपका बधु !’—इस प्रकार व्यंगपूर्वक उत्तर देता है । इस पर भीम और अर्जुन दोनों हँस देते हैं । अभिमन्यु इस हँसी को सहन न करके कहता है —

‘अभिमन्यु—आप लोग, क्यों अब मेरी हँसी उदा रहे हैं ?

बृहन्नला—क्या कुछ भी कारण नहीं ?

पाथ जनक, मानुल तथा मधुसूदन सुकुमार !
अस्त्र निपुण क्या युवक की समुचित रण में द्वार ? ॥'

यह सुनकर अभिमन्यु भभक उठता है और निम्न लिखित उत्तर
दता है —

'अभिमन्यु—बद करो—स्वयं की बकवाद !

निज स्तुति करना है नहीं, कुल में मम सौजन्य ।

शर-नाण में शर-नाण लखो, नाम न होमा अय ॥'

कितनी अपूर्व वीरता है ! कितना गौरव है ! शर्य का ज्वालासुधी
किस प्रकार पूरा चाहता है ! एसा प्रतीत होता है कि साक्षात् मूर्ति
मान् पराक्रम सामने घुँट रहा हो ! विश्व की संपूर्ण शक्ति को एक स्थान
पर केंद्रित कर दिया गया हो ! अथवा पाँचों महाभूतों के गुणों को लेकर
विधाता न अकस्मात् एक अनाधी, गारवमयी, तरलतामयी, दीप्तिमयी,
स्फूर्तिमयी एवं ज्ञाघवमयी प्रतिमा में प्राणों का संचार कर दिया हो !
अथवा सारयुद्ध एवं वीरतामय मधुर अभिमान को दह प्रदान कर
दिया हो !

अभिमन्यु कैदी की दरार में राजा विराट क आगे उपस्थित होता
है । किंतु यह राजा का अभिवादन नहीं करता । उसके इस व्यवहार
से उत्पन्न होकर विराट सहसा कह उठत हैं कि—अहो ! यह
पत्रिय-कुमार सचमुच बड़ा घमही है ! अर्पणा में इसक गर्व को उठा
कल्ला । अर्पणा तो हुमे किसने पकड़ा है ! भीमसन एकदम बोझ
उठत है कि— महाराज ! मैं न । शर हीन न—यह कहा —अभिमन्यु
तबक कर उत्तर दता है । इस पर राजा अभिमन्यु के प्रति कुछ करणा

का-सा भाव प्रकट करते हैं । किंतु, उसे यह सख नहीं हो सका और कह उठता है—‘यदि मुझ पर अनुग्रह ही करना है, तो—

वंदी-समुचित वेड़ी मेरे
चरण-युगल में तुम डालो ।
ले जाएगा भीम भुजा से
हे भुज से हरने वालो !’

कितनी निरूपम निर्भंकता है ! भय किस चिडिया का नाम है— यह उसे पता ही नहीं ! दैन्य क्या वस्तु है—इसका उसे तनिक भी ज्ञान नहीं । शत्रु के आगे सिर झुकाना उस बालक ने सीखा ही नहीं, और सिर झुकाता भी कैसे !—‘कुल-युग-तेज अनन्य’ जो ठहरा ! भगवान् करे, भारत के वर्तमान बालक भी ऐसे ही बनें !

उत्तर का चरित्र-चित्रण महाकवि ने किस खूबी से किया है, यह देखते ही बनता है । मनुष्य का स्वभाव है कि जो काम वह स्वयं नहीं कर सकता, यदि कोई दूसरा आदमी उसके नाम पर वह काम कर दे और उसके कारण जो उसे बढ़ाई मिले, तो वह फूला नहीं समाता । और अपना उत्कर्ष दिखाने के लिए वह उस रहस्य को केवल छिपाता ही नहीं, अपितु जबतक भी उससे लाभ उठा सके तबतक पूरा पूरा लाभ उठाने के अनेक उपाय करता रहता है । वह ढीठ एवं निर्लज्ज दूसरों को धोखे में रखने में ही अपनी इतिश्री समझता है—यद्यपि कुछ ही काल बाद पोल खुल जाने पर उसकी सारी आनंद-क्रियाएँ किरकिरी हो जाती हैं । उत्तर भी यदि चाहता, तो कुछ काल तक, कौरवों पर विजय

प्राप्त करने के सम्मान का स्व आनन्द लूट सकता था। किंतु, हमारे कवि को इस प्रकार की मवधा आदर्श हीन बातें कब सख थीं ! देखिए, वे उत्तर के मुँह स पेश समय पर क्या कहवाते हैं —

‘मिथ्या प्रशंसा अति षष्ट देती
मिथ्या-प्रशंसा-रत यदियों की।
देते मुझे ये रण की बडाई,
देता हुँकारी, मन में लजाता ॥’

कैम स्वर्गीय विचार है ! कितनी अलौकिकता है ! विनय की कैमी पराकाष्ठा है ! राजकुमार उत्तर के हृदय में सात्त्विक जीवों के प्रतिकूल ज़रा भी मृग बड़ाइ पाने की इच्छा नहीं। वे लज्जा स गढ़ जा रह हैं। और सचाई को प्रकट करने के लिए अत्यंत उद्दिग्ग हो रहे हैं। य है महाकवि भास की प्रतिभा के कुछ नमून जि हैं कि विज्ञ पाठकों के समुख उपरिधत करते हुए हमारी असमय खेखनी लजाती है। किंतु भास की कविता में कुछ एसी समाहनी छिपी हुइ है कि तिमके बस होकर उमे अपनी भयमर्थता का वास्तविक ज्ञान ही नहीं हो पाता। यही कारण है कि यह हु माहस कर ही वैठी है।

भास की
सूचन श्रिता

यन की समाप्ति पर जब मव राजा क्षाग दुर्पाधन का बचाई दे रहे थे तो विराट पुर से राजा विराट का वृत आकर यह समाचार सुनाता है कि—‘रात्रि में किमी शस्त्र-हीन न सौ कीचकों को मार डाला। भीष्म द्रोण से कहते हैं कि यह काम मिवाय भीम के और काई नहीं कर सकता। इस पर द्रोण पूवन हैं कि—आपने यह कमे जाना ? भीष्म इसका क्या उत्तर दते हैं, ज़रा महाकवि के शब्दों में ही सुनिष्ठा —

‘क्यों, बछड़ों की चपलता, करते तीर-विहार ।

महावृषभ जानें न बुध ! उनका शृंग-प्रहार ? ॥’

भला, तीर-विहारी बछड़ों की चपलता तथा उनका शृंग-प्रहार कभी महावृषभो से छिप सकता है ! कवि की सूक्ष्म-दर्शिता का इससे सुंदर उदाहरण और क्या हो सकता है !

भास के युद्ध-वर्णन के विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं । ‘स्थाली-पुलाक’ न्याय से एक ही पद्य में पाठकों को उसका पता लग जाता है । वृहन्नला-वेप-धारी अर्जुन को कौरवों के साथ भयकर युद्ध-तांडव को सचमुच राजकुमार उत्तर का रण-तांडव समझकर भट उसका वर्णन राजा विराट के सामने इस प्रकार करता है —

‘शर मार सौ सौ नील हाथी लाल रंग में हैं रंगे ,
है कौन हय भट वा, न जिसके बाण सौ तन में लगे !
शर-विद्ध रथ-वर हैं हुए शर-जाल से निश्चल अहा ,
पथ रुद्ध बाणों से, धनुष शर-धार उग्र बहा रहा ॥’

वर्णन क्या है, जादू है ! कवि की चंचल प्रतिभा कैसा अपूर्व एव भैरव नृत्य कर रही है ! कैसा निरालापन है ! ऐसा प्रतीत होता है कि साक्षात् आँखों के आगे कोई धन्वी बाणों की धारा इस प्रकार बहा रहा है—मानो—ग्रीष्म-काल का मध्याह्न-मार्तंड अपनी अनंत किरणों से जीव-लोक को उत्तप्त कर रहा हो ! सैकड़ों हाथी खून में लथपथ हुए लौट रहे हैं । कोई भी घोंडा अथवा योद्धा ऐसा नहीं, जिसका शरीर सैकड़ों बाणों से न विधा हो । शत्रुओं के रथ बाणों से विद्ध होकर निश्चल हो रहे हैं । मार्ग बाणों से रुक गया है और धनुष भीषण

भास के इस कथन की पुष्टि कविता-कामिनी-विलास महाकवि कालिदास इस प्रकार करते हैं —

दिवं यदि प्रार्थयसे वृथा भ्रम.

पितुः प्रदेशास्तव देवभूमयः ।

ब्रह्मचारी के वेश में पार्वती की परीक्षा लेने के लिए आए हुए शिव पार्वती से कहते हैं कि—‘हे देवी ! यदि तुम्हें स्वर्ग की कामना है, तो यह भयंकर व्रत वृथा है । क्योंकि तुम्हारे पिता—हिमालय—के प्रदेश ही तो स्वर्ग-स्थान हैं ।’

अधिक क्या कहें, एक विद्वान् समालोचक के शब्दों में—‘मिश्री का यह कूजा जिधर से तोड़ो मीठा ही निकलता है । इस गन्ने की हर पुरी में मिठास बढ़ता ही जाता है । भाव, भाषा और कला किसी भी दृष्टि से देखो भास की कृति अपने जैसी आप ठहरती है,—संक्षेप में इतना ही कह देना पर्याप्त है ।

संस्कृत-सागर में निम्न इस अप्रतिम एवं अमूल्य रत्न को हिन्दी जनता के करकमलों तक पहुँचाने में हम कहाँ तक सफल हुए हैं, इसका निर्णय विज्ञ पाठक ही करेंगे ।

लाहौर }
जन्माष्टमी १९६३ }

—वलदेव

नाटक की कथा

द्रोण एवं भीष्म की प्रेरणा से कुरुराज दुर्योधन गंगा के किनारे किसी पुराय वन में विशाल यज्ञ रचता है। पृथिवी भर के सारे राजा लोग, राजकुमारों एवं राज-रानियों के साथ उसमें सम्मिलित होते हैं। यज्ञ के दर्शनार्थ आए हुए ब्राह्मण दुर्योधन के यज्ञ-वैभव से प्रभावित होकर उसकी प्रशंसा करते हैं। यज्ञ के अंत में यज्ञशाला में अग्नि-संदीपन होता है। दुर्योधन यज्ञ-दीक्षांत-स्नान करता है। यज्ञ करने के कारण उसका मन प्रशांत होजाता है, जिससे कि द्रोण और भीष्म को महान संतोष होता है। भीष्म और द्रोण तथा देश देशांतरों से आए हुए राजा दुर्योधन को बधाई देते हैं। अंत में वह द्रोण से दक्षिणा के लिए याचना करता है। बार बार प्रार्थना करने पर भी जब द्रोण दक्षिणा के लिए टाल-मटोल करते रहते हैं, तो दुर्योधन उन्हें विश्वास दिलाने के लिए उनके कर-कमल में जल-दान कर देता है, जिससे कि द्रोण के

मन में दक्षिणा के प्रति विश्वास हो जाता है और वे पाड़वों का आधा राज्य दे देने की दक्षिणा माँग बैठते हैं ।

भला, शकुनि को यह क्या सह्य था ! यह यह सुनने ही मचक उठना है और आचाय पर दक्षिणा के सहाने घोसा देने का लाइन लगाता है । द्रोण को भी क्रोध आजाता है और वे कहते हैं कि—“ए गांधार देश का राज्य पाकर गव में चूर हुए शकुनि ! तुम अनाथ हो, इसलिए क्या सारे ससार को अनार्य समझने हो ? ओह ! क्या, यधुधों का पैरुख राज्य देने के लिए कहना भी घोसा है ?” भीष्म और कर्ण युधिपूजक द्रोण और शकुनि को शान करते हैं । दुर्योधन, शकुनि के साथ सलाह करने के अनंतर, यदि “पंचरात्र—(पाँच रात्रियों)—के भीतर भीतर आप पाड़वों का पता लगा लेंगे तो मैं उ हूँ उनका आधा राज्य लौटा दूँगा”—यह नियय सुना देता है ।

यह सुनकर द्रोण अत्यंत चिंतित होते हैं और दुर्योधन से कहते हैं कि—

तुमने धन-काम दे सता—

त्रिनको कारइ वष स नही ।

फिर क्योंकर पंच-रात्र में ।

कइ दन हसय नही यही ॥

हाँक इसी समय विराट के पास से दूत आजाता है और यह बिना शर्र दी सी कीर्कों के मोरे जाने का समाचार है । भीष्म एकदम ताक आते हैं कि हो न हो यह

काम भीमसेन का है, क्योंकि बिना हथियार और किसमें इतनी शक्ति है जो कीचकों को मार सके ! इसलिए वे द्रोण से एक श्रोर को कहते हैं कि—‘पंच-रात्र’ की श्रवधि स्वीकार कर लेनी चाहिए ।

अपने निकट के संबंधी कीचकों की मृत्यु के कारण शोक से विह्वल हुए महाराजा विराट दुर्योधन के यज्ञ में सम्मिलित नहीं हो सके थे । उनके इसी अपराध के वहाने, भीष्म अपनी कार्य-सिद्धि का ध्यान रखते हुए, दुर्योधन को उनकी-गाँव हरने के लिए भड़का देते हैं । परिणाम-स्वरूप दुर्योधनादि विराट की गाँव हर लेते हैं ।

यह समाचार पाते ही राजकुमार उत्तर, बृहन्नला को रथ का सारथि बना, कौरवों से युद्ध कर गाँव छुड़ाने को निकल पड़ता है । बृहन्नला को राजकुमार के रथ का सारथि सुनकर राजा को बड़ी चिंता हो जाती है । ब्राह्मण-वेप-धारी युधिष्ठिर ‘बृहन्नला की सारथ्य-विद्या के प्रभाव से विजय अवश्य होगी’ यह कहकर राजा की चिंता को दूर कर देते हैं ।

कुछ ही देर बाद राजा विराट को यह समाचार मिलता है कि राजकुमार उत्तर कौरवों को परास्त कर आगए हैं, और कौरवों की सहायता के लिए आए हुए अभिमन्यु को राजा के रसोइए ने (जो कि कपट-वेप-धारी भीमसेन थे) पकड़ लिया है । राजा को यह सब सुनकर बड़ा कौतूहल होता है और वे अभिमन्यु को शीघ्र ही लीवा लाने के लिए कहते हैं । भगवान् (अर्थात् ब्राह्मण-वेप-धारी युधिष्ठिर) की

प्रेरणा से वृहस्पति (अथवा कपट-वेष धारी अर्जुन) को अभिमन्यु का लिया लान लिए भेजा जाता है । इस मौके पर कपट वेष धारा भीमसन और अर्जुन की अभिमन्यु के साथ वानवान, लालाक्ष्य वचनों से परिपूर्ण हान के कारण, अत्यन्त राबक हो गए हैं । वृहस्पति—अथवा कपट वेष धारी अर्जुन—सूद-वेष-धारा भीमसन के साथ अभिमन्यु का राजा के पास लिया लात है ।

इतने में ही राजकुमार उत्तर सहसा आकर— वृहस्पति वेष धारा अर्जुन न ही कौरवों का जाता है —इस रहस्य का उद्घाटन कर देता है । फिर अर्जुन कपट वेष धारा युधिष्ठिर और भीमसन का वास्तावकता प्रकट कर देता है । विराट प्रसन्न हो अर्जुन का गा हरण के पारितोषक रूप में अपने कन्या उत्तरा के पाणिप्रदण के लिए कहते हैं किंतु अर्जुन,

किया सभा मनवाम का जनना मम मन्कार ।

अर्पित जा यह उत्तरा मुत्त दिन इ स्वीकार ॥

यह कहकर उस अभिमन्यु के लिए स्वीकार कर लेते हैं । युधिष्ठिर, सपूय राज मंडल का विवाह का निमंत्रण देने के लिए, उत्तर की शीघ्र ही भीष्मादि के पास भेज देते हैं ।

इस पर कौरवों के पराजित हो जान पर नय भीष्मादि के अभिमन्यु के सारथि से यह पता लगा कि अभिमन्यु के एक अत्यन्त घेग शाली पैदल पकड़कर भाग गया ता उन्हें निश्चय हो जाता है कि अभिमन्यु को भीममत के सिवाय और किसी ने नहीं पकड़ा । इसी समय भीष्म का सारथि

भी भीष्म की ध्वजा पर लगे हुए बाण को लेकर आजाता है और भीष्म की आशा से शकुनि उस पर 'अर्जुन' नाम पढ़ कर उसे फेंक देता है और कहता है कि—अर्जुन नाम का कोई दूसरा योद्धा हो सकता है जिसका कि यह बाण हो; इसलिए उत्तर से इस बात का निश्चय कर लेना चाहिए। इतने में ही राजकुमार उत्तर युधिष्ठिर का संदेश लेकर आ जाता है। इस प्रकार, पांडवों का 'पंचरात्र' के भीतर ही पता लग जाने पर, दुर्योधन उनको उनका आधा राज्य दे देता है।

नाटक के पात्र

- ✓ दुर्योधन
- करण
- ✓ भीष्म
- ✓ द्रोण
- 1 भगवान्
- ✓ अर्जुन
- शृद्धशला
- मीमत्सेन
- राजा
- उत्तर
- अभिमन्यु
- मठ
- सारथि
- ✓ शकुनि
- दूत
- शृद्ध गोपालक
- गोमित्रक
- कचुकी
- प्रथम
- द्वितीय
- तृतीय

- हस्तिनापुर का राजा
 - अगदेश का राजा—दुर्योधन का मित्र
 - कौरवों के पितामह
 - कौरवों के आचार्य
 - ब्राह्मण-वेष धारी महाराज युधिष्ठिर
 - युधिष्ठिर का भाई
 - नपुंसक-वेष धारी अर्जुन
 - युधिष्ठिर का भाई
 - विराट नामक मत्स्य देश का राजा
 - विराट का पुत्र
 - अर्जुन का पुत्र
 - दुर्योधन तथा विराट का मृत्यु
 - विगट, अभिमन्यु और भीष्मक की रथ-वाहा
 - दुर्योधन का मामा
 - विराट का मदेश-वाहक
 - गोकुल का अध्यक्ष
 - एक म्वाला
 - विराट का मृत्यु
- यज्ञ के दशनाथ आए हुए तीन ब्राह्मण

पंचरात्र

(नादी के अत मे सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—

भीमार्जुन सब पांडव-दल का, पृथिवी-हित जो दूत ।
कर्णधार जो शुकनीश्वर का, द्रोण महा अवधूत ॥
भीष्म, युधिष्ठिर, उत्तर-पथ-चर, यदुकुल का सम्राट ।
दुर्योधन, अभिमन्यु करे वह, रत्ना कृष्ण विराट ॥१॥

१ (घूमकर) आर्य-जनों से मेरा यह निवेदन है !—अये !
क्या कारण है कि मेरे सूचना देने के लिए तत्पर होते ही,

शब्द-सा सुनाइ पढ़ रहा है ! अच्छा, अभी देखता हूँ !

(नेपथ्य में)

क्या कहना है—कुरुराज की यह-समृद्धि का !

स्वर्घार—अच्छा, समझ गया ।

आए नृप सप्रेम सय, नारी परिजन बाल ।

दुर्योधन कुरुराज का, होता यह विशाल ॥२॥

(प्रस्थान)

स्थापना

पहला अंक

(तीन ब्राह्मणों का प्रवेश)

सब—क्या कहना है—कुरुराज की यज्ञ-समृद्धि का !

पहला—यहाँ, सचमुच,

द्विज-शेष मानों अन्न से सब ओर काश खिले हुए,
है दीखते हवि-धूम ये तरु-कुसुम-गंध-मिले हुए।
चींते हरिण-सम घूमते, गिरि-सिंह हिंसा-हीन है,
दीक्षित नृपति के साथ मानों लोक दीक्षा-लीन है ॥३॥

दूसरा—आप ठीक कहते हैं ।

सुर मुख अनल है तस हवि से, तस धन से विप्र भी ,
पशु पक्षि आदिक तुष्ट हैं सर, तुष्ट जग के जन सभी ।
गुण-गान करता नृप-गुणों का हृष्ट सब ससार है ,
इस भाँति सुर-आवास को भी दे रहा धिक्कार है ॥४॥

तीसरा—ये पूजनीय ब्राह्मण हैं,

नृप मौलि-चदित चरण जिनके, जो पढ़े सन शास्त्र हैं ,
जो वेद पढ़ते वृद्ध भी तप से तपाते गात्र हैं ।
ये विप्र, जो दुर्बल जरा से यष्टि लेकर जा रहे-
धरहाथ शिष्य स्कंध पर, अति-वृद्ध-गज हवि छारहे ॥५॥

सब—ऐ ब्राह्मचारियो ! ऐ ब्राह्मचारियो ! जब तक, यज्ञ-दीक्षात
ज्ञान समाप्त न हो जाए, यज्ञ-शाला में आग मत देना ।

पहला—ओह ! बाल-चपलता दिखाई ही दी !

यह यूप से—जलते कतकमय वाहु से शोभित मही ,
यज्ञाग्नि लौकिक अग्नि को, द्विज शूद्र-सम, सहती नहीं ।
कुछ कुछ हरित कुश-जाल से आच्छद्य वेदी-तल जला ,
यह धूम, ज्यों गज विरुच-नलिनी ओर, प्राग्गृह को चला ॥६॥

दूसरा—यह ठीक है ।

अनल के भय से भयभीत हो,
अनल को द्विज-श्रेष्ठ निकालते ।

चरित-हीन यथा कुल से करें—

पृथक बंधु, न संक्रम-दोष हो ॥७॥

तीसरा

~~पहला~~—यह और देखें—आप लोग,

शकटी यह घृत से भरी, सिंचित भी-जल-जाल—
जलती, मृत-वाला यथा, तप्त स्नेह से-वाल ॥८॥

पहला—आप ठीक कहते हैं,

नव तृण जलाती, मंद जलती वह्नि छूकर दर्भ को,
कुरुराज की इस यज्ञ-शकटी के जलाती गर्भ को ।
भड़की पवन से, उच्च लपटें, चक्र में आकर लगी,
अव नेमि के चहुँ ओर फिरती सूर्य के सम जगमगी ॥९॥

दूसरा—यह और देखें—आप लोग,

वाँवी-विल से साथ ही, निकले पाँच भुजंग—
अनल-भीत, पाँचों यथा इंद्रिय तज मृत-अंग ॥१०॥

तीसरा—यह और देखें—आप लोग,

पवन-दीप्त यज्ञाग्नि से, जलता वृक्ष महान ।
कोटर-गत ये निकलते, खग-गण प्राण-समान ॥११॥

पहला—यह ठीक है ।

नीरस पादप एक ही, कुसुमित विपिन प्रात-
चरित हीन कुल को यथा, करता दग्ध नितात ॥१२॥

दूसरा—

घायु विकपित थाँस ये, जलते हू मय-ज्वाल ।
जाते जन के भाग्य ज्यों, नीचे श्री उचाल ॥१३॥

तीसरा—आप ठीक कहते हैं ।

शुष्क लता से स्वध में, घेष्टित बिटपि मदान—
दुष्कुल में श्री दोष से, जलता साधु-समान ॥१४॥

पहला—यह और देखें—आप लोग,

यह घन, युत भाङ्गी, वृक्ष, गुल्मावली से,
अशन अनल मानों खूब छा, घृत छोड़े-
अथ कुश-भाग का ले कूलमूर्ती सद्दारा,
सरित निकट मानों आ गया अत्रु र्पाने ॥१५॥

दूसरा—यह, यह,

पैले हुए कुश चीर से प्रतिवृक्ष पर है जा रहा ,
मानों पका हो दग्ध कइली-फल घरा पर आ रहा !
है ताल यह समुच्च, लटकता मधु-पटल जिस पर अहा ,
निज मूल जलते ही परशु सम यद्र के है गिर रहा ॥१६॥

तीसरा—अहा ! सत्पुरुष के क्रोध के समान, भगवान् 'हुताशन'
 ांत हो गया !

जलते ही सब वस्तु के, अनल हुआ यह शांत ।
 दान-शक्तिज्यों आर्य की, धन-क्षय-क्षीण नितांत ॥१७॥

पहला—

सुक, अरणी, कुश-जाल का, करे अनल उपभोग ।
 वसन, विभूषण का यथा, व्यसनी निर्धन लोग ॥१८॥

दूसरा—

यह कूलवर्ती ढाक, जिसकी शाख जल को छू रही ,
 यह वायु से हिलता हुआ मृदु हस्त जिसका पर्ण ही ।
 हैं खो चुके जो प्राण अपने वन-अनल के वश अहा ,
 उन पादपों को ही यहाँ मानों जलांजलि दे रहा ॥१९॥

तीसरा—तो आइएगा, हम भी आचमन कर लें !

(सब विधिपूर्वक आचमन करते हैं)

पहला—अये ! ये महाराज कुरूराज दुर्योधन, भीष्म और द्रोण
 जिनके आगे आगे हैं, संपूर्ण राज-मंडल के साथ इधर ही चले आ रहे
 हैं । देखो, ये—

'मख से करो जय तुम, बल से मेदिनी को जय करो,
तज श्रेष्ठ नृप ! निज बधु जन के दु ख को सत्वर दूरो'-
इस भाँति सुदर बचन कहते पौर जन अति दक्ष हैं,
यों ले रहे अब पाइवों का ही अहो ! ये पल है ॥२

दोनों—बहुत अच्छा !

सब—जय हो, जय हो, देव की ।

(सब का प्रस्थान)

विष्कम्ब

(भीष्म तथा द्रोण का श्लेष)

द्रोण—यज्ञानुष्ठान करके दुर्योधन ने सचमुच मेरे ही सम्मान को बनाया है ! क्योंकि,

तज निज जन को भी, छोड़ के मित्र को भी,
गुरु-सिर मढ़ते हैं शिष्य का दोष साथ ।
जनक, जननि दोनों बाल्य से सौंप देते-
निजसुत गुरु को ही, दोष भागी नहीं ये ॥२१॥

भीष्म—यह दुर्योधन,

सुवर्ण, चाँदी हर जो हुआ धनी,

अकीर्ति युद्ध-प्रिय है जिसे मिली ।

सु-पुण्य-भागी कर यज्ञ जो हुआ,

वही सुहाता इस पुण्य वेश में ॥२२॥

(दुर्योधन, कर्ण तथा शकुनि का प्रवेश)

दुर्योधन—

संतुष्ट है मुझ से हुए गुरु-जन, हृदय श्रद्धा-पगा ,

विश्वस्त जन, गुण-सदन हूँ, सारा श्रयश मेरा भगा ।

‘नर प्राप्त करते स्वर्ग मर कर’, भूठ कहता लोक है ,

है मर्त्य जिसको भोगते, विस्तृत यहाँ सुर-लोक है ॥२३॥

कर्ण—गांधारी-पुत्र ! न्यायपूर्वक प्राप्त हुए धन को दान करके
अपने उचित ही किया है ! क्योंकि,

है प्राप्त करता समर से संपत्ति को क्षत्रिय यहाँ ,

धन पुत्र के हित जोड़ता जो फल उसे मिलता कहाँ !

सब विप्र की ही गोद में धन भेंट करके इसलिए .

नृप को सदा निज-पुत्र-कर में चाप देना चाहिए ॥२४॥

शकुनि—गंगा-जल में विधिपूर्वक आचमन करने के कारण
द्वि देह वाले अंगराज ठीक कहते हैं ।

कण—

रुवाहु, शय्याति, ययाति, राम,

माघात्, नामाग नृग,ऽम्बरीष ।

म-कोश ये राष्ट्र-समेत राजा-

सभी भरे, जीवित यह से हैं ॥२५॥

सद-गाधारी-पुत्र ! सौभाग्य से, यह समाप्त हो जाने
कारण आपकी वृद्धि हो रही है ।

दुर्योधन—अनुगृहीत हूँ । गुरु जी ! मैं आपको
करता हूँ ।

द्रोण—आओ, आओ, पुत्र ! यह क्रम नहीं है ।

दुर्योधन—तो कौन-सा क्रम है ?

द्रोण—क्या आप नहीं जानते ?

मनुज रूप में देवता, इनको करो प्रणाम ।

छोड़ भीष्म मम वदना, ठीक नहीं यह काम ॥२६॥

भीष्म—नहीं, आप गमा न कहें ! मैं अनेक कारणों
आपकी अपेक्षा निम्न हूँ । क्योंकि,

तुम हो स्वयम्भू और मैं उत्पन्न जननी से तथा ,

है शत्रु मम आज्ञाविका जग प्रेम रत तुम सधथा ।

है क्षत्र-कुल में जन्म मेरा, आप माहिरण धेष्ट हैं ,

हैं आप गुरु सच के तथा दम शिष्य-कुल के ज्येष्ठ हैं ॥२

द्रोण—महात्मा लोग अपने को निकृष्ट कहने का साहस कर
 १। बैठते हैं ! आओ, पुत्र ! मुझे प्रणाम करो ।

दुर्योधन—गुरु जी ! मैं प्रणाम करता हूँ ।

२। द्रोण—आओ, आओ, पुत्र ! तुम इसी प्रकार यज्ञ-दीक्षात-स्नानों
 में खेद प्राप्त करते रहो !

दुर्योधन—अनुगृहीत हूँ । बाबा जी ! मैं प्रणाम करता हूँ ।

भीष्म—आओ, आओ, पौत्र ! तुम्हारा मन इसी प्रकार सदा
 प्रशात रहे !

दुर्योधन—अनुगृहीत हूँ । मामा जी ! मैं प्रणाम करता हूँ ।

शकुनि—वत्स !

इस प्रकार कर यज्ञ सब दानसहित स्वच्छंद ।

नृप-मख मे नृप जीत, कर जरासंध-सम वंद ॥२८॥

द्रोण—ओह ! आशीर्वाद के समय में भी शकुनि युद्ध के लिए
 उत्तेजित कर रहा है ! अहो ! यह क्षत्रिय-कुमार सचमुच वैर का
 बड़ा प्रेमी है !

दुर्योधन—मित्र ! कर्ण ! गुरुजनों को प्रणाम करने के अनंतर
 अब हमारी बारी आई है; आओ, दोनों मित्र गले मिल लें ।

कर्ण—गांधारी पुत्र !

यह यज्ञ व्रत से कृश क्लेशर है तुम्हारा हो रहा !
 क्या गाढ़ आलिगन करूँ यदि जा सके तुम से सदा !
 बोले विना सप्रेम श्रय पीडित हृदय कैसे करूँ !
 राजर्षि-तुल्य प्रशांत स्वर से भीत, भय कैसे हूँ !

दुर्योधन—तुम्हारा मन सदा ऐमा ही बना रहे !

द्रोण—पुत्र ! दुर्योधन ! ये इंद्र के प्रिय मित्र भीष्मक
 वधाई देते हैं ।

दुर्योधन—स्वागत है, आर्य का । अभिवादन करता हूँ !

भीष्म—पौत्र ! दुर्योधन ! ये दक्षिण देश के रक्षक
 आपको वधाइ देते हैं ।

दुर्योधन—स्वागत है, आर्य का ।

द्रोण—पुत्र ! दुर्योधन ! ये अभिमन्यु जिन्हें आपको
 देते द्रुप श्रीकृष्ण जी ने भेजा है, आपको वधाइ देते हैं ।

शकुनि—वत्स ! दुर्योधन ! ये जयमघ के पुत्र महदेव आ
 अभिवादन करते हैं ।

दुर्योधन—आओ, आओ, वाम ! पिता के समान पर
 बनो !

सय—यह सपूर्ण राज महान आपको वधाइ देता है ।

दुर्योधन—अनुगृहीत हूँ । क्यों !—सब राजाओं के आने पर विराट क्यों नहीं आए ?

शकुनि—मैंने उनके पास दूत भेजा था । सभव है, वीच-भार्ग में हों !

दुर्योधन—गुरु जी ! ऐ मेरे धर्म और धनुष के गुरु जी ! दक्षिणा स्वीकार कीजिएगा ।

द्रोण—क्या दक्षिणा ?—रहने दो, रहने दो । मैं आपसे एक विनती करूँगा ।

दुर्योधन—क्या गुरु जी विनती करेंगे ?

भीष्म—अजी ! कुछ भी प्रयोजन नहीं, जब कि—

विधिसहित यौवन में जिन्होंने सोम-रस को है पिया,
रहते तुम्हारे राज्य में, यश भी जिन्होंने पा लिया !
है द्रव्य, फल वह कौन-सा, वह कौन गुण सविशेष है,
जो विप्र क्षत्राचार्य को अब प्राप्त करना शेष है ! ॥३०॥

दुर्योधन—आज्ञा कीजिएगा, आप । आप क्या चाहते हैं ?
मैं आपके लिए क्या करूँ ?

द्रोण—पुत्र ! दुर्योधन ! मैं कहता हूँ ।

दुर्योधन—आप अब क्या सोच रहे हैं ?

अत्यंत प्रिय मैं हूँ तुम्हें, उपदेश तुमने ही दिया,
 है शूर-बाण मैं नाम मेरा, समर मैं विजय किया।
 क्या चाहते ? क्या हूँ तुम्हें ? स्वच्छन्द बतला दो असा,
 है हाथ मैं मेरे मदा, बस आपका ही है सभी।
 द्रोण—पुत्र ! अभी कहता हूँ। किंतु, अशु-पवाह मुझे र
 रहा है।

सव्य—क्या गुरु जी रो रहे हैं ?

भीष्म—पौत्र ! तुम्हारा परिश्रम निष्फल है।

दुर्योधन—कौन है यहाँ ?

(मट का प्रवेश)

मट—जय हो, महायज्ञ की।

दुर्योधन—पानी ले आओ।

मट—जो महायज्ञ की आशा। (बाहर जाकर लौटकर) जय हो
 महायज्ञ की। यह रहा, पानी।

दुर्योधन—ले आओ। (बलया लेकर) गुरु जी ! आँसुओं का
 मलिन दृष्य मुझ को यो लीजिएगा।

द्रोण—रहने दो, रहने दो। मेरी कार्य सिद्धि ही मेरे दुँ
 को घोषणी।

दुर्योधन—ओह ! घिझार है मुझे !

प्रथम कुटिलता का ध्यान आता तुम्हें जो ,
यदि निज मन में हो जानते 'मैं न दूँगा' ।
शर-कठिन करों को तात ! दोनों पसारो ,
यह जल तजता मैं दान-स्वीकार-कारी ॥३२॥

द्रोण—अहा ! मेरे मन में विश्वास हो गया ! पुत्र ! सुनो ।
मारे मारे जो फिरें, बीते बारह साल ।
'दे दो पांडव-भाग' यह भीख, दान नरपाल ! ॥३३॥

शकुनि—(आवेगपूर्वक) अजी !

जिसने गुरु-विश्वास से कहा—अहो ! 'लो दान' ।
कर प्रवृत्त मख मे उसे, उचित न अतिसंधान ॥३४॥

द्रोण—क्या अतिसंधान ?—ऐ गांधार देश का राज्य पाकर
गर्व में चूर हुए शकुनि ! तुम अनार्य हो, इसलिए क्या सारे संसार
को अनार्य समझते हो ? ओ हो !

'बांधव-पैतृक-राज्य दो', क्या यह अतिसंधान ?
उचित न माँगे से दिया, बल से वा हियमाण ॥३५॥

सब—क्या बलपूर्वक ?

भीष्म—पौत्र ! दुर्योधन ! यह तो यज्ञ-दीक्षांत-स्नान का
समय है । नाममात्र के मित्र एवं वास्तविक शत्रु शकुनि की बात
मत सुनो । देखो, पौत्र !

जो भूमि-तल पर घूमते वन-रज लपेटे अग में,
 हा ! पाइ के सुत दुपद-रूप की बालिका के सग में !
 यह बढ रहा जो भाइयों में अथ परस्पर द्वेष है,
 कारण अहो ! उसमें हुआ यह शकुनि-दर्प विशेष है ॥१॥

दुर्योधन—पुर ! कहो ।

द्रोण—

पूत समा में जय हरा राज्य, किया अधमान ।
 बल-समथ उनका कहीं तब था क्रोध महान ॥

द्रोण—इस विषय में, धर्म के धोखे से ठगे गए,
 युधिष्ठिर से पूछना चाहिए !

समा-स्तम्भ को तोलता, रोक जितने—भीष्म ।
 यदि ना रोके, क्यों करे निदा शकुनि असीम ॥३॥

भीष्म—क्यों की बात कहीं आ गई ! आचार्य जी ! इस समय
 कार्य प्रधान है, न कि कलह ।

द्रोण—यहो, दीन-वचनों की आवश्यकता नहीं, -कलह ही
 ठीक है !

भीष्म—समा कीजिएगा, आचार्य जी ! देखो, वेदा !

नियंछ दुष्ठी, जग में नहीं जितना ठिकाना है कहीं,
 है चाहते जो साम तुमसे, गर्व भी करते नहीं ।

तुम हो षड़े, वे प्रेम तुमसे नित्य ही करते अहो,
उनको शरण दोगे तथा मृग-संग रक्खोगे कहो ? ॥३६॥

शकुनि—मृगों के साथ ही रहें ! मृगों के साथ ही रहें !!

कर्ण—आचार्य जी ! क्रोध न कीजिए । क्योंकि, दुर्योधन,
सुनकर परुष हितकर वचन भी क्रुद्ध होता है महा ,
सज्जन-पुरुष-विरुदावली को चाहता मानी कहाँ !
बस हो चुकी यह बात, साधो शिष्य-गण के काम को ,
त्रश में करो अब साम से गज-सम महा उद्दाम को ॥४०॥

द्रोण—वत्स ! कर्ण ! ब्राह्मण में तेज छिपा रहता है ! समय
मुझे सचेत कर दिया !, यह मैं तुम्हारी इच्छा के अनुकूल ही
ता हूँ । पुत्र ! दुर्योधन ! क्या मेरा तुम पर कुछ अधिकार है ?

भीष्म—अब इन्होंने ठीक मार्ग ग्रहण किया है । क्योंकि,
लता ही दुर्विनीतों की औषध है ।

दुर्योधन—केवल मेरे ही नहीं, आप मेरे कुल के भी प्रभु हैं ।

द्रोण—यह बात सर्वथा तुम्हारे अनुरूप है । तो, पुत्र !

ठगता तुम्हें यदि, दोष लगता कुछ नहीं तुम पर यहाँ ,

पीड़ित तुम्हें यदि कर रहा, हो लाभ तुमको ही वहाँ !

कुलशालियों में जो परस्पर फूट पड़ता द्वेष है ,

धर्मोपदेष्टा ही उसे करता सदा निःशेष है ॥४१॥

दुर्योधन—अच्छा तो मैं सलाह करना चाहता हूँ।

द्रोण—पुत्र ! किसके साथ सलाह करना चाहते हो ?

भीष्म, कण, दृप, सिंधु-नृप, जयद्रथ से इस बात।

द्रोण, विदुर क्या जनक औ, जमनी से ? कह बाल !

दुर्योधन—नहीं, नहीं, मामा जी से।

द्रोण—क्या शकुनि से ? (स्वगत) अहो ! काम ।

दुर्योधन—मामा जी ! जरा इधर आइए । बयस्य ! कर्ण !
इधर आओ ।

द्रोण—(स्वगत) अच्छा तो यों कहूँगा ! (प्रक)

गांधार-राज ! जरा इधर आओ ।

शकुनि—यह आ गया ।

द्रोण—वत्स !

कीप-बहुल धय है जरा, सहो चपलता-बाल !

है इस रुझे धवन का, आलिंगन प्रतिकार ।

भीष्म—(स्वगत)

करते ये गुरु शकुनि की, विनती शिष्य-सराग

इस विषय यह अनुनीत भी, करे न शकता-त्याग

शकुनि—(स्वगत) अहो ! आचार्य बड़ा धूर्त है ! अपना काम धने की इच्छा से मुझे बना रहा है !

(सब धूमकर बैठ जाते हैं)

दुर्योधन—मामा जी ! पांडवों के आधे राज्य के विषय में क्या निश्चय है ?

शकुनि—‘नहीं देना चाहिए’—यह मेरा निश्चय है ।

दुर्योधन—मामा जी को—‘देना चाहिए’—यह कहना चाहिए ।

शकुनि—यदि राज्य देना ही है, हमसे क्यों सलाह लेते हो ?—
। सभी कुछ दे डालो !

दुर्योधन—मित्र ! अंगराज ! आपने अभी कुछ नहीं कहा !

शकुनि—मैं अब क्या कहूँगा !

श्रीराम ने जिसका प्रथम अनुभव तथा पालन किया, प्रतिषेध उस सौभ्रात्र का करता नहीं मेरा दिया ।
‘राज्याद्धे देना चाहिए अथवा न’ आप प्रमाण हैं,
समर-स्थली में बस सहायक ये हमारे प्राण हैं ॥४५॥

दुर्योधन—मामा जी ! बलवान् शत्रुओं से युक्त और आजी-
वेका के अयोग्य कोई कुदेश सोचो । पांडव लोग वहाँ रहें !

शकुनि—ओह !

‘नहीं’—कहूँगा, पार्थ से कौन अधिक बलवान !
जहाँ युधिष्ठिर नृप, वहाँ ऊसर में भी धान ॥६॥

दुर्योधन—अच्छा तो अब,

कर-कमल में गुरु के किया मैंने सलिल का दान है
हूँ सुन चुका मैं गुरुजनों से जो नितात प्रमाण है।
हो यह अनीति प्रवचना वा जो कहो सब कुछ बहा,
हूँ चाहता करना सलिल में वह नृपति ! सचमुच

शकुनि—क्या आप भूठ से पिंड छुड़ाना चाहते हैं ?

दुर्योधन—जी, हों !

शकुनि—तो खर इधर मेरे साथ आओ । (द्रोण के
आकर) गुरु जी ! महाराज कुरुराज आपको इस विषय में
करते हैं ।

द्रोण—वत्स ! गांधारराज ! कहो ।

शकुनि—यदि ‘पंचरात्र’ के भीतर पांडवों का पता
तो आधा राज्य दे देंगे । अब आप उनका पता लगा लें !

द्रोण—नहीं जी ! नहीं ।

तुमने छल-काम है लघा,
जिनको बारह षय से नहीं ।

फिर क्यों अब 'पंचरात्र' में !

कह देते इससे 'नहीं' यही ॥४८॥

भीष्म—पौत्र ! दुर्योधन ! धर्म छल-हीन होता है । हम भी
उ काम में प्रसन्न हैं । देखो, पौत्र !

एक वर्ष शत वर्ष में तथा,

पांडु-पुत्र-गण-अर्द्ध-राज्य दो ।

सत्य-संध वन वीर ! सर्वथा,

सत्य-संध कुरु-वंश है सदा ॥४९॥

दुर्योधन—मेरा यही निश्चय है ।

द्रोण—(स्वगत)

कार्य-लोभ से चाहता, 'आज वनूँ हनुमान' ।

जलधि लाँघ जिसने दिया, हत सीता का क्षान ॥५०॥

तो कहाँ से पांडवों का पता लगाया जाए !

(भट का प्रवेश)

भट—जय हो, महाराज की । विराट नगर से दूत आया है ।

सब—जल्दी भेजो ।

भट—जो आज्ञा ।

(प्रस्थान)

(दूत का प्रवेश)

दूत—जय हो, महाराज की ।

मन्व—क्या विराटेश्वर आ गए ?

दूत—वे दुखी हैं, इमीलिए नहीं आते ।

मन्व—उन्हें क्या झेरा है ?

दूत—सुन सकते हैं, महाराज । जो उनके अत्यंत ।
सबधी सौ भाए कीचक हैं, उन्हें—

किसी पुरुष ने रात में मारा हो तम लीन—
धाहु-युगल से, दीघता शय-वध शस्त्र विहीन ॥१॥

मन्व—क्या बिना हथियार के मार दिया ?

भीष्म—क्या शस्त्र-रहित ने ? (एक ओर को) आचार्य
'पंचरात्र की अवधि को स्वीकार कर लीजिए ?

द्रोण—(एक ओर को) किमलिए ?

भीष्म—

भुजशाली यह भीष्म का, ही है हृद्य जलामः
भोगा बुद्ध-गत क्रोध का, कीचक शत परिणाम

द्रोण—आप कैसे जानते हैं ?

भीष्म—

क्यों, बछड़ों की चपलता, करते तीर-विहार ।
महावृषभ जाने न बुध ! उनका शृंग-प्रहार ? ॥१३॥

द्रोण—क्या महावृषभ ? अहा ! काम बन गया ! (प्रकट)
व ! दुर्योधन ! सही—'पंचरात्र' !

दुर्योधन—जी, हाँ ! सही—पंचरात्र !

द्रोण—ऐ यज्ञ में समुपस्थित राजाओ ! सुनें, सुनें, आप
योग । ये श्रीमान् कुरुराज दुर्योधन, न न न, मामा जी सहित, यदि
गंडवों का पता लग सके, तो आधा राज्य दे देंगे । क्यों पुत्र !

दुर्योधन—जी, हाँ !

द्रोण—यह ठीक ठीक सोच लो !

शकुनि—अवसर आने पर जान लूँगा !

द्रोण—क्यों गांगेय जी !

भीष्म—(स्वगत)

प्रकटित जो आचार्य हैं, करते हर्ष महान ।

छलित सुयोधन ने छला इनको—पड़ता जान ॥१४॥

(प्रकट) पौत्र ! दुर्योधन ! विराट मेरा छिपा हुआ शत्रु है; और
वह आपके यज्ञ में भी सम्मिलित नहीं हुआ !—इसलिए उसकी
गाँव हर लो ।

द्रोण—(एक ओर को) गागेय जी ! श्रीमान् विष्णुति
मेरे प्रिय शिष्य हैं । उनकी गाथों को हरने से क्या प्रयोजन है !

भीष्म—(एक ओर को) ऐ ऋजु बुद्धि ! ब्राह्मण !

होगे पादुच कुपित अति, सुनकर रथ रथ घोर ।

इष्ट-सिद्धि गो हरण में, वे कृत्वा सिरमौर ॥

(भट का प्रवेश)

भट—जय हो, महाराज की ! नगर में सीधा प्रवेश कर
लिप रथ तैयार हैं ।

दुर्योधन—

हर लो सत्वर धेनु सब, इन्हीं रथों के साथ ।

यह शत अपनी गदा, पकड़ूँगा फिर हाथ ॥१६

द्रोण—

तो रथ मेरा लाओ पुरुषो !

शकुनि—

हाथी मेरा भी लाओ ;

कण—

भारार्थ सुसज्जित, इय गण सज्जित ,

रथ मेरा ले आओ ।

भीष्म—

विराट-पुर जाने को उत्सुक—
मन मम, धनु लाओ, जाओ ;

सब—

सेवक हम सब सज्जित, तज धनु
आप यही पर सुख पाओ ॥५७॥

द्रोण—पुत्र ! दुर्योधन ! हम दोनों युद्ध में तुम्हारा पराक्रम
देखने के इच्छुक हैं ।

दुर्योधन—जैसी आपकी इच्छा !

द्रोण—वत्स ! गांधारराज ! इस गो-हरण में पहला रथ
तुम्हारा होगा ।

शकुनि—अच्छा, बहुत अच्छी बात है !

(सब का प्रस्थान)

दूसरा अंक

(बृद्ध ग्वाल का प्रवेश)

बृद्ध ग्वाला—मेरी गाँव सदा ब्रह्मों से युक्त रहे ! गो-युवतियों मदा मुहागिनी बनी रहे ! हमारे महाराज विष्णु मारभौम राजा बने ! महाराज त्रिगुण के वार्षिक जन्म-नक्षत्र के शुभ अवसर पर, गो-दान के निमित्त नगर-वाटिका के मार्ग पर आने के लिए गाँव मजार्ई गई हैं, और ग्वालों के सब बालक बालिकाएँ, नए नए कपड़े और गहने पहने, आनन्द-मगल मन रहे हैं ! इनमें से नायक के पास जाकर बातचीत करूँगा । (दबकर

न्या कारण है कि, यह कौआ, सूखे हुए वृद्ध पर बैठकर, शुष्क डाली के साथ चोंच रगड़ रगड़ कर, सूर्य की ओर मुँह किए, भीषण गूँद कर रहा है ! ईश्वर, हमारा और गो-धन का कल्याण करे ! अब मैं, इनमें से नायक के पास जाकर, ग्वालों के बालक और बालिकाओं को बुलाऊँगा ! (घूमकर) अरे ! गोमित्रक ! गोमित्रक !

(गोमित्रक का प्रवेश)

गोमित्रक—मामा जी ! प्रणाम ।

वृद्ध ग्वाला—ईश्वर, हमारा और गो-धन का कल्याण करे ! कल्याण करे !! महाराज विराट के वार्षिक जन्म-नक्षत्र के शुभ अवसर पर, गो-दान के निमित्त, नगर-वाटिका के मार्ग पर आने के लिए गाएँ सजाई गई हैं ! और ग्वालों के बालक और बालिकाएँ—सब के सब—नए नए कपड़े और गहने पहने, आनंद-मंगल मना रहे हैं ! अरे ! गोमित्रक ! ग्वालों के बालक और बालिकाओं को बुलाओ ।

गोमित्रक—जो मामा जी की आज्ञा । गोरक्षिणी ! घृतपिंड ! स्वामिनी ! वृषभदत्त ! कुंभदत्त ! महिषदत्त ! आओ, जल्दी आओ ।

(सब गोप बालक तथा बालिकाओं का प्रवेश)

सब—मामा जी ! प्रणाम ।

वृद्ध ग्वाला—ईश्वर, हमारा और गो-धन का, गोप-बालक

और बालिकाओं का कल्याण करे ! कल्याण करे ॥ महार
विराट के वार्षिक जन्म-नेत्र के शुभ अवसर पर, गोदान
निमित्त, नगर-वाटिका के माग पर आने के लिए गाएँ सज्ज
हैं । आओ, हम तब तक गाएँ और नाचें !

सब—जो मामा जी की आज्ञा ।

(सब नाचते हैं)

बृद्ध ग्वाला—ही ! ही ॥ खूब नाचे ! खूब गाया ! अब
भी नाचता हूँ । (नाचता है)

सब—हा ! हा ! मामा जी ! बड़ी धूल उड़ी है !

बृद्ध ग्वाला—सिर्फ धूल ही नहीं, राख और नगाड़ों !
राख भी उठ खड़ा हुआ !

सब—हा ! हा ! मामा जी ! दिन के चाँद की रोशनी के
साथ सफ़ेद, धूल से ढका हुआ सूरज का गोला, कहीं दील पड़ा
है, कहीं नहीं ।

गोमित्रक—हा ! हा ! मामा जी ! ये कोई चोर आदमी
घोड़ा-गाड़ी पर सवार होकर, दही के चकत्ते की तरह सफ़ेद धूल
लगाए, ग्वालों की बस्ती को रौंदे डाल रहे हैं !

बृद्ध ग्वाला—ओ हो ! बाण छुटने लगे ! लडको ! लडको
मट पट घरों में घुम जाओ ।

सब—जो मामा जी की आज्ञा ।

(सब का प्रस्थान)

वृद्ध ग्वाला—हा ! हा ! ठहरो, ठहरो । 'मारो, मारो, पकड़ो, पकड़ो'—यह वृत्तांत महाराज को सूचित करेंगे ।

(प्रस्थान)

प्रवेशक

(भट का प्रवेश)

भट—ऐ ऐ ! सूचित कर दो, सूचित कर दो महाराज विराटेश्वर को—चोरों के समान बहादुरी दिखाने वाले कौरव गाँव हरे ले जा रहे हैं ! क्योंकि,

हैं भग रहे बछड़े तथा हैं पा रही गाँव व्यथा ,
हा ! साँड लख लख हो रहे भयभीत-मुख हैं सर्वथा ।
इस भाँति हाहाकार चारों ओर गो-कुल कर रहा ,
हा ! शोचनीय बना यहाँ दुख-जलधि में है तर रहा ! ॥१॥

(नेपथ्य में)

क्या, 'कौरव'—यह कहते हो ?

भट—आर्य ! जी, हों !

(कचुकी का प्रवेश)

कचुकी—भाइयों से भी द्रोह करने वालों के लिए यह ही है। ये, सचमुच,

कर धाँध गोधा अगुनिर, सन्चाप, बल पेंडे हुए,
होकर सुसज्जित निज रथों पर, कवच धर, बैठे हुए।
हैं अस्त्र-विद्या में निपुण जो, युद्ध को तैयार हैं,
नृप शत्रुता का धेनु कुल में कर रहे प्रतिहार हैं

जयसेन ! महाराज जम-नक्षत्र-भवधी कार्य में लगे हुए
इसलिए, बिना अवसर सूचना देने से वे शूद्र हो जाएंगे।
मैं पुण्य दिन के काम की समाप्ति पर ही निवेदन करूँगा।

भट—आर्य ! यह काम विलय करने का नहीं है, जल्दा ही
सूचित कर दो।

कचुकी—अभी सूचित किए देता हूँ।

(राजा का प्रवेश)

राजा—

धिकार ! रथ के शब्द से डर, वत्स-गण करके त्वरा—
है भग रहे जिसके, अहो ! वह धेनु-कुल जाता हरा !
अतिपीन कंधों से सजा, चंदन-सुशोभित जो तथा ,
चंचल-वलय कर ढीठ मेरा भोगता कर सर्वथा ! ॥३॥

जयसेन ! जयसेन !

(जयसेन का प्रवेश)

भट—जय हो, जय हो, महाराज की ।

राजा—मुझे महाराज मत कहो । मेरा क्षत्रियत्व जाता रहा ।
का सविस्तर वर्णन करो ।

भट—महाराज ! अप्रिय बातों को विस्तारपूर्वक नहीं कहना
यह संक्षेप है—

गायों के बस एक-से, रथ-रज से सब अंग ।

कशाघात में दीखते, रंग-विरंगे रंग ॥४॥

राजा—तब तो,

शीघ्र धनुष तुम मेरा लाओ,

लाओ रथ भी वीर !

भक्ति हृदय में जिसके, मेरे—

साथ चले रण-धीर ॥

(भट का प्रवेश)

भट—जय हो, महाराज की ।

राजा—अब दुर्योधन क्या कर रहा है ?

भट—केवल दुर्योधन ही नहीं, पृथिवी पर के सारे राजा हैं ।

द्रोण, भीष्म, कृप, शकुनि और कर्ण, जयद्रथ, शल्य ।

चंचल-पट रथ-केतु से देते शल्य, न शल्य ॥११॥

राजा—(उठकर, हाथ जोड़कर) क्या पूजनीय गागेय भी हैं ?

भगवान्—(स्वगत) ठीक है, अपमानित होकर भी सदाचार उलंन नहीं किया ! क्यों,

कुरु-बाबा ये किसलिप, हैं आप इस वार !

स्मरण कराते हों ! मुझे, 'तीर्ण प्रतिज्ञा-भार' ॥१२॥

-कौन है यहाँ ?

(भट का प्रवेश)

भट—जय हो, महाराज की ।

राजा—सारथि को तो बुलाओ ।

सारथि—जो महाराज की आज्ञा ।

राजा—अथवा, जरा इधर आओ ।

सारथि—राजन् ! यह आगया ।

राजा—

रथ-चालन तुमने न क्यो, किया कुँवर का आज ?

रोका उसने ही तुम्हें, तथा तजा यह काज ? ॥१६॥

सारथि—प्रसन्न हों, महाराज । रथ को भली भाँति सजाने के बाद मैं सारथी के योग्य आचार के साथ, उनके पास गया था । किंतु, कुँवर जी ने,

वाल-खेल ! कौशल लखा, उस में तथा ललाम !

वृहन्नला को, तज मुझे, साँपा सारथि-काम ॥१७॥

राजा—क्या वृहन्नला को ?

भगवान्—राजन् ! घबराइएगा नही ।

यदि धूलि-वितान से ढकी,

रथ-आसीन वृहन्नला गई ।

क्षण मे रथ नेमि-शब्द से-

रिपु जीते, शर-वृष्टि-हीन ही ॥१८॥

राजा—तो शीघ्र ही दूसरा रथ तैयार करो ।

सारथि—जो महाराज की आज्ञा ।

(प्रस्थान)

(भट का प्रवेश)

भट—कुँवर जी के रथ का आगे बटना रोक दिया !

राजा—क्या आगे बटना रोक दिया ?

भगवान्—क्या अब आगे बटना रोक दिया ?

भट—सुन सकते हैं, महाराज ।

रथ पट्टे द्वय पथ में डटे, रिपु गण जब घनघोर ।

परिमत्र पर घन लोभ से, रथ श्मशान की ओर ॥१॥

भगवान्—(स्वगत) आ ! यहाँ गाड़ीय है । (प्रकट) ते शत्रु !

रथ श्मशान की ओर जो, समझो शत्रुन महान ।

घातराष्ट्र अब हैं जहाँ, होगा वही श्मशान ॥२॥

राजा—भगवान् ! बिना अवसर के शुभ-सूचक वचन
अप्यप्र करता है ।

भगवान्—क्रोध मत कीजिएगा । मैंने कभी पहले
नहीं बोला !

राजा—हाँ ! यह ठीक है ! जाओ, फिर ममाचार मालूम करो !

भट—जो महाराज की आज्ञा ।

(प्रस्थान)

राजा—

कंपित-सी जिससे धरा, सहसा शब्द महान ।

कौन नदी-सम वक्र यह, क्षण क्षण में ध्वनमान ! ॥२१॥

देखो, कैसा शब्द है ?

(भट का प्रवेश)

भट—जय हो, महाराज की । श्मशान में पहुँच कुछ देर
घोड़ों के विश्राम कर चुकने पर कुँवर जी ने तो,

भगवान्—यह मुझे झूठा न सिद्ध कर दे !

राजा—क्या किया राजकुमार ने ?

भट—

शर मार सौ सौ नील हाथी लाल रंग में हैं रंगे !

है कौन हय, भट वा न जिरुके बाण सौ तन में लगे !

शर-विद्ध रथ-वर हैं हुप शर-जाल से निश्चल अहा !

पथ रुद्ध बाणों से, धनुष शर-घार उग्र बहा रहा ! ॥२२॥

भगवान्—(स्वगत)

ये अक्षय तूर्णार हैं जिनसे खाडव दाह—
घाराएँ जितनी, तजा उतना बाण प्रवाह ॥२३॥

राजा—अच्छा तो शत्रुओं के विषय में अब
समाचार है ?

भट—मैं प्रत्यक्ष-रूप में उनके विषय में कुछ नहीं
किंतु, सवाददाता कहते हैं—

घनुप घोष यह वही' इसी से
द्रोण न लड़ता है पहचान
'उचित न रण' यह सोच भीष्म भी,
शात हुआ लख ध्वज पर बाण ।
भग्न मनोरथ कण शरों से,
'क्या यह ! सग्नृप करते ध्यान
अभिमन्यु भयकर रण में जूझा,
यात्नक तनिक न भय को मान ॥२४॥

भगवान्—क्या अभिमन्यु आया है ? ऐ राजन् ।

लड़ता यदि भीमद्र है, सुल युग तेज अनय !
शूद्रप्रता लाचार है, भेजो साराधि अन्य ॥२५॥

राजा—नहीं, आप ऐसा न कहें ।

अचल-कवच जो राम-शरों से-

भीष्म, द्रोण मंत्रायुध धन्य !

कर्ये, जयद्रथ विचलित करके,

उन उन राजाओं को अन्य !

क्या न पिता के भय से करता,

धर्षण उसका शर-गण मार !

सख्य-भाव-समुचित सम-वय की,

करे सखा भी यों रखवार ! ॥२६॥

भट—कुँवर जी का यह रथ,

है रोकने पर घूमता अति, छोड़ने पर भागता,

पाकर समय लंघन तथा परिभव न करना चाहता ।

चंचल समीप-स्थान में, चारों तरफ भगता अहा !

इस भौंति मानों रथ कुँवर का योग्य-शिक्षा दे रहा ! ॥२७॥

राजा—जाओ, फिर समाचार मालूम करो ।

भट—जो महाराज की आज्ञा । (बाहर जाकर, लौटकर)

जय हो, महाराज की । जय हो, विराटाधिपति की । कुँवर जी ने

गो-हरण पर विजय प्राप्त कर ली । कौरव भाग गए ।

भगवान्—सौभाग्य से, आपकी वृद्धि हो रही है ।

राजा—नहीं, नहीं; यह भगवान् की ही वृद्धि है । अच्छा

तो, अथ कुँवर जी कहाँ हैं ?

भट—कुँवर जी, जिन योद्धाओं को उद्धोंने रण में मरते देखा है, उनके कारनामे पुस्तक में लिख रहे हैं।

राजा—अहो ! राजकुमार सचमुच प्रशसनीय काम कर रहे

कर विभ्रम जो समर में, भट पाता द्रणजाल।

हरता उसकी वेदना, सत्वर ही सत्कार ॥२

अच्छा तो वृहन्नला अब कहाँ हैं ?

भट—प्रिय सूचना देने के लिए भीतर गई हैं।

राजा—वृहन्नला को तो सुनाओ।

भट—जो महाराज की आज्ञा।

(प्रस्थान)

(वृहन्नला का प्रवेश)

वृहन्नला—(देखकर विचारपूर्वक)

धनुष स गुण करने को करता-

या मैं कुछ क्षण यत्न महान !

कुछ क्षण क्षण चलाने, लेने—

मैं भी मुष्टि न थी यत्नवान !

घेएन पट्टना नष्ट हुई थी,

ठीक न कुछ क्षण था सस्थान, !

अबला-वेश-निवास-शिथिल फिर,
निजका पीछे आया ध्यान ॥२६॥

क्योंकि, मैंने,

स्त्री-वेश धारी नृप-मध्य में हा,
सलज्ज हो के निज चाप खींचा ।
तथापि यात्रा शर-वृष्टि में थी,
थी रक्त-भीगी रज भूमि-लीना ॥३०॥ ?

अजी !

मैं जीत घेनु, जय भी कर भूप सारे,
मानूँ न हर्ष अपने मन में ज़रा भी ।
जो युद्ध में रिपु दुशासन को विना ही—
बोधे विराट-पुर मे अब आगया हूँ ॥३१॥

उ त्तरा के प्रीतिपूर्वक दिए हुए इस अलंकार को पहने हुए मुझे राजा से मिलने में लज्जा-सी प्रतीत होती है । अच्छा तो विराटेश्वर से मिलता हूँ । (घूमकर, देखकर) अये ! ये आर्य युधिष्ठिर हैं ।

युवा तपस्वी तप ते वनांत में,
नरेश भी ब्राह्मण-वृत्ति धारते ।
विशोभि श्री से अति राज्य-हीन भी,
त्रिदंड-धारी नहिं दंड धारते ॥३२॥

(सर्वांग जकर) भगवान् ! प्रणाम ।

भगवान्—स्वस्ति ।

शुद्धभला—जय हो, भर्ता जी की ।

राजा—

शुल्लानता हेतु न हेतु रूप है

महान हो नीच, प्रधान कम है ।

अहो ! इसी का अपमान था किया

सु मान भागी अब रूप है बही ॥३३॥

शुद्धने ! यकी हुई भी तुम्हें मैं फिर कष्ट दूँगा । मुझ
मविस्तर वरण करो ।

शुद्धभला—मुनें भर्ता जी ।

राजा—आपत्ता कम है । सभूत में कहो ।

शुद्धभला—मुन सकते हैं, महायज्ञ ।

(मन्त्र का प्रवचन)

भट्ट—जय हो, महायज्ञ की ।

राजा—

सध पढ़ने दारिद्र्य बंधे, कष्टो चरित्त क्यों आन ?

भट—

‘कैद हुआ अभिमन्यु’ यह प्रिय अर्चित्य नृपराज ! ॥३४॥

बृहन्नला—क्या पकड़ा गया ? (स्वगत)

यह नृप-बल मैंने आज जॉचा गिना है ,
फिर वह उसका भी शौर्य मैंने लखा है ।
सदृश न उसके है ‘सैन्य मे वीर कोई ,
फिर अब मरने से कौन हो कीचकों के ! ॥३५॥

भगवान्—बृहन्नले ! यह क्या है ?

बृहन्नला—भगवन् !

न जाने जेता कौन, वह शिद्धित औ बल-धाम ।
पकड़ा भी वह जा सके, जनक-भाग्य यदि वाम ! ॥३६॥

राजा—वह अब कैसे पकड़ा गया ?

भट—

अहो ! उतारा यान चढ़, धर निज बाहु ललाम ।

राजा—किसने ?

भट—

सौपा है नृपराज ने, जिसे महानस-काम- ॥३७॥

शृङ्खला—(एक ओर का) इस प्रकार आर्य मीम ने वस्त्र
आलिंगन किया है ! पकड़ा नहीं गया !

वस अहो ! हम ये हुए, पा यस दर्शन-योग ।

प्रकट उ-होने पा लिया, पुत्र प्रेम का भोग ॥३८॥

राजा—अच्छा तो सत्कारपूर्वक अभिमन्यु को लिवा लाओ।

भगवान्—ये राजन् ! ससार यह समझेगा कि—यादवों तथा
पाण्डवों से रक्षित अभिमन्यु का सत्कार उनके भय से किया है
इसलिए, इसका तिरस्कार करना ही ठीक है ।

राजा—यादवी-पुत्र तिरस्कार का भाजन नहीं हो सकता।
क्योंकि,

हे यह युधिष्ठिर-सूत्रु, सम-वय पुत्र के मम सर्वथा ,

सम-वय हूँ मैं द्रुपद का हे दोहता इससे तथा ।

दोगा जमार शीघ्र ही, क्या-जनक कहते हमें ;

हे पूज्य अभ्यागत वया धन इष्ट पाण्डव हूँ हमें ॥३९॥

भगवान्—आप ठीक कहते हैं । हमें ऐसा कहना भी चाहिए
था और उसका परिहार भी होना चाहिए था ।

राजा—अच्छा तो इसे कौन लिवाकर लाए ?

भगवान्—शृङ्खला लिवा लाए !

राजा अभिमन्यु को लिवा लाओ ।

बृहन्नला—जो महाराज की आज्ञा । (स्वगत) मुझे अपनी
रकालीन प्रार्थना के अनुकूल काम मिला है ।

(प्रस्थान)

भगवान्—(स्वगत)

वस, आज इसको इस समय निज-पुत्र का दर्शन मिले !
लखकर विजन में और उसका गाढ़ आर्लिगन मिले !
स्वच्छंद होकर छोड़ दे आनंद-वाष्पों की लड़ी !
प्रत्यक्ष इस व्यापार मे आती इसे लज्जा बड़ी ॥४०॥

राजा—आप राजकुमार की बहादुरी देखिएगा !

जीते नृप भीष्मादि सब, कैद सुभद्रा-बाल ।
उत्तर ने संक्षेप में, जीती भूमि विशाल ॥४१॥

(भीमसेन का प्रवेश)

भीमसेन—

घर भुज जननी बंधुगण, जतु-गृह-ज्वाला-काल ।
तुल्य श्रांत रथ से उठा, आज सुभद्रा-बाल ॥४२॥

इधर को, इधर को, राजकुमार !

(अभिमन्यु तथा वृहन्नला का प्रवेश)

अभिमन्यु—अरे ! यह कौन है !

उर विशाल, सुंदर उदर, स्कंध पीन, कटि क्षीण
महाजघ, धर मुज, सचल, लाया, किया दुस्ती न

वृहन्नला—इधर को, इधर को, राजकुमार !

अभिमन्यु—अये ! यह दूसरा कौन है !

जो अनुचित स्त्री-वेश में, गज ज्यों हथिनी रूप ।
बल महान लघु घसन से, हर ज्यों

वृहन्नला—(एक ओर को) इसको यहाँ लाकर आर्य ने
यह क्या किया ?

‘प्रथम समर द्वारा’ दोष भागी बनाया,
प्रिय-सुत रक्षिता दा ! शोचनीया सुमद्रा ।

समस्त ‘जित इसे धीकृष्ण भी मुझ होंगे,
बहुन बस कहूँ क्या, बाहु दोषी बनाए ॥३२॥

भीमसेन—अजुन !

वृहन्नला—जी हों ! जी हों ! यह अजुन-पुत्र है !
(एक ओर को)

सकल ग्रहण के ये दोष मैं जानता हूँ,
निज सुत सहता है कौन वा शत्रु-बंदी !
पर, प्रिय-तनया जो भोगती दुःख भारी,
द्रुपद-नृपति-वाला देख ले, तात ! लाया ॥४६॥

बृहन्नला—(एक ओर को) आर्य ! मुझे इससे बातचीत करने
झड़ी भारी उत्कंठा है । आर्य इसे बोलने के लिए प्रेरित करें !

भीमसेन—अच्छा । अभिमन्यो !

अभिमन्यु—‘अभिमन्यु !’—सचमुच !

भीमसेन—यह मुझ से रूठ होता है । तुम्हीं इससे बात-

बृहन्नला—अभिमन्यो !

अभिमन्यु—क्यों, क्यों ! मैं ‘अभिमन्यु’ हूँ !—सचमुच ! ओह !

नीच पुरुष भी क्या कभी, लेते क्षत्रिय-नाम ?

देश-रीति, वा बंदी का यह परिभव उद्दाम ? ॥४७॥

बृहन्नला—अभिमन्यो ! क्या तुम्हारी माता सकुशल है ?

अभिमन्यु—क्यों, क्यों ! माता के विषय में पूछते हो ?

धर्मराज क्या भीम तुम, अथवा अर्जुन तात ।

पितृ-सम स्वर में पूछते, जो मुझसे खी-बात ? ॥४८॥

बृहन्नला—अभिमन्यो ! क्या देवकी-पुत्र कृष्ण कुशलपूर्वक हैं ?

अभिमन्यु—क्यों, उनका भी नाम लेते हो ? जी, हाँ !
जी, हाँ ! कुशलपूर्वक है—आपका बंधु !

(दोनों एक दूसरे की ओर देखते हैं)

अभिमन्यु—आप लोग क्यों अब मेरी हँसी उड़ा रहे
शृद्धभला—क्या कुछ भी कारण नहीं ?

पार्थ जनक, मातुल तथा मधुसूदन, सुकुमार !
अस्त्र निपुण क्या युवक की समुचित रण में द्वार ?

अभिमन्यु—बंद करो—व्यर्थ ही बक्वाद !

निज स्तुति करना है नहीं, कुल में मम सौजन्य ।
शर-भाग में शर-भाग लखो, नाम न होगा अन्य ॥१६

शृद्धभला—(स्वगत) कुमार ने ठीक कहा ।

रण, अभ्य-भाग, मदमत्त हाथी, शर शोभित ये जहाँ,
किसको न शर विद्या निपुण ने समर में रींघा यहाँ !
करता मुझे भी बाण से निज बाल घायल शीघ्र ही,
रण को न अपने फेरता मैं शीघ्रता से जो कहीं ॥१७

(प्रष्ट) ऐसी अभिमान भरी बात ! फिर इस वैदल ने
पकड़ लिया ?

अभिमन्यु—

शस्त्र-हीन आया निकट, इससे हुआ गृहीत ।

अशस्त्र को क्यों मारता, कर पितृ-स्मरण पुनीत ? ॥५२॥

भीमसेन—(स्वगत)

जिसने संमुख ही सुना, रण मे शौर्य अनन्य—

निज सुत का अपना तथा, है वह अर्जुन धन्य ! ॥५३॥

राजा—जल्दी लाओ, जल्दी लाओ अभिमन्यु को ।

बृहन्नला—इधर को, इधर को, राजकुमार ! ये महाराज हैं ।

राजकुमार पास चले जाएँ !

अभिमन्यु—आः ! किसके महाराज ?

बृहन्नला—न न न ! ब्राह्मण के साथ बैठे हैं !

अभिमन्यु—क्या ब्राह्मण के साथ ? (पास जाकर) भगवन् !
प्रणाम करता हूँ ।

भगवान्—आओ, आओ, वत्स !

जो धीर वीर विनीत करुणा-युक्त निज-जन में तथा ,

है जो प्रियंवद तेजधारी घनुप-विजयी सर्वथा ।

हों एक ही ये जनक के गुण प्राप्त तुमको शीघ्र ही !

बस, शेष चारो में तुम्हें जो भी रुचे पाओ वही ! ॥५४॥

जरासंध को बाँध के, बाहु कंठ में डाल ।

मार उसे वंचित किया, उससे वह नंदलाल ॥५७॥

राजा—

कुपित न निंदा-वचन से, सुख देता तव रोष ।

‘क्यों खड़ा, भग जा’—कहूँ यदि मैं, मिले न दोष ? ॥५८॥

अभिमन्यु—यदि मुझ पर अनुग्रह ही करना है तो,

बंदी-समुचित वेड़ी मेरे-

चरण-युगल में तुम डालो ।

ले जाएगा भीम भुजा से,

हे भुज से हरने वालो ! ॥५९॥

(उत्तर का प्रवेश)

उत्तर—

मिथ्या प्रशंसा अति कष्ट देती,

मिथ्या-प्रशंसा-रत बंदियों की ।

देते मुझे ये रण की बड़ाई,

देता ‘हुँकारी’ मन मैं लजाता ॥६०॥

(पास पहुँच कर) भगवन् ! मैं प्रणाम करता हूँ ।

भगवान्—स्वस्ति ।

उत्तर—पिता जी ! मैं प्रणाम करता हूँ ।

राजा—आओ आओ, पुत्र ! चिरजीवी होओ ! पुत्र !
साइसी बौद्धार्थों का सम्मान कर चुके ?

उत्तर—जी, हाँ, उनका सम्मान हो चुका । अब
की पूजा कीजिएगा ।

राजा—पुत्र ! किसकी ?

उत्तर—इन पूजनीय धनजय की !

राजा—क्या धनजय की ?

उत्तर—जी, हाँ ! पूजनीय इन्होंने,

धनु , अक्षय वाण युक्त ला—
निज तूणीर श्मशान से अहो !
रण में कर मग्न थे समी—
नृप भीष्मादि, हमें यथा लिया । ॥६१॥

राजा—पैसी बात है !

शूद्रभला—दया करें, दया करें, महाराज ।

अति व्यग्र स्व-घाल भाव से,
लड़ता भी निज को न जानता ।
खुद ही कर काम भी समी,
पर का ही उसको पहचानता ॥६२॥

उत्तर—आप अपनी शंका दूर कर लें ! यह, ठीक ठीक बता
 देगा—

गांडीव-डोरी-कृत चिन्ह सूखा ,
 प्रकोष्ठ में जो इनके छिपा है ।
 सवर्णता को जिसने न पाया—
 प्रकोष्ठ की बारह वर्ष मे भी ॥६३॥

बृहन्नला—

रुकने से यह वलय के, होकर मलिन महान ।
 फिर फिर फिरने से हुआ, चिन्ह प्रकोष्ठ-स्थान ॥६४॥

राजा—जरा देखें तो !

बृहन्नला —

भिन्न-देह यदि रुद्र-बाण से ,
 पार्थ में भरत-वंश में हुआ !
 स्पष्ट तो नृपति ! आज जान लो ,
 भीमसेन, नृप धर्मराज ये ॥६५॥

राजा—ऐ धर्मराज ! वृकोदर ! धयंजय ! क्यों आप लोग

मेरा विश्वास नहीं करते ? अच्छा अच्छा ! समय आने पर सही वृहन्नले ! तुम भीतर जाओ ।

शुद्धभला—जो महाराज की आज्ञा ।

भगवान्—अर्जुन ! नहीं, भीतर मत जाओ । हमारी प्रीति पूरा हो चुकी ।

अर्जुन—जो आज्ञा, आर्य की ।

राजा—

सत्य-सध अति धीर जो, प्रण पालक निष्पाप—
पादव जन के वास से, नष्ट हुए कुल पाप ॥६६॥
अभिमन्यु—यहाँ पूजनीय मेरे पिता हैं ! ठीक इमी नि

निंदित भी ये क्षुपित न होते ,

हँस उलटा देते ताना !

धेनु हरण भी अच्छा, जिससे

पितृ-पद-दशन मनमाना ॥६७॥

(मामनेन च लक्ष्य कर) जे तात !

अभियादन मैंने न जो, किया प्रथम अनजान ।

सुत के उस अपराध को, करदो क्षमा प्रदान ॥६८॥

भीमसेन—आओ, आओ, बेग ! अपने पिता जी के हु
परक्री बने !

अभिमन्यु—अनुगृहीत हूँ ।

भीमसेन—पुत्र ! पिता जी को अभिवादन करो ।

अभिमन्यु—पिता जी ! मैं प्रणाम करता हूँ ।

अर्जुन—आओ, आओ, वत्स ! (छाती से लगाकर)

मन-सुखदायी यह वही, पुत्र-अंग का स्पर्श !

नष्ट जिसे फिर पा लिया, पीछे तेरह वर्ष ॥६६॥

पुत्र ! महाराज विराटेन्द्र को अभिवादन करो ।

अभिमन्यु—मैं प्रणाम करता हूँ ।

राजा—आओ, आओ, वत्स !

पाओ युधिष्ठिर-धैर्य तुम, बल भीम अद्भुत वीर का ,

पाओ समर-कौशल तथा तुम पार्थ उस रण-धीर का ।

सुंदर नकुल-सहदेव-सम उनके सदृश विद्वान हो !

उन लोक-प्रिय श्रीकृष्ण जैसी प्राप्त कीर्ति महान हो ॥७०॥

(स्वगत) कितु, उत्तरा के साथ अत्यंत परिचय मुझे विकल कर रहा है ! अब, कैसे करूँगा ! अच्छा, सोच लिया ! (प्रकट)
कौन है यहाँ ?

(भट का प्रवेश)

भट—जय हो, महाराज की ।

राजा—पानी तो ले आओ ।

भट—जो महाराज की आज्ञा । (बाहर आकर लौटकर)
यह लीजिएगा पानी ।

राजा—(लेकर) अजुन ! गो-हरण विजय के पारितोषिक
के रूप में उत्तर को स्वीकार करो ।

भगवान्—यह—कलक लग गया !

प्रजुन—(स्वगत) क्या मेरे चरित्र की परीक्षा कर रहे हैं !
(शकट) ठे राजन् !

किया सभी रनवास का, जननी-सम सत्कार ।

अर्पित जो यह उत्तरा, सुत-हित है स्वीकार ॥७५॥

युधिष्ठिर—यह—कलक दूर हो गया !

राजा—

रण-वीरों के चरित में, पाया जिसने नाम ।

अथ अत पुर वास के, योग्य किप सय काम ॥७६॥

आज ही शुभ नक्षत्र है । आज ही इमका विवाह होजाना चाहिए !

युधिष्ठिर—बहुत अच्छा ! पितामह जी के पास उत्तर को
भेजे देते हैं ।

राजा—जैसी आपकी इच्छा हो ! धर्मराज ! वृकोदर ! धनं-
जय ! इधर को, इधर को, आप लोग । इसी महान हर्ष के साथ
भीतर चलते हैं ।

सब—बहुत अच्छा ।

(सब का प्रस्थान)

तीसरा अंक

(सारथि का प्रवेश)

सारथि—अरे ! सूचित करदो, सूचित करने—सब क्षत्रियों को, जिनके कि सेनापति सब क्षत्रियों के आचार्य श्रेष्ठ हैं, कि—

यस भूलकर भगवान के उस चक्र के भय को तथा ,
द्विर-स्तुत कर उन पाद्यों कर भी परामर्श सधया ।
रक्षा न जिसकी कर सहे कौरव धनुषारी अहो ,
अभिमन्यु को दे हर लिया, लज्जा पड़ी भारी अहो । ॥१॥

(भीष्म, और द्रोण का प्रवेश)

द्रोण—सारथि ! कहो, कहो !

रण में निपुण अभिमन्यु को हर कौन अपराधी बना ,
है कौन रण में चाहता मम दिव्य शर से खेलना ?
था कौन वह नर-श्रेष्ठ, कैसा अस्त्र, बल उसका अहो ,
भेजूँ वही बलवान शर-गण-दूत मैं अपने, कहो ! ॥२॥

भीष्म—सारथि ! कहो, कहो !

दोष यही जो द्वार समर में भगना नहीं जाने ,
यौवन-मद में भ्रम वही रहने की ठानें ।
गज-ग्रहण-समुद्यत किसने यह सहसा आ के ,
पकड़ा कलभ, यूथ के भगने पर, अवसर पा के ? ॥३॥

(दुर्योधन, कर्ण और शकुनि का प्रवेश)

दुर्योधन—सारथि ! कहो, कहो ! अभिमन्यु को कौन हर
ले गया ? मैं ही उसे छुड़ाऊँगा । क्योंकि,

कुल-रिपुता इसके पितरों से मैंने ठानी ,
दोष मुझे ही इससे दैंगे सब जन ज्ञानी ।
किंतु, प्रथम वह मम सुत, पीछे पांडव-गण का ,
कुल-विरोध में क्या कसूर है बालक-जन का ! ॥४॥

कर्ण—आपने अत्यंत प्रेममय और अपने अनुरूप रक्त कहा है ! गाधारी-पुत्र !

स्व-जन भीति से, पुत्र प्रेम से मत तुम ठानो—
उसे छुड़ाने की, निज हित रण-वदी जानो ।
रक्षित वह अभिमन्यु नहीं हा ! हमसे अपना ,
घारो बलकल, त्याग धनुष का अब तो सपना ॥१०॥

शकुनि—सौमद्र के अनेक रक्षक हैं । उसे छुड़ा हुआ ही समझो । क्योंकि,

अर्जुन-सुत—यह जान विराट नरेश्वर तज दे ,
रण-वदी उमे याद कर दामोदर तज दे !
तज दे कुपित हस्ती से नधवा वह भय खा के ,
बली भीम या ले आप कर अरि-वध जा के ! ॥११॥

द्राण—सारथि ! कहो, कहो ! वह अब कैसे पकड़ा गया ?

उलटा रथ क्या ? घोड़े बिगड़े ?

धक्का हुआ या पृथिवी लीन ?

बाण-रक्षित तरकस ? तुम भूले ?

बिफल हुआ धनुष या गुण हीन ?

विधि-वश पाते हैं सब रण में,
 रथी अहो ! ये निग्रह-स्थान !
 अरि वश वाणो से भी करते,
 पर वह युद्ध प्रवीण महान ? ॥७॥

सारथि—राजन् ! वे पुरुष-वेश-धारी साक्षात् धनुर्वेद हैं ।
 क्या महाराज नहीं जानते ?

दोष नहीं इन में था कोई,
 जो कुछ भी कहते हैं आप ,
 महारथी वह भी शर बरसा
 दिखलाता था प्रबल प्रताप ।
 अलात-चक्र-समान चमकते
 रथ को परंतु हा ! मेरे ,
 आकर सहसा पैदल ने ही
 पकड़ा, जब लेता घेरे ॥८॥

सब—क्या पैदल ने ?

द्रोण—अच्छा तो, वह पदाति किस प्रकार का था ?

सारथि—क्या वर्णन करूँगा—उसके रूप अथवा पराक्रम का !

भीष्म—स्त्रियों के रूप का और पुरुषों के पराक्रम का वर्णन
 किया जाता है । इस लिए उसके पराक्रम का वर्णन करो ।

सारथि—राजन् !

दुर्योधन—

स्तुति क्यों करते दूत ! किसी की,
कहकर गर्वित वात ?
कह दो, मुझको घास नहीं, यदि—
कह जब मैं सम-वात ॥६॥

सारथि—सुन सकते हैं, महाराज । उसने, सचमुच,

तब निज जब से पीछे घोड़े,
पकड़ा कर से अगला भाग ।
फैल गई अश्वों की गरदन,
स्तब्ध हुआ रथ, सका न भाग ॥१०॥

भीष्म—तब तो हथियार डाल दो ।

सच—किस लिए ?

भीष्म—

यदि कर भुज से ही घेग से हीन रोका—
रथ, तब समझो है गोद में भीम की ही ।
जब जयद्रथ ने दा ! द्रौपदी को हरा या,
तब पद-चर ने ही शीघ्र जीता उसे या ॥११॥

द्रोण—गांगेय जी ठीक कहते हैं। मैं बचपन से ही, उसे पढ़ाने के समय से लेकर, उसके वेग को जानता हूँ। क्योंकि, शस्त्र-शाला में,

खींच कान तक उसने छोड़ा—
शर जब, 'कंपित शीश' कहा—
मैंने, भग तव वाण-सदृश ही
लक्ष्य-हीन वह वाण गहा ! ॥१२॥

शकुनि—अहो! कैसी हँसी की बात है! अजी! मैं आपसे यह पूछता हूँ—

और न जग में क्या बली, कहते प्रिय-गुण-जात।
क्या जग-न्यापक देखते, पांडव-गण को तात ? ॥१३॥

भीष्म—गांधारराज! सब कुछ अनुमान से कहा जाता है।

जाते ले धनु शस्त्र हम, रण में, चढ़कर यान।
भुज-युग ले दो ही गए—भीम, हली बलवान ॥१४॥

शकुनि—

सहसा हम सब एक ने, जीते साहसि राज।
उत्तर को भी उस कहे, कुछ जन अर्जुन आज ! ॥१५॥

द्रोण—गांधारराज! क्या इसमें भी आपको कुछ संदेह है ?

उत्तर भी क्या खींचे रख में,
 घनुरर वज्र ध्वनि घनघोर ?
 उत्तर के भी धारणों ने क्या,
 ढके किसी क्षण रवि के छोर ? ॥१६॥

भीष्म—गाधारी-पुत्र ! मैं स्पष्ट कहे देता हूँ। क्या तुम्हें,

बाण लिखित वचनों से, जिनका
 गुण रसना आख्यान किया—
 नहीं जाना ? अजुन ने खींचा—
 घनुर, न तुमने ध्यान दिया ? ॥१७॥

(सारथि का प्रवेश)

सारथि—जय हो, महाराज की। शांति-कम का
 कीर्तिगा।

भीष्म—किस लिए ?

सारथि—

तुमको यह शांति योग्य थी—
 पहले ही, जब बाण था लगा—
 ध्यज में, यह बाण, पुरुष वै—
 पढ़ लो नाम किसी सुवीर का ॥१८॥

भीष्म—ले आओ ।

(सारथि बाण समीप ले जाता है)

भीष्म—(बाण हाथ में लेकर, देखकर) वत्स ! गाधारराज ! मेरी दृष्टि बुढ़ापे के कारण मंद पड़ गई है । इस बाण पर क्या लिखा है, बाँचो ।

शकुनि—(बाण हाथ में लेकर, बाँचकर) अर्जुन का । (यह कहकर फेंक देता है और द्रोण के चरणों में गिर पड़ता है)

द्रोण—(बाण हाथ में लेकर) आओ, आओ, वत्स !

करने यह भीष्म-वंदना
शर फेका मम शिष्यने अहो !
करने फिर वंदना मम
चरणों में गिर भूमि चूमता ॥१६॥

शकुनि—नहीं जी ! बाण में विश्वास मत करो ।

योद्धा अर्जुन नाम था, छोड़ा जिसने बाण ।
उत्तर से भी स्पष्ट ही, ले लो लेख-प्रमाण ॥२०॥

दुर्योधन—

देने को यदि राज्य वह, लिख दे भूठा लेख !
दूंगा आधा राज्य मैं, तभी युधिष्ठिर देख ॥२१॥

(भट का प्रवेश)

भट—जय हो, महाराज की । विराट नगर से दूत

है ।

दुर्योधन—लिवा लाओ ।

भट—जो महाराज की आज्ञा ।

(प्रस्थान)

(उतर का प्रवेश)

उतर—

अल्प माग, अति वेग अश्व भी,
 पार ने फिर विलय है किया ।
 पाय बाण-दत्त हस्ति-वृद्ध से,
 दुःख से हम चलें, पटी घरा ॥२२॥

(भीतर आकर हाथ जोककर) अजी ! मैं आचार्य तप
 वितामह-मदित सपूर्ण राज-मंडल को अभिवादन करता हूँ ।

सव—चिगड़ीवी बनो ।

द्रोण—महायज्ञ विराटेश्वर क्या कहने हैं ?

उतर—मुझे महायज्ञ विराटेश्वर ने नहीं भेजा ।

द्रोण—तो तुम्हें किसने भेजा है ?

उत्तर—महाराज युधिष्ठिर ने ।

द्रोण—धर्मराज ने क्या कहा है ?

उत्तर—सुनिष्णा,

उत्तरा नव-वधू मिली हमे ,

मैं नरेंद्र-गण-बाट जोहता ।

हो वहीं, अथ यहीं ? कहों, कहो ,

हो विवाह यह कौन स्थान में ? ॥२३॥

शकुनि—वही, वही ।

द्रोण—

इस विध पांडव-गण का हमने पता लगाया ,

‘पंचरात्र’ का काल अभी भी चीत न पाया ।

विधिवत् जिसको प्रथम दिया था तुमने प्यारे !

धर्म-सहित दो भीख वही आँखो के तारे ! ॥२४॥

दुर्योधन—

पांडव-गण को राज्य मैं, देता पूर्व-समान ।

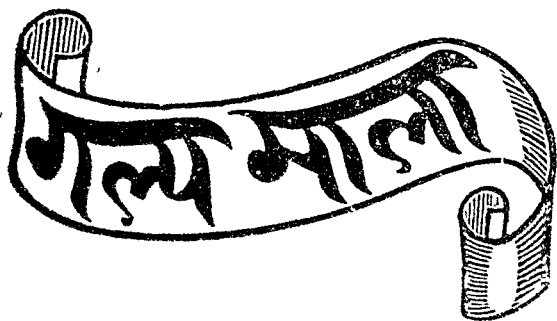
सत्य रहे यदि, नर रहें होकर भी निष्प्राण ॥२५॥

शुद्धि पत्र



पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	७	विराट	विराट
५	५	पहला	तीसरा
१६	५	दुर्योधन	द्रोण
१६	६	द्रोण	दुर्योधन
३४	१५	वन-भूमि	वन-भू
४३	१३	उत्तरा	उत्तरा

मोतीमाला का दसवाँ रत्न



डा० बनारसीदास

गल्प-माला

हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ गल्पों का संग्रह

संग्रहकर्ता और सम्पादक—

डा० बनारसीदास एम० ए०, पी० एच० डी०

लेक्चरर इन हिन्दी

ओरियंटल कॉलिज, लाहौर

प्रकाशक—

मोतीलाल बनारसीदास

हिन्दी-संस्कृत पुस्तकविक्रेता

सैदमिठ्ठा बाजार, लाहौर



दूसरी बार]

सन् १९३७

{ मूल्य १।=)
{ सजिबद १॥)

विषय-सूची

विषय	पृष्ठाङ्क
भूमिका	
श्री प्रेमचन्द	१-४७
सुजान-मगत	२-२२
ईदगाह	२३-४७
श्री सुदर्शन	४६-६४
प्रेम-तरु	५०-७६
राजा	७७-६४
श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'	६५-१३६
राजपूत	६६-११८
मोह	११६-१३६
श्री ज्वालादत्त शर्मा	१३७-१५३
मृत्यु शय्या	१३८-१५३
श्री जैनेन्द्रकुमार 'जैन'	१५५-१७३
फोटोग्राफी	१५६-१७३
श्री चतुरसेन शास्त्री	१७५-१८४
जैसलमेर की राजकुमारी	१७६-१८४
पं० श्रीराम शर्मा	१८५-२०५
स्मृति	१८६-२०५
श्री जयशङ्कर 'प्रसाद'	२०७-२१४
ममता	२०८-२१४

भूमिका

पशु पक्षियों को राग-द्वेष आदि मनोभावों को प्रकट करने के लिये एक सकुचित देश, पात्र और काल की सीमा के अन्दर ही रहना पड़ता है। चिड़िया बच्चे जनती है। बच्चे अंडा में ही होते हैं कि वह उनका पण करने लगती है। बच्चे निकलने पर उनका लालन-पालन करती है। उसे गरमी का दुःख होता है, न सरदी का कष्ट। वे बच्चे ही उसका सार हैं। बच्चे बड़े हुए, उन्हें माता की सहायता की आवश्यकता नहीं होती। वे स्वतन्त्र होकर उड़ जाते हैं, साथ ही उड़ जाती है माता (चिड़िया) की मोह ममता। यही हाल पशुओं का भी है।

पर मनुष्य की दशा भिन्न है। मनुष्य का कार्यक्षेत्र बहुत विस्तीर्ण है। अपने कुटुम्ब के बाद उसका क्षेत्र है क्रमशः अपना समाज, देश और मनुष्यमात्र। उसके सुख दुःख में उसे संवेदना होती है। उनका रिचय पाने को वह सदा उत्कंठित रहता है। इस उत्कंठा की पूर्ति कहानियों में होती है। जहाँ हम अपना सुख-दुःख प्रकट करना चाहते हैं वहाँ दूसरों के सुनने के भी उत्सुक रहते हैं। अपने और दूसरों के हाल नना सुनाना ही तो कहानियाँ हैं।

कहानी कहने की प्रथा प्राचीनतम काल से चली आ रही है। मनुष्य के मुख में जिहवा लगने के साथ ही कहानी की उत्पत्ति है। अन्यविषयक बातों का वर्णन करना ही कहानी नहीं, आत्मविषयक घटनाओं को सुनना ही कहानी है।

संसार के प्राचीनतम साहित्य में भी कहानी अद्भुत किन्ही न ॥
 रूप में विद्यमान है । कई लोगों की धारणा है कि श्रुवेद में
 आख्यायिकायें लिखी हैं । यह बात निर्विवाद नहीं है ।
 गल्पसाहित्य के प्राचीनतम होने में कोई दोष नहीं है ।
 त्रिदास, कुरान, बाइबल में तो कहानियाँ हैं ही, इसमें किसे
 विवाद नहीं ।

वैदिक काल के बाद ब्राह्मण साहित्य में जगद जगद् पर आस्था
 कार्य आती हैं । पुराण तो है ही आख्यायिकायें । प्रत्येक समुदाय
 में आख्यान तथा आख्यायिकाओं का स्थान अत्युच्च है । वे साहित्य
 महान् और आवश्यक अङ्ग हैं । नाटककारों और कवियों की अनेक
 न्यासकारों की सरया बहुत अधिक रहती है । संस्कृत के
 में कवियों की प्रतिभा भी आख्यायिका वर्णन में चमक सकी है ।

हिन्दी के आदि और मध्यकाल में आख्यायिका को साहित्य
 स्थान मिल चुका था । बदलमित्र का नाथिकेतोपाख्यान अच्छी
 है । लखनूलाल का प्रेमसागर मानों प्रेमसागर है । जायसी ने
 पद्मावत की कथा में कथा सुन्दरता से इतिहास और कल्पना का
 किया है । सूफ़ी मठों ने कई आख्यायिकाओं के आधार पर
 स्थिर किये हैं । कुछ समय बाद इशा अल्ला खा की 'रानी का
 निकली । आधुनिक समय में लाला श्रीनिवासदास ने 'पद्मावत
 रामकृष्ण दास ने निस्वहाव हिन्दू पालकृष्ण भद्र ने नूतन
 चारों और 'सौ अज्ञान एक सुज्ञान उपन्यासों का निर्माण किया ।
 दशकीशदाद खत्री की चन्द्रकान्ता और चन्द्रकान्ता सतति एवं चन्द्र
 गोस्वामी चित्तामलाल ने तो उपन्यासों की बाढ़ ही चला दी । इस

कोई सप्ताह खाली नहीं जाता जब एक दो उपन्यास मौलिक या अनूदित प्रकाशित नहीं होते ।

वर्तमान काल के प्रारम्भ में अनेकों विद्वान उपन्यास और कहानियाँ लेखने लगे । उनमें वा० प्रेमचन्द्र जी का स्थान सर्वोच्च है ।

कुछ समय पहले कहानी और उपन्यास में कोई भेद न समझा जाता था । वास्तव में कुछ बड़ा भेद है ही नहीं । कहानी होती है छोटी और उपन्यास होता है बड़ा । जब से हमारा अंग्रेजों के साथ संपर्क हुआ, उनके साहित्य का हमारे विद्वानों को परिचय हुआ—तब से उपन्यास और कहानी में अन्तर देख पड़ने लगा है । छोटी बड़ी कहानियाँ तो पहले भी लिखी जाती थीं । हितोपदेश और पञ्चतन्त्र में ही दोनों तरह की कहानियों के उदाहरण विद्यमान हैं । भेद केवल इतना है कि पुरानी कहानियों में कला को कोई ध्यान नहीं दिया गया केवल कुछ उपदेशमात्र देकर ही कहानी समाप्त की गई है । पर आजकल कहानी लिखना एक कला है, उसका जिसमें अधिकता से निदर्शन होता है वही कहानी उत्तम मानी जाती है ।

आजकल जिसे कहानी कहा जाता है अंग्रेजी में उसके लिये शॉर्ट स्टोरी (Short story) नाम है । वास्तव में कथानक का छोटा होना ही कहानी का लक्षण नहीं । कई चार सौ-सौ पृष्ठों के कथानक कहानी-कोटि में आते हैं और पचास-साठ पृष्ठों के उपन्यास—श्रेणी में । छोटापन कहानी का एक अंग है पर केवल अंग नहीं । तो भी यह बात अवश्य माननीय है कि कहानी को उपन्यास की अपेक्षा अधिक नियन्त्रित रहना पड़ता है । उपन्यास में यह बात नहीं । उसमें लेखक को इधर उधर ताकने भाँकने की पर्याप्त स्वतन्त्रता रहती है । कहा गया है पं० गिरिजादत्त जी शुक्ल एक उपन्यास लिख रहे हैं जिसमें पृष्ठ होंगे चार हजार या इससे भी अधिक । सच पूछा

आय तो बड़ी कड़ाना लिखना है ही कठिन । अवकाश के प्रलोभन में लेखक परिस्थितियों संवेदनाओं और चरित्र चित्रण आदि की उपन्यास पर चलने लगने से सीधा मार्ग छोड़ देता है । फिर न वह कहानी बरती है और न उपन्यास हा । वह 'उभयतो भ्रष्ट हो जाता है ।

कहाना और उपन्यास में मुख्य अन्तर यह है कि कहानी किसी एक तथ्य का लकर लिखा जाता है और उसी की संवेदना उलझ कराना उसका उद्देश्य होता है । उपन्यास में यह बात नहीं । इसमें कोई शक्य नहीं कि उपन्यास लिखने का भी ध्येय एक ही होता है किन्तु उस ध्येय तक पहुँचते पहुँचते कई और तथ्यों का वर्णन करना पड़ जाता है । कहानी के चरित्र चित्रण विराट् अवश्य होता है पर बहुत विस्तार से नहीं होता । उपन्यास में प्रत्येक पात्र के चरित्र पर घटनाओं और परिस्थितियों इतने इच्छातुकूल प्रकाश डाला जाता है । रंगभूमि में 'सूर के चरित्र के लेखक ने जितना विस्तृत और स्पष्ट रूप से चित्रण किया है क्या उसी लिये समभव होता कि एक छोटी सा कहानी में उतना स्पष्टता और खोरसेक सकता । कहानी में पात्रों की अतिसमीपी परिस्थितियों का वर्णन हो पक है पर उपन्यास में केवल उस समय का परिस्थितियों और उपपरिस्थितियों का ही वर्णन नहीं होता बल्कि उस समय का सामाजिक और राजनीतिक स्थिति की अंतरङ्ग, बहिरङ्ग, उलटी सीपी और तिरछी सदृश सभी रूप चित्र चित्रित किया जा सकता है । जिन्होंने डिकन (Dickens) का *A tale of two cities* उपन्यास पढ़ा होगा उनके ज्ञात होगा इंग्लैंड और फ्रांस की तारकातान परिस्थितियों का उसमें कैसा अच्छा वर्णन किया हुआ है ।

कहानियों के आगमन से पूर्व उपन्यास-युग था । लोग उपन्यासों के लिये आलापित रहते थे । कोई उपन्यास चाहे जैसा हो निकला नहीं और हाथोंहाथ बिछा नहीं । उन दिनों 'ब-दका-ता' और 'ब-दका-ता सन्तति की

म मच रही थी। जासूमी उपन्यास सर्वप्रिय हो रहे थे। जो लोग अंग्रेजी या उर्दू जानते थे वे भी नावलॉ (novels) में मस्त रहते थे। नावल पढ़ना एक व्यसन सा हो गया था। आधी आधी रात तक लेंप जलाकर छोटे टाइप में छपे उपन्यासों को पढ़ने से कई नवयुवक नेत्र खराब कर लेते थे।

आखिर, इतना समय निम्नलना भी तो कठिन था। उदरपूर्ति उपन्यासों से न हो सकती थी। जीवन-सघर्ष तीव्र हो चला था। पर साहित्यिक विनोद की सामग्री के बिना भी जीवन नीरस था। फल यह हुआ छोटी कहानियों (short-stories) का उदय हुआ। अंग्रेजी में उत्तम से उत्तम कहानियाँ निकलने लगीं। उनको पढ़ने का शौक बढ़ा। एक कहानी एक आध घंटे में पढ़ी जा सकती थी। इससे समय की बचत के साथ-साथ मनोविनोद भी हो जाता था।

भारत में कहानी लिखने का पहले पहले बंगला में आरम्भ हुआ। बंगला में अच्छे अच्छे लेखकों की कहानियाँ लिखी जाने लगीं। बंगालियों के अनुकरण पर हिन्दी में भी कहानियाँ लिखी जाने लगीं। उनमें कुछ मौलिक होती थीं और कुछ अनूदित। धीरे धीरे कहानियों का प्रचार इतना बढ़ा कि अब कोई ही मासिक, पाक्षिक वा साप्ताहिक पत्र होगा जिस में दो चार कहानियों को स्थान न दिया जाता हो। उनकी उपादेयता ही कहानियों की उपादेयता पर निर्भर हो गई है। परिणामस्वरूप आजकल जितना भी साहित्य का निर्माण होता है उसमें कहानियों का अंश अत्यधिक रहता है।

हिन्दी के कहानी लेखकों में श्रीयुत प्रेमचन्द जी का स्थान सर्वोच्च है। उनकी कहानियों का प्रसारक्षेत्र प्रायः प्रामाण्य जीवन रहता है। नके पात्र सजीव वास्तविक रूप में आपके सामने खड़े मालूम देते हैं। इनके अतिरिक्त श्री सुदर्शन, श्री विश्वम्भरनाथ, श्री ज्वालादत्त, श्री जयशकरप्रसाद,

की टायरी का प्रयोग किया जाता है) —आदि कतिपय रीतियाँ हैं। प्रत्येक रीति का अनुसरण करने में सुविधायें भी हैं और कठिनाइयाँ भी। लेखक को चाहिये कि जिस प्रणाली का वह पूर्णरूप से प्रयोग कर सके उसी को काम में लाये। हिन्दी में ऐतिहासिक, आत्मचरित्र और कथोपकथन द्वारा वर्णित कहानियों की संख्या क्रमशः अधिक वा कम है।

हिन्दी-कहानी का अभी प्रारम्भिक काल है। पिछले दस-बारह वर्षों से कहानी युग चला है। किन्तु इस थोड़े से समय में ही इस कला की आशातीति उन्नति हुई है। यदि इसी तरह समुन्नति होती रही तो अचिरात् कहानियाँ भी हिन्दी के साहित्य-कोष की अमूल्य रत्न होंगी और समय-प्रभाव से ऐसे ऐसे धुरन्धर लेखक निकलेंगे जो सधारभर के साहित्यिक नभोमण्डल में सूर्य और चन्द्र की तरह देदीप्यमान होंगे।

प्रस्तुत सग्रह में हमने जहा तक हो सका है अपने उद्देश्य पूर्ति का यत्न किया है। सब की सब कहानियाँ कहानी-कलाविद् लेखकों की लेखनियों का चमत्कार हैं। साथ ही किसी कहानी में एक भी पद ऐसा नहीं है जो किसी भी अंश में अश्लील कहा जा सके और सुकुमार पाठक और पाठिकाओं की मनोवृत्तियों में कुछ विकारकारक हो। प्रत्येक कहानी इस विशेष शिक्षा (moral) को लिए हुए है।

हमारा विचार है कि योग्य पाठक इस सग्रह में अपनी मनोऽनुकूल सामग्री को प्राप्त करेंगे।

वनारसीदास

श्री प्रेमचन्द

श्रीयुत प्रेमचन्द जी का जन्म सन् १८६० में हुआ और देहान्त सन् १९३६ में। काशी जी के पास ही एक छोटा सा गाव है— दवा।



आप वहीं के निवासी थे।

प्रेमचन्द आपका उपनाम है—

असली नाम ~~द्वै~~ धनपतराय।

पहले पहल आप उर्दू में ही

लिखा करते थे। तब भी आपके

लेख अत्युच्च श्रेणी के होते थे।

उस समय आपका उपनाम

‘नवाबराय’ था।

हिंदी के सद्गुणों और प्रेम

से आकर्षित होकर आपने हिंदी में

लिखना शुरू किया। आपका पहला हिंदी उपन्यास ‘प्रेमा’ में धारा-

रूप में सन् १९०५ में निकलता रहा। किंतु आपकी विशेष ख्याति

तब से होने लगी जब से आपके गल्प सरस्वती आदि पत्रिकाओं में

प्रकाशित होने लगे। थोड़े ही समय में जितनी प्रसिद्धि प्राप्त करने का

आपको सौभाग्य मिला है उतना किसी ही और को मिला होगा। इस

समय तो आपकी रचनाओं को प्रकाशित करने के लिये विशेष प्रत्येक पत्रिका और प्रकाशक लाञ्छायित रहते हैं।

आपने कुछ समय तक माधुरी का संपादन भी किया है—गुरु उससे अलग होकर 'इस (मासिक पत्र) और 'जागरण' का प्रकाशन किया है। इस अब तक चल रहा है। कुछ समय आनंद बर्दे का सिनेमा कंपनी में काम किया था। इनका 'सेवासदन' उपन्यास 'महालक्ष्मी सनटान बर्दे' में चित्रपट रूप में बना हुआ था।

ब्रेमचन्द जी के गल्पों का हिंदी में वही स्थान है जो रवींद्रनाथ टैगोर के गल्पों का बंगला में है। आपके गल्प और उपन्यासों का अनुवाद कतिपय यूरोपियन भाषाओं में भी हो चुका है। इसी लिये आपको औपन्यासिक समाज कहते हैं।

आपका पहला मासिक उपन्यास था—सेवासदन। इसके पश्चात् रंगभूमि काया कल्प, प्रमात्रम आदि लगभग आधा दर्जन और उपन्यास निकल चुके हैं। गल्पों की सख्या तो कई सैकड़ की होगी।

आपकी कहानियों में मार्मिकता अधिक रहता है और इससे प्रभाव हृदय पर अधिक पड़ता है। भावचित्रण में आप सिद्धांत हैं। आपकी एक छोटी सी कहानी वह जादू करती है जो बड़े बड़े उपन्यास नहीं कर सकते। आपकी भाषा अत्यन्त सरल और सरस होती है। उन्हें एक प्रशिक्षित तथा सरल शब्दों का आप हिंदी में भी खूब प्रयोग करते हैं।

सुजान-भगत

(१)

सीधे सादे किसान धन हाथ आत ही धर्म और कीर्ति की ओर झुकते हैं। दिव्य समाज की भांति वे पहले अपने भोग विलास की ओर नहीं दौड़ते। सुजान की खेती में कई साल से कंचन बरस रहा था। मेहनत तो गाव के सभी किसान करते थे, पर सुजान के चन्द्रमा बली थे, ऊसर में भी दाना छींट आता, तो कुछ न कुछ पैदा हो जाता था। तीन वर्ष लगातार ऊख लगती गई। उधर गुड़ का भाव तेज़ था। कोई दो ढाई हजार हाथ में आ गए। बस चित्त की वृत्ति धर्म की ओर झुक पड़ी। साधु संतों का आदर सत्कार होने लगा, द्वार पर धूनी जलने लगी, क्लानूनगों इलाक़े में आते तो सुजान महतो के चौपाल में ठहरते, हलक़े के हेड कान्सटेबल, थानेदार, शिक्षा विभाग के अफ़सर, एक न एक उस चौपाल में पड़ा ही रहता। महतो मारे खुशी के फूले न समाते। धन्य भाग ! उनके द्वार पर अब इतने बड़े-बड़े

हाकिम आकर ठहरते हैं। जिन हाकिमों के सामने उनका मुँह न खुलता था उन्हीं की अर महतो महतो कहते जवन सूखती थी। कभी कभी भजन भाव हो जाता। एक महात्मा ने डोल अच्छा देखा तो गाव में आसन जमा दिया। गाव और चरस की बहार उढने लगी। एक डोलक आई, मजारे मगवाए गए सरसग होने लगा। यह सब सुजान के दम का जलूम था। घर में सेरों दूध होता, मगर सुजान के कठ तल एक बूँद जाने की भी कसम थी। कभी हाकिम लोग चघते, कभी महात्मा लोग। किसान को दूध घी से क्या मतलब उसे तो रोटी और साग चाहिए। सुजान की नम्रता का अब पाराधार न था। सब के सामने सिर झुकाए रहता कहीं लोग यह न कहने लगे कि धन पाकर इसे घमड हो गया है। गाव में कुल तीन ही कुएँ थे, बहुत से खेतों में पानी न पहुचता था, खेती मारी जाती थी, सुजान ने एक पक्का कुआ बनवा दिया। कुए का विवाह हुआ, यह हुआ, ब्रह्मभोज हुआ। जिस दिन कुए पर पहली बार पुर चला सुजान को मानों चारों पदाय मिल गए। जो काम गाव में किसी न न किया था वह बाप दादा के पुण्य प्रताप से सुजान ने कर दिखाया।

एक दिन गाव में गया के यार्थी आकर ठहर। सुजान हा के द्वार पर उनका मोजन पना। सुजान के मन में भी गया

करने की बहुत दिनों से इच्छा थी। यह अच्छा अवसर देख कर वह भी चलने को तैयार हो गया।

उसकी स्त्री बुलाकी ने कहा—अभी रहने दो, अगले साल चलेंगे।

सुजान ने गंभीर भाव से कहा—अगले साल क्या होगा, कौन जानता है। धर्म के काम में मीन-मेख निकालना अच्छा नहीं। जिंदगानी का क्या भरोसा!

बुलाकी—हाथ खाली हो जायगा।

सुजान—भगवान् की इच्छा होगी तो फिर रुपए हो जायेंगे। उनके यहां किस बात की कमी है।

बुलाकी इसका क्या जवाब देती। सत्कार्य में बाधा डालकर अपनी मुक्ति क्यों बिगाड़ती? प्रातःकाल स्त्री और पुरुष गया करने चले। वहां से लौटे, तो यज्ञ और ब्रह्मभोज की ठहरी। सारी विरादरी निमंत्रित हुई, ग्यारह गांवों में सुपारी बटी। इस धूम-धाम से कार्य हुआ कि चारों ओर वाह वाह मच गई। सब यही कहते थे कि भगवान् धन दे तो दिल भी ऐसा ही दे, घमंड तो छू नहीं गया, अपने हाथ से पत्तल उठाता फिरता था, कुल का नाम जगा दिया। बेटा हो तो ऐसा हो। बाप मरा तो घर में भूनी भांग भी नहीं थी। अब लच्छमी घुटने तोड़ कर आ बैठी है।

एक ठेपी ने कहा—कहीं गड़ा हुआ धन पा गया है। इस पर चारों ओर से उस पर चौड़ाई पड़ने लगी—हां तुम्हारे

बाप दादा जो खजाना छोट गए थे वही उसके हाथ लग गया है। अरे भैया, यह धर्म की कमाई है। तुम भी तो छात्र फाटकर काम करते हो, पर्यो ऐसी ऊख नहीं लगती, क्या ऐसी फसल नहीं होती? भगवान् आदमों का दिल देखते हैं जो पारख करना जानता है, उसी को देते हैं।

(२)

सुजान महतो सुजान भगत ही गए। भगतों के आचार विचार कुछ और ही होने हैं। वह बिना स्नान किए कुछ नशा खाता। गंगा जी अगर घर से दूर हों और वह रोज स्नान के दोपहर तक घर न लौट सकता हो, तो पर्वों के दिन तो उसे अवश्य ही नहाना चाहिए। भजन भाव उसके घर अवश्य होना चाहिए। पूजा अर्चा उसके लिये अनिवार्य है। पान पान में भी उसे बहुत विचार रखना पड़ता है। सब स यही बात यह है कि भूठ का त्याग करना पड़ता है। भगत भूठ नहीं बोल सकता। साधारण मनुष्य को अगर भूठ का दड एक मिल, तो भगत का एक लाख से कम नहीं मिल सकता। अज्ञान की अपस्था में कितने ही अपराध क्षम्य हो जाते हैं। ज्ञान के लिये क्षमा नहीं है प्रायश्चित्त नहीं है, या है तो बहुत ही कठिन। सुजान को भी अब भगतों की मयादा को निमाना पड़ा। अब तक उसका ज्ञान मनुष्य का ज्ञान था। उसका कोई आदेश, कोई मयादा उसके सामने नहीं।

अब उसके जीवन में विचार का उदय हुआ, जहां का मार्ग कांटों से भरा हुआ है। स्वार्थ सेवा ही पहले उसके जीवन का लक्ष्य था। 'इसी कांटे से वह परिस्थितियों को तौलता था। वह अब उन्हें औचित्य के कांटों पर तौलने लगा।' यों कहो कि जड़ जगत् से निकल कर उसने चेतन जगत् में प्रवेश किया। उसने कुछ लेन देन करना शुरू किया था, पर अब उसे व्याज लेते हुए आत्म-ग्लानि सी होती थी। यहां तक कि गउओं को दुहाते समय उसे बछड़ा का ध्यान बना रहता था—कहीं बछड़ा भूखा न रह जाय, नहीं उसका रोयां दुखी होगा। वह गाव का मुखिया था, कितने ही मुकदमों में उसने भूठी शहादतें बनवाई थीं कितनों से डाढ़ लेकर मामले को रफ़ा-दफा करा दिया था। अब इन व्यापारों से उसे घृणा होती थी। भूठ और प्रपंच से कोसों भागता था। पहले उसकी यह चेष्टा होती थी कि मजूरो से जितना काम लिया जा सके तो और मजूरी जितनी कम दी जा सके दो, पर अब उसे मजूरो के काम की कम, मजूरी की अधिक चिंता रहती थी—कहीं विचारे मजूर का रोयां न दुखी हो जाय। यह उसका सखुनतक्रिया-सा हो गया—किसी का रोयां न दुखी हो जाय। उसके दोनों जवान बेटे बात बात में उस पर फव्वियां कसते, यहां तक कि बुलाकी भी अब उसे कोरा भगत समझने लगी, जिसे घर के भले बुरे से कोई प्रयोजन न था। चेतन जगत् में आकर सुजान भगत कोरे भगत रह गए।

सुजान के हाथों से धीरे धीरे अधिकार छीने जाने लगे। किस खेत में क्या बोना है, किसको क्या देना है, किससे क्या लेना है जिस भाव क्या चीज बिकी, ऐसी ऐसी महत्वपूर्ण बातों में भी भगत जी की सलाह न ली जाती। भगत के पास कोई जाने ही न पाता। दोनों लड़के या स्वयं बुलाकी दूर ही से मामला कर लिया करती। गाव भर में सुजान का मान सम्मान बढ़ता था, अपने घर में घटता था। लड़के उस का सत्कार अर बहुत करते। उसे हाथ से चारपाई उठात देख लपक कर खुद उठा लाते, उसे चिलमन भरने देते, यहा तक कि उसकी धोती छाटने के लिये भी आग्रह करते थे। मगर अधिकार उसके हाथ में न था। 'बह अथ घर का स्वामी नहीं, मंदिर का देयता था।'

(३)

एक दिन बुलाकी ओपली में दाल छाट रही थी। एक भिखमैंगी द्वार पर आकर चिल्लाने लगा। बुलाकी ने सोचा दाल छाट लूँ तो उसे कुछ दे दूँ। इतन में बड़ा लड़का भोला आकर घोला—अम्मा एक महात्मा द्वार पर खड़े गला फाड़ रहे हैं। कुछ दे दो, नहीं उनका रोया दुगी हो जायगा।

बुलाकी ने उपेक्षा भाव से कहा—भगत के पाव में क्या मँहरी लगी है, क्यों कुछ ले जाकर नहीं दे देते। क्या मेरे चार हाथ हैं ? किस किस का रोया सुधी करूँ, दिन भर तँ ताता लगा रहता है।

भोला—चौपटनास करने पर लगे हुए हैं और क्या । अभी मंहगू वेंग देने आया था । हिसाब से ७ मन हुए । तौला तो पौने सात मन ही निकले । मैंने कहा दस सेर और ला, तो आप बैठे बैठे कहते हैं, अब इतनी दूर कहां लेने जायगा । भरपाई लिख दो, नहीं उसका रोयां दुखी होगा । मैंने भरपाई नहीं लिखी । दस सेर बाकी लिख दी ।

बुलाकी—वहुत अच्छा किया तुमने, बकने दिया करो, दस पांच दफ़े मुँह की खायंगे, तो आपही बोलना छोड़ देगे ।

भोला—दिन भर एक न एक खुचड़ निकालते रहते हैं । सौ दफ़े कह दिया कि तुम घर गृहस्थी के मामले में न बोला करो, पर इनसे बिना बोले रहा ही नहीं जाता ।

बुलाकी—मैं जानती कि इनका यह हाल होगा, तो गुरु-मंत्र न लेने देती ।

भोला—भगत क्या हुए कि दीन दुनिया दोनों से गए । सारा दिन पूजा-पाठ में ही उड़ जाता है । अभी ऐसे बूढ़े नहीं हो गए कि कोई काम ही न कर सकें ।

बुलाकी ने आपत्ति की—भोला, यह तो तुम्हारा कुन्याय है । फावड़ा-कुदाल अब उनसे नहीं हो सकता, लेकिन कुछ-न-कुछ तो करते ही रहते हैं । बैलों को सानी पानी देते हैं, गाय दुहाते हैं, और भी जो कुछ हो सकता है करते हैं ।

भिच्छुक अभी तक खड़ा चिह्ला रहा था । सुजान ने जब घर में से किसी को कुछ लाते न देखा, तो उठकर अंदर गया

और कठोर स्वर से बोला—तुम लोगों को कुछ सुनाइ नहीं देता कि द्वार पर कौन घंटे भर से खड़ा भीख माग रहा है अपना काम तो दिन भर करना ही है, एक छन भगवान् क काम भी तो किया करो ।

बुलाकी—तुम तो भगवान् का काम करने को बैठे ही हो, क्या घर भर भगवान् ही का काम करेगा ?

सुजान—कहा आटा रक्खा है, लाओ में ही निकालकर दे आऊ । तुम रानी बनकर बैठो ।

बुलाकी—आटा मैंने मर मरकर पीसा है, अनाज दे दो । ऐसे मुद्दचिरो के लिये पहर रात से उठकर चक्का नहा चलाती ह ।

सुजान भंडारघर में गए और एक छोटी सी छयड़ी का जो से भरे हुए निकले । जो सेर भर से कम न था । सुजान ने जान बूझकर, केवल बुलाकी और भोला के दिवाने के लिए भिदा परपरा का उल्लघन किया था । तिस पर भी यह दिवाने के लिये कि छयड़ी में बहुत ज्यादा जो नहीं हैं, वह उसे चुटकी से पकड़े हुए थे । चुटकी इतना योभन न समान सकती थी । दाघ काप रहा था । एक क्षण का विलंब होनेस छयड़ी क दाघ से छूटकर गिर पड़ने की समाधान थी । इसलिये वह अट्टी से बाहर निकल जाना चाहते थे । सहसा भोला ने छयड़ी उनके दाघ से छीन ली और तयोरिया बदल कर बोला—संत का माल नहीं है जो लुगाने चले हो । दाता

फाड़ फाड़कर काम करते हैं, तब दाना घर में आता है।

सुजान ने खिसियाकर कहा--मैं भी तो बैठा नहीं रहता।

भोला--भीख भीख की तरह दी जाती है, लुटाई नहीं जाती। हम तो एक बेला खाकर दिन काटते हैं कि पति पानी बना रहे और तुम्हे लुटाने की सूझनी है। तुम्हे क्या मालूम कि घर में क्या हो रहा है।

सुजान ने इसका कोई जवाब न दिया। बाहर आकर भिखारी से कह दिया--बाबा इस समय जाओ, किसी का हाथ खाली नहीं है, और पेड़ के नीचे बैठ कर विचारो भेमश हो गया। अपने ही घर में उसका यह अनादर ! अभी वह अपाहिज नहीं है, हाथ-पांव थके नहीं है, घर का कुछ न-कुछ काम करता ही रहता है। उस पर यह अनादर ! उसी ने यह घर बनाया, यह सारी विभूति उसी के श्रम का फल है, पर अब इस घर पर उसका कोई अधिकार नहीं रहा। अब वह द्वार का कुत्ता है, पड़ा रहे और घर वाले जो रुखा-सूखा दे दे, वह खाकर पेट भर लिया करे ! ऐसे जीवन को धिक्कार है। सुजान ऐसे घर में नहीं रह सकता।

सन्ध्या हो गई थी। भोला का छोटा भाई शंकर नारियल भर कर लाया। सुजान ने नारियल दुकान से टिका कर रख दिया। धरे-धरे तंबाकू जल गया। ज़रा देर में भोला ने द्वार पर चारपाई डाल दी। सुजान पेड़ के नीचे से न उठा।

कुछ देर और गुज़री। भोजन तैयार हुआ। भोला बुलाने

आया। मुजान ने कहा—मूख नहीं है। बहुत मनावन करने पर भी न उठा। तब बुलाकी ने आकर कहा—खाना खाये क्यों नहीं चलते ? जी तो अच्छा है ?

मुजान को सब से अधिक क्रोध बुलाकी पर ही था। यह भी लड़कों के साथ है। यह बैठी देखती रही और मोवा ने मेरे हाथ से अनाज छीन लिया। इसके मुँह से इतना भा न निकला कि ले जाते हैं ले जाने दो। लड़कों को न मारना हो कि मैंने कितने अम से यह गृहस्थी जोड़ी है, पर यह तो जानती है। दिन को दिन और रात को रात नहीं समझ, भादों की अघेरी रात में मडैया लगाए जुआर की रमनात करती था जेठ पैसाख की दोपहरी में भी दम न लेता था और अब मेरा घर पर इतना अधिकार भी नहीं है कि नब तक दे सकूँ। माना कि भीष इतनी नहीं दी जाती, लेकिन इनको तो चुप रहना चाहिये था चाहे मैं घर में आग हा क्यों न लगा दूँ। कानून से भी तो मेरा कुछ होता है। मैं अपना हिस्सा नहीं खाता दूसरों को खिला देता हूँ इस किसी के पाप का क्या सामना। अब इस घण्ट मनाने का है। इसे मैंने पून की छड़ी से भी नहीं चुआ नहीं तो गाव में पेसी कौन औरत है जिसने घसन की लाते न खाए हों। कभी कभी निगाह से देखा तक नहीं। दरप पैसे, लेना देना सब इसी के हाथ में दे रफका था। अब रुपए जमा कर लिए हैं, तो मुँह से घनड करती है। अब इने घेठे प्यारे हैं, मैं तो

निखट्टू, लुटाऊ, घर-फूंकू, घोघा हूँ। मेरी इसे क्या परवा। तब लड़के न थे जब बीमार पड़ी थी और मैं गोद में उठाकर वैद के घर ले गया था। आज इसके बेटे हैं और यह उनकी मां है। मैं तो बाहर का आदमी हूँ, मुझ से घर से मतलब ही क्या। बोला—मैं अब खा पीकर क्या करूंगा, हल जोतने से रहा, फावड़ा चलाने से रहा। मुझे खिला कर दाने को क्यों खराब करोगी। रख दो, बेटे दूसरी बार खायंग।

बुलाकी—तुम तो ज़रा सी बात पर तिनक जाते हो। सब कहा है, बुढ़ापे में आदमी की बुद्धि मारी जाती है। भोला ने इतना ही तो कहा था कि इतनी भीख मत ले जाओ, या और कुछ?

सुजान—हां, इतना ही कहकर रह गया। तुम्हें तो मज़ा आता जब वह ऊपर से दो चार डंडे लगा देता। क्यों? अगर यही अभिलाषा है तो पूरी कर लो। भोला खा चुका होगा, बुला लाओ। नहीं भोला को क्यों बुलाती हो, तुम्हीं न जमा दो दो चार हाथ। इतनी कसर है, वह भी पूरी हो जाय।

बुलाकी—हां और क्या, यही तो नारी का धरम ही है। अपने भाग को सराहो कि मुझ जैसी सीधी औरत पा ली। जिस वल चाहते थे, बिठाते थे। ऐसी मुंहज़ोर होती, तो तुम्हारे घर में एक दिन निवाह न होता।

सुजान—हा भाई, वह तो मैं ही कह रहा हूँ कि तुम देवी थीं और हो। मैं तब भी राजस था और अब तो दैत्य हो

जीवन में कभी न किया था। जब से उन्होंने काम करना छोड़ा था, बराबर चारे के लिये हाथ हाथ पट्टी रहती था। शकर भी काटता था भोला भी काटता था, पर चारा पूरा न पड़ता था। आन बह इन लोंडों को दिखा देंगे चारा कैसे काटना चाहिए। उसके सामने कटिया का पहाड़ खड़ा हो गया। और टुकड़े कितने महीन और सुडौल थे मानों सार में ढाले गए हों।

मुद्द अंधेरे घुलाकी उठी तो कटिया का ढेर देखकर दंग रह गई। बोली—क्या भोला आज रात भर कटिया का काटता रह गया? कितना कहा कि बेटा जी से जहान है, पर मानता ही नहीं। रात को सोया ही नहीं।

सुजान भगत ने ताने से कहा—बह सीता हो कब है। जब देखता हू काम ही काम करता रहता है। ऐसा कमाऊ ससार में और कौन होगा?

इतने में भोला आँसू मलता हुआ बाहर निकला। उस यद्द ढेर देखकर आश्चर्य हुआ। मा से बोला—क्या शकर आज बड़ी रात को उठा था, अम्मा?

घुलाकी—बह तो पड़ा सो रहा है। मैंने तो समझा तुमने काटा होगी।

भोला—मैं तो सवेरे उठ ही नहीं पाता। दिन भर जो कितना काम कर लू, पर रात को मुझ से नहीं उठा जाता।

घुलाकी—तो क्या तुम्हारे दादा ने काटी है?

चीस घन्घे होते हैं। हंसने-बोलने के लिए, गाने बजाने के लिये उसे कुछ समय चाहिए। पड़ोस के गांव में दंगल हो रहा है। जवान आदमी कैसे अपने को वहां जाने से रोकेगा? किसी गांव में बरात आई है, नाच गाना हो रहा है, जवान आदमी क्यों उसके आनन्द से वंचित रह सकता है? वृद्ध-जनों के लिये ये बाधाएं नहीं। उन्हें न नाच-गाने से मतलब, न खेल तमाशे से रस, केवल अपने काम से काम है।

बुलाकी ने कहा—भोला, तुम्हारे दादा हल लेकर गए।
भोला-जाने दो अम्मां, मुझसे तो यह नहीं हो सकता।

(५)

सुजान भगत के इस नवीन उत्साह पर गांव में टीकाएं हुईं। निकल गई सारी भगती। बना हुआ था। माया में फंसा हुआ है। आदमी काहे को भूत है।

मगर भगत जी के द्वार पर अब फिर साधु-संत आसन जमाए देखे जाते हैं। उनका आदर-सम्मान होता है। अब की उसकी खेती ने सोना उगल दिया है। बखारी में अनाज रखने की जगह नहीं मिलती। जिस खेत में पांच मन मुश्किल से होता था उसी खेत में अबकी दस मन की उपज हुई है।

चैत का महीना था। खलिहानों में सतयुग का राज था। जगह-जगह अनाज के ढेर लगे हुए थे। यही समय है जब छपकों को भी थोड़ी देर के लिए अपना जीवन सफल मालूम

होता है, जब गध से उनका हृदय उच्छ्वसित हो जाता है। सुजान भगत टोकरों में अनाज भर भर देते थे और दोनों लकड़े टोकरे लेकर घर में अनाज रख आते थे। कितने ही भाट और भिजुक भगत जी को घेरे हुए थे। उनमें वर भिजुक भी था जो आज से ८ महीने पहले भगत के द्वार से निराश होकर लौट गया था।

सहसा भगत ने उस भिजुक से पूछा—क्यों चामा, आज कदा कदा धक्कर लगा थाए ?

भिजुक—अभी तो कहीं नहीं गया भगतजी, पहले तुम्हारे ही पास आया हू।

भगत—अच्छा, तुम्हारे सामने यह डेर है। इसमें से जितना अनाज उठाकर ले जा सको ले जाओ।

भिजुक ने लुघ नेत्रों से डेर को देखकर कहा—जितना अपने हाथ से उठाकर दे दोगे उतना ही लूंगा।

भगत—नहीं, तुमसे जितना उठ सके, उठा लो।

भिजुक के पास एक चादर थी। उसने कोई दस सेर अनाज उसमें भरा और उठाने लगा। सकोच के मारे और अधिक भरने का उसे साहस न हुआ।

भगत उसके मन का भाव समझ कर आश्वासन देते हुए बोले—यस इतना तो एक बच्चा उठा ले जाएगा।

भिजुक ने मोला की ओर सदिग्ध नेत्रों से देखकर कहा—
मेरे लिये इतना बहुत है।

भगत—नहीं तुम सकुचाते हो । अभी और भरो ।

भिजूक ने एक पंसेरी अनाज और भरा और फिर भोला की ओर सशंक दृष्टि से देखने लगा ।

भगत—उसकी ओर क्या देखते हो बाबाजी, मैं जो कहता हूँ, वह करो । तुमसे जितना उठाया जा सके, उठा लो ।

भिजूक डर रहा था कि कहीं उसने अनाज भर लिया और भोला ने गठरी न उठाने दी, तो कितनी भद्दा होगी । और भिजूकों को हंसने का अवसर मिल जायगा । सब यही कहेंगे कि भिजूक कितना लोभी है । उसे और अनाज भरने की हिम्मत न पड़ी ।

तब सुजान भगत ने चादर लेकर उसमें अनाज भरा और गठरी बांधकर बोले—इसे उठा ले जाओ ।

भिजूक—बाबा इतना तो मुझसे उठ न सकेगा ।

भगत—अरे ! इतना भी न उठ सकेगा ! बहुत होगा तो मन भर । भला जोर तो लगाओ, देखूँ उठा सकते हो या नहीं ।

भिजूक ने गठरी को आजमाया । भारी थी । जगह से हिली भी नहीं । बोला—भगतजी, यह मुझसे न उठेगी ।

भगत—अच्छा बताओ, किस गाव में रहते हो ?

भिजूक—वहीं दूर है भगतजी, अमोला का नाम तो सुना होगा ।

भगत—अच्छा आगे-आगे चलो, मैं पहुंचा दूंगा ।

यह कहकर भगत ने जोर लगाकर गठरी उठाई और

सिर पर रखकर भिक्षुक के पीछे हो लिए। देखने वाले मग्न का यह पौद्य देखकर चकित हो गए उन्हें क्या मादुम पा कि भगत पर इस समय कौन सा नशा था। ८ महाते के निरतर अविरल परिश्रम का आज उन्हें फल मिला था। आज उन्होंने अपना खोया हुआ अधिकार फिर पाया था। यही तलवार जो केले को भी नहीं काट सकती, सान पर चढ़ कर लोहे को काट देती है। मानव जीवन में लाग वड़े महत्त्व की वस्तु है। जिसमें लाग है वह बूढ़ा भी हो तो अज्ञान है। जिसमें लाग नहीं, शैरत नहीं, वह अज्ञान भी हो तो मृतक है। सुज्ञान भगत में लाग थी और उसने उन्हें अमानुषीय वर प्रदान कर दिया था। चलते समय उन्होंने भोला की ओर सगर्भ नेत्रों से देखा और बोले—ये भाट और भिक्षुक बड़े हैं, कोई खाली हाथ न लौटने पाये।

भोला सिर मुकाये खड़ा था। उसे कुछ बोलने की हीसला न हुआ। वृद्ध पिता ने उसे परास्त कर दिया था।



ईदगाह

रमज़ान के पूरे तीस रोज़ों के बाद आज ईद आई है। कितना मनोहर कितना सुहावना प्रभात है। वृक्षों पर कुछ अजीब हरयाली है, खेतों में कुछ अजीब रौनक है, आसमान पर कुछ अजीब लालिमा है। आज का सूर्य देखो, कितना प्यारा, कितना शीतल है, मानो संसार को ईद की बघाई दे रहा है। गांव में कितनी हलचल है। ईदगाह जाने की तैयारियां हो रही हैं। किसी के कुरते में बटन नहीं है, पड़ोस के घर से सुई-डोरा लेने दौड़ा जा रहा है। किसी के जूते कड़े हो गए हैं उनमें तेल डालने के लिए तेली के घर भागा जाता है। जल्दी जल्दी बैलों को सानी-पानी दे दे। ईदगाह से लौटते-लौटते दोपहर हो जायगा। तीन कोस का पैदल रास्ता, फिर सैंकड़ों आदमियों से मिलना-भेंटना। दोपहर के पहले लौटना असम्भव है। लड़के सबसे ज्यादा प्रसन्न हैं। किसी ने एक रोज़ा रक्खा है, वह भी दोपहर तक, किसी ने वह भी नहीं। लेकिन ईदगाह जाने की खुशी उनके हिस्से की

चीज है। रोजे बड़े बूढ़ों के लिए होंगे। इनके लिए तो रंदाई रोजे ईद का नाम रटते थे। आज बह आ गई। अब उदा पढी है कि लोग इद्गाह क्यों नहीं चलते। गृहस्थी की चिन्ताओं से क्या प्रयोजन! सेवियों के लिए दूध और शकर घर में है या नहीं इनकी बला से, ये तो सेवैया खावगे। सब क्या जानें अ-राजान क्यों बद्दहवास चौबरी ब्रायमसला ब घर दौड़े जा रहे हैं। उन्हें क्या खबर कि चौबरी आज आब बदल लें तो यह सारी इद् मुहर्रम हो जाय। उनकी ब्रायम जेम्में में तो कुबेर का धन भरा हुआ है। बार बार जेब व अपना सजाना निकाल कर गिनते हैं और खुश होकर फिर रख लेते हैं। महमूद् गिनता है, एक, दो, दस, चारह। उसके पास चारह पैसे हैं। मोहसिन के पास, एक, दो, तीन, आठ नौ, पन्द्रह पैसे हैं। इब्दी अनागिनती पैसों में अनागिनता चाङ्गे लापगे—रिलौने, मिटारया, बिगुल, गेंद और आने क्या क्या। और सबसे ज्यादा प्रसन्न है हामिद, वह चार पाब खाल का गरीब सूरत, दुबला पतला लड़का जिसका बाप गत वर्ष हैजे की भेंट हो गया और मा न जाने क्यों पारकी होती होती एक दिन मर गए। किसी को पता न चला क्या थीमारी है। बहती भी तो कौन सुनने वाला था। दिल पर जो कुछ घीतती थी, वह दिल में ही सहती थी और जब न सदा गया तो ससार से बिदा हो गए। अब अहमद् अपनी दादी अमीना की गोद में सोता है और उतना ही प्रसन्न

है। उसके अब्बाजान रुपये कमाने गए हैं। बहुत सी थैलियां लेकर आयेंगे। अम्मीजान अल्लाह मियां के घर से उसके लिए बड़ी अच्छी अच्छी चीज़ें लाने गई हैं। इसलिए हामिद प्रसन्न है। आशा तो बड़ी चीज़ है, और फिर बच्चों की आशा ! उनकी कल्पना तो राई का पर्वत बना लेती है। हामिद के पांव में जूते नहीं हैं, सिर पर एक पुरानी धुरानी टोपी है, जिसका गोटा काला पड़ गया है, फिर भी वह प्रसन्न है। जब उसके अब्बाजान थैलियां और अम्मीजान नियामते लेकर आएंगी, तो वह दिल के अरमान निकाल लेगा। तब देसेगा महमूद और मोहसिन और नूरे और सम्मी कहां से उतने पैसे निकालेंगे। अभागिनी अमीना अपनी कोठरी में बैठी रो रही है। आज ईद का दिन और उसके घर में दाना नहीं ! आज आविद होता तो क्या इसी तरह ईद आती और चली जाती ! इस अन्धकार और निराशा में वह डूबी जा रही है। किसने बुलाया था इस निगोड़ी ईद को ? इस घर में उसका काम नहीं है। लेकिन हामिद ! उसे किसी के मरने-जीने से क्या मतलब ? उसके अन्दर प्रकाश है, बाहर आशा। विपत्ति अपना सारा दल बल लेकर आए, हामिद की आनन्द-भरी चितवन उसका विध्वंस कर देगी।

हामिद भीतर जाकर दादी से कहता है—तुम डरना नहीं अम्मां, मैं सबसे पहले आऊंगा। विलकुल न डरना।

भी तो उसी के साथ है। वच्चे को खुदा सलामत रखे, ये दिन भी कट जाएंगे।

गांव से मेला चला। और वच्चों के साथ हामिद भी जा रहा था। कभी सब के सब दौड़ कर आगे निकल जाते। फिर किसी पेड़ के नीचे खड़े होकर साथ वालों का इन्तज़ार करते। यह लोग क्यों इतना धीरे धीरे चल रहे हैं। हामिद के पैरों में तो जैसे पर लग गए हैं। वह कभी थक सकता है! शहर का दामन आ गया। सड़क के दोनों ओर अमीरों के बगीचे हैं। पक्की चारदीवारी बनी हुई है। पेड़ों में आम और लीचियां लगी हुई हैं। कभी-कभी कोई लड़का कंकड़ी उठा कर आम पर निशाना लगाता है। माली अन्दर से गाली देता हुआ निकलता है। लड़के वहां से एक फर्लांग पर हैं। खूब हंस रहे हैं। माली को कैसा उल्लू बनाया!

बड़ी-बड़ी इमारतें आने लगीं। यह अदालत है, यह कॉलेज है, यह क्लबघर है। इतने बड़े कॉलेज में कितने लड़के पढ़ते होंगे! सब लड़के नहीं हैं जी! बड़े बड़े आदमी हैं, सब। उनकी बड़ी बड़ी मूंछें हैं। इतने बड़े हो गए, अभी तक पढ़ते जाते हैं। न जाने कब तक पढ़ेंगे। और क्या करेंगे इतना पढ़ कर। हामिद के मदर्से में दो-तीन बड़े बड़े लड़के हैं, बिलकुल तीन कौड़ी के, रोज़ मार खाते हैं, काम से जी चुराने वाले। इस जगह भी उसी तरह के लोग होंगे, और क्या। क्लबघर में जादू होता है। सुना है, यहां मुरदों की

आदमी हर दूकान पर जाता है और जितना माल बचा होता है, वह सब तुलवा लेता है। और सचमुच के रूप देता है, बिलकुल ऐसे ही रूप।

हामिद को यकीन न आया—ऐसे रूप जिन्नात को कहाँ से मिल जायेंगे ?

मोहसिन ने कहा—जिन्नात को रूपों की कमी ! जिस खजाने में चाहे चले जायं। लोहे के दरवाजे तक उन्हें नहीं रोक सकते जनाव, आप हैं किस फेर में। हीरे-जवाहरात तक उनके पास रहते हैं। जिस से खुश हो गए उसे टोकरों जवाहरात दे दिए। अभी यहां बैठे हैं, पांच मिनट में कहो तो कलकत्ता पहुँच जायं।

हामिद ने फिर पूछा—जिन्नात बहुत बड़े-बड़े होते होंगे ?

मोहसिन—एक-एक आसमान के बराबर होता है जी। ज़मीन पर खड़ा हो जाय तो उसका सिर आसमान से जा लगे। मगर चाहें तो एक लोटे में घुस जायं।

हामिद—लोग उन्हें कैसे खुश करते होंगे। कोई मुझे वह मन्तर बता दे तो एक जिन्न को खुश कर लूं।

मोहसिन—शुभ यह तो मैं नहीं जानता लेकिन चौधरी साहब के काबू में बहुत से जिन्नात हैं। कोई चीज़ चोरी जाय चौधरी साहब उसका पता लगा देंगे और चोर का नाम भी बता देंगे। जुमेराती का बछ्वा उस दिन खो गया था। तीन दिन हैरान हुए, कहीं न मिला। तब झुक मार कर चौधरी के

हामिद ने पूछा—यह लोग चोरी करवाते हैं तो कोई इन्हे पकड़ता नहीं ।

मोहसिन उसकी नादानी पर दया दिखाकर बोला—अरे पागल, इन्हे कौन पकड़ेगा । पकड़ने वाले तो यह लोग खुद हैं । लेकिन अल्लाह इन्हे सज़ा भी खूब देता है । हराम का माल हराम में जाता है । थोड़े दिन हुए मामू के घर में आग लग गई । सारी लेई पूंजी जल गई । एक बरतन तक न बचा । कई दिन पेड़ के नीचे सोए, अल्ला कसम, पेड़ के नीचे । फिर न जाने कहां से एक सौ कर्ज लाये तो बरतन भाड़े आए ।

हामिद—एक सौ तो पचास से ज्यादा होते हैं ?

कहां पचास कहां एक सौ । पचास एक थैली भर होता है । सौ तो दो थैलियों में भी न आवे ।

अब वस्ती घनी होने लगी थी । ईदगाह जाने वालों की टोलियां नज़र आने लगीं । एक से एक भड़कीले बख पहने हुए । कोई इक्के तांगे पर सवार, कोई मोटर पर, सभी इत्र में बसे, सभी के दिलों में उमंग । ग्रामीणों का यह छोटा सा दल, अपनी विपन्नता से बेखबर, सन्तोष और धैर्य में मगन चला जा रहा था । बच्चों के लिये नगर की सभी चीज़ें अनोखी थी । जिस चीज़ की ओर ताकते, ताकते ही रह जाते । और पीछे से बार-बार हार्न की आवाज़ आने पर भी न चेतते । हामिद तो मोटर के नीचे जाते जाते बचा ।

सहसा इदगाह नजर आया । ऊपर इमली के घने वृक्ष का साया है । नीचे पक्का फसल है जिस पर जाज़िम बिड़ा हुआ है । और रोजेदारों की पत्तियाँ एक के पीछे एक न पान कदा तक चली गई हैं पक़े जगत के नीचे तक, उर् जाज़िम नहीं है । नए आने वाले आकर पीड़े की क़त्त में खड़े हो जाते हैं । आगे जगह नहीं है। यहा कोई धन और पद नहीं देखता । इस्लाम की निगाह में सब बराबर हैं । ए प्रामीणों ने भी घजू किया और पिछली पत्तियों में ख हो गए । कितना सुंदर सञ्चालन है कितना सुंदर व्यवस्था ! लाखों सिर एक साथ सिजदे में झुक जाते हैं फिर सब के सब एक साथ खड़े हो जाते हैं । एक साथ झुकते हैं और एक साथ घुटनों के बल बैठ जाते हैं । कई बार यही किया होती है, जैसे बिजली की लाखों बलियाँ एक साथ प्रदीप्त हों और एक साथ बुझ जाए और यहा कन चलता रहे । कितना अपूर्व दृश्य था, जिसकी सामूहिक क्रियाएँ, विस्तार और अनंतता हृदय को धुंदा, गर्व और आत्मानंद से भर देती थीं मानों आवृत्त का एक सूत्र ए समस्त आत्माओं में एक लड़ी में विरोध हुए है ।

(२)

नमाज़ खत्म हो गई है । लोग आपस में गले मिल रहे हैं । तब मिट्टाई और बिलौनों की दुकानों पर आका

होता है । ग्रामीणों का यह दल इस विषय में घालकों से हम उत्साही नहीं है । यह देखो हिंडोला है । एक पैसा देकर चढ़ जाओ । कभी आसमान पर जाते हुए मालूम होंगे, कभी ज़मीन पर गिरते हुए । यह चर्खी है । लकड़ी के शीथी, घोड़े, ऊंट सीखों से लटके हुए हैं । एक पैसा देकर बैठ जाओ और पच्चीस चक्कों का मज़ा लो । महमूद और मोहसिन और नूरे और सम्मी इन घोड़ों और ऊंटों पर बैठते हैं । हामिद दूर खड़ा है । तीन ही तो पैसे उसके पास हैं । अपने कोश का एक तिहाई ज़रा सा चक्कर खाने के लिए नहीं दे सकता ।

सब चर्खियों से उतरते हैं । अब खिलौने लेंगे । इधर दूकानों की कतार लगी हुई है । तरह तरह के खिलौने हैं—सिपाही और गुजरिया, और राजा और वकील, और भिश्ती और घोविन और साधू । वाह ! कितने सुन्दर खिलौने हैं ! बोला ही चाहते हैं । महमूद सिपाही लेता है, खाकी वर्दी और लाल पगड़ी वाला, कन्धे पर बन्दूक रखे हुए, मालूम होता है अभी कवायद किए चला आ रहा है । मोहसिन को भिश्ती पसन्द आया । कमर झुकी हुई है, ऊपर मशक रखे हुए हैं, मशक का मुंह एक हाथ से पकड़े हुए है । कितना प्रसन्न है । शायद कोई गीत गा रहा है । वस, मशक से पानी उड़ेला ही चाहता है । नूरे को वकील से प्रेम है । कैसी विद्वत्ता है उनके मुस पर, काला चुया, नीचे सफ़ेद अचकन,

अचकन के सामने की जेब में घड़ी की सुनहरी जंगार, एक हाथ में कानून का पोथा लिए हुए । मालूम होता है, प्रायः किसी अदालत से जिरह या बहस किए चले आ रहे हैं। पर सन दो दो पैसे के खिलाफ हैं । हामिद के पास कुल तल पैसे हैं । इतने महंगे खिलाफे बहस कैसे ले ? खिलाफा का हाथ से छूट पड़े तो चूर चूर हो जाय । जरा पानी पान तो सारा रग धुल जाय । ऐसे खिलाफे लेकर बहस करगा, किस काम के !

मोहसिन कहता है—मेरा भियनी रोज पानी दे जायगा, साम सघरे ।

महमूद—और मेरा सिपाही घर का पहरा देगा । का चोर आया तो फौरन बन्दूक फेर कर देगा ।

नूरे—और मेरा बकील न्यू मुकदमा लड़ेगा ।

सम्मी—मेरी धोयिन रोज कपड़े धोएगी ।

हामिद खिलाफों की निंदा करता है—मिट्टी हीं के ठ हैं, गिरें तो चकनाचूर हो जाय । लेकिन लालचार्ड डुर्र आस खिलाफों को देख रहा है और चाहता है कि जरा देर लिये उन्हें हाथ में ले सकता । उसके हाथ अनायास लपकत हैं, लेकिन लड़के इतने त्यागी नहीं होते, विशेष कर जब अभी नया शौक है । हामिद ललचता रह जाता है ।

खिलाफों का याद मिटाइयां आती हैं । किसीने रेजिस्ट्रार ला है, किसीने गुलाब जामुन, किसीने सोहनहल्लया ! मः

से खा रहे हैं। हामिद उनकी विरादरी से पृथक् है। अभागे के पास तीन पैसे हैं। क्यों नहीं कुछ लेकर खाता ? ललचाई आंखों से सब की ओर देखता है।

मोहसिन कहता है—हामिद यह रेउड़ी ले जा, कितनी खुशबूदार है !

हामिद को सन्देह हुआ, यह केवल क्रूर विनोद है, मोहसिन इतना उदार नहीं है, लेकिन यह जान कर भी वह उसके पास जाता है। मोहसिन दोने से एक रेउड़ी निकाल कर हामिद की ओर बढ़ाता है। हामिद हाथ फैलाता है। मोहसिन रेउड़ी अपने मुंह में रख लेता है। महमूद, नूरे और सम्मी खूब तालियां बजा-बजा कर हंसते हैं। हामिद खिसिया जाता है।

मोहसिन—अच्छा अबकी जरूर देगे हामिद, अल्ला कसम ले जाव।

हामिद—रक्खे रहो। क्या मेरे पास पैसे नहीं हैं।

सम्मी—तीन ही पैसे तो हैं। तीन पैसे में क्या-क्या लोगे ?

महमूद—हम से गुलाब जामुन ले जाव हामिद। मोहसिन वदमाश है।

हामिद—मिठाई कौन बड़ी नेमत है। किताय में इसकी कितनी बुराइयां लिखी हैं।

मोहसिन—लेकिन दिल में कह रहे होंगे कि मिले तो पा लें। अपने पैसे क्यों नहीं निकालते ?

महमूद—हम समझते हैं, इसकी चालाकी। जब हमारे सारे पैसे खर्च हो जाएंगे तो हमें ललचा ललचा कर खायगा। मिठाइयों के बाद कुछ दूकानें लोहे की चीजों का हैं। कुछ मिलट और नरुली गद्दों की। लडकों के लिए पर्यं कोई आकर्षण न था। यह सब आगे बढ़ जाते हैं। हार लोहे की दूकान पर जाता है। कइ चिमटे रफ़्तो हुए हैं। उसे खाल आया, दादी के पास चिमटा नहीं है। तब वे रोटिया उतारती हैं तो हाथ जल जाता है। अगर वह बिना ले जाकर दादी को द दे तो वह कितनी प्रसन्न होगी ! तब उनकी उगलिया न जलेंगी। घर में एक काम की बर्त हो जायगी। खिलौने से क्या फायदा। दरम में पैसे खर्च होते हैं। जरा देर ही तो सुधी होती है। फिर तो यिनकी को कोई आस उठा कर नहीं देखता। या तो घर पहुँचते पहुँचते टूट फूट धराधर हो जायगे या छोटे बच्चे जो मल नहीं आप ई जिद करके ले लेंगे और ताड़ डालेंगे। बिना कितने काम की चीज है। रोटिया तब से उतार लो, चूल्हे में सेंक ला। कोई आग मागने आये तो चूटपट चूल्हे से आ निकाल कर उसे दे दो। अम्मा येचारी को कहा फुरसत है कि बाज़ार आप और इतने पैसे ही कहा मिलते हैं। रात हाथ जला लता है। हामिद के साथी आगे बढ़ गए हैं।

संबील पर सबके सब शर्वत पी रहे हैं। देखो, सब कितने लालची हैं। इतनी मिठाइयां ली, मुझे किसी ने एक भी न दी। उस पर कहते हैं मेरे साथ खेलो। मेरा यह काम करो। अब अगर किसी ने कोई काम करने को कहा तो पूछूंगा। खायं मिठाइयां, आप मुंह सड़ेगा, फोड़े फुन्सियां निकलेगी, आप ही ज़वान चटोरी हो जायगी। तब घर से पैसे चुराएंगे और मार खाएंगे। किताब मे भूठी बातें थोड़े ही लिखी हैं। मेरी ज़बान क्यों खराब होगी। अम्मां चिमटा देखते ही दौड़ कर मेरे हाथ से ले लेंगी और कहेगी—‘मेरा बच्चा अम्मां के लिए चिमटा लाया है!’ हज़ारों दुआएं देंगी। फिर पड़ोस की औरतों को दिखाएंगी। सारे गांव में चरचा होने लगेगी, हामिद चिमटा लाया है। कितना अच्छा लड़का है। इन लोगों के खिलौनों पर कौन इन्हें दुआएं देगा। बड़ों की दुआएं सीधे अल्लाह के दरबार में पहुंचती हैं, और तुरन्त सुनी जाती हैं। मेरे पास पैसे नहीं हैं। तभी तो मोहसिन और महमूद यों मिज़ाज दिखाते हैं। मैं भी इनसे मिज़ाज दिखाऊंगा। खेलें खिलौने और खायं मिठाइया। मैं नहीं खेलता खिलौने, किसी का मिज़ाज क्यों सहूं। मैं गरीब सही, किसी से कुछ मांगने तो नहीं जाता। आखिर अब्बाजान कभी न कभी आएंगे। अम्मां भी आएंगी ही। फिर इन लोगों से पूछूंगा कितने खिलौने लोगे। एक एक को टोक़रियों खिलौने दूं और दिखा दूं कि दोस्तों के साथ इस तरह सलूक किया जाता है।

यह नहीं कि एक पैसे की रेखाडिया लीं तो चिढ़ा चिढ़ा कर खाने लगे। सरेके सच खूब हँसे कि, हामिद ने चिमटा लिया है। हसे। मेरी बला से, उसने दूकानदार से पूछा—
यह चिमटा कितने का है ?

दूकानदार ने उसकी ओर देखा और कोई आदमी सपन देखकर कहा—यह तुम्हारे काम का नहीं है जी।

बिकाऊ है कि नहीं ?

'बिकाऊ क्यों नहीं है। और यहाँ क्यों लाद लाए हैं ?'

'तो बनाते क्यों नहीं, केँ पैसे का है ?'

छेँ पैसे लगेंगे।'

हामिद का दिल घँठ गया।

'ठीक-ठाक बताओ !'

'ठीक ठीक पाच पैसे लगेंगे लेना हो लो, नहीं चलते बता।
हामिद ने कलजा मजबूत करके कहा—तीन पैसे लो !'

यह कहता हुआ वह आगे बढ़ गया कि दूकानदार का सुझाविया न सुने।

लेकिन दूकानदार ने सुझाविया नहीं दी। मुलाकर चिमटा दे दिया। हामिद ने उसे इस तरह बन्धे पर रफ़ा माना यहूक है और शान से अकबता हुआ सगिर्यों के पास आया। जरा सुने सरेके सच क्या क्या आलोचनाएँ करत हैं।

माहसिन न हस कर कहा—यह चिमटा क्यों बापा पगले ! इसे क्या करेगा ?

हामिद ने चिमटे को जमीन पर पटक कर कहा—जरा अपनी भिंशती जमीन पर गिरा दो। सारी पसलियां चूर चूर हो जायं बच्चा की।

महमूद बोला—तो यह चिमटा कोई खिलौना है ?

हामिद—खिलौना क्यों नहीं। अभी कन्धे पर रक्खा बन्दूक हो गई। हाथ में ले लिया, फकीरो का चिमटा हो गया। चाहूं तो इससे मजीरे का काम ले सकता हूं। एक चिमटा जमा दूं तो तुम लोगो के सारे खिलौनों की जान निकल जाए। तुम्हारे खिलौने कितना ही जोर लगावें, मेरे चिमटे का बाल भी बांका नहीं कर सकते। मेरा बहादुर शेर है—चिमटा।

सम्मी ने खंजरी ली थी। प्रभावित होकर बोला—मेरी खंजरी से बदलोगे ? दो आने की है।

हामिद ने खंजरी की ओर उपेक्षा से देखा—मेरा चिमटा चाहे तो तुम्हारी खंजरी का पेट फाड़ डाले। बस एक चमड़े की झिल्ली लगा दी, ढब ढब बोलने लगी। जरा सा पानी लग जाय तो खतम हो जाय। मेरा बहादुर चिमटा आग में, पानी में, आधी में, तुफान में बराबर डटा खड़ा रहेगा।

चिमटे ने सबको मोहित कर लिया, लेकिन अब पैसे किसके पास धरे हैं। फिर मेले से दूर निकल आए हैं, नौ कबके बज गए, धूप तेज हो रही है। घर पहुंचने की ज़िदें

हो रही है। बाप से जिद् भी करें तो चिमटा नहीं मिल सकता। हामिद् है बढा घालाक। इसी लिए बढमाश न अपने पैसे बचा रखे थे।

अब बालकों के दो दल हो गए हैं। मोहसिन, महमूद सम्मी और नूरे एक तरफ हैं हामिद् अकेला दूसरी तरफ। शास्त्रार्थ हो रहा है। सम्मी तो विघर्षी हो गया। दूसरे पक्ष से जा मिला। लेकिन मोहसिन, महमूद और नूरे भा हामिद् से एक एक दो दो साल बँट होने पर भी हामिद् क आघातों से आतन्त्रित हो उठे हैं। उसके पास न्याय का बव है और नीति की शक्ति। एक ओर मिट्टी है दूसरी ओर लोहा, जो इस बन्न अपने को फौलाद कह रहा है। धा अजेय है, घातक है अगर कोई शेर आ जाय, तो मिथ भिरती के छुके छूट जाय, मिया सिपाही मिट्टी की बूँद छोड़ कर भागें वकील साहय की नानी मर जाय, चुपम मुद् डिपा कर ज़मीन पर लेट जाय, मगर यह चिमन यह बहादुर यह रस्तेमे हिन्द लपक कर शेर की गरदन पर सवार हो जायगा और उसकी आँसू निकाल लेगा।

मोहसिन ने पटी चोटी का ज़ोर लगा कर कहा—अच्छा पानी तो नहीं मर सकता।

हामिद् न चिमटे की सीधा खड़ा करके कहा—भिरती का एक डाट बतायगा तो दौड़ा हुआ पानी लाकर उसके द्वार पर छिड़कने लगेगा।

मोहसिन परास्त हो गया, पर महमूद ने कुमक पहुंचाई—
अगर वचा पकड़े जाय तो अदालत में बंधे फिरेगे । तब तो
वकील साहब ही के पैरों पड़ेंगे ।

हामिद इस प्रबल तर्क का जवाब न दे सका । उसने
पूछा—हमें पकड़ने कौन आएगा ?

नूरे ने अकड़ कर कहा—यह सिपाही बन्दूक वाला ।

हामिद ने मुंह चिढ़ा कर कहा—यह बेचारे हमारे
बहादुर रस्तमे हिन्द को पकड़ेंगे ! अच्छा लाओ अभी ज़रा
कुशती हो जाय । इसकी सूरत देख कर दूर से भागेंगे ।
पकड़ेंगे क्या बेचारे !

मोहसिन को एक नई चोट सूझ गई—तुम्हारे चिमटे
का मुंह रोज आग में जलेगा ।

उसने समझा था कि हामिद लाजवाब हो जायगा लेकिन
यह बात न हुई । हामिद ने तुरन्त जवाब दिया—आग में
बहादुर ही कूदते हैं जनाव, तुम्हारे यह वकील, सिपाही
और भिश्ती औरतों की तरह घर में घुस जायेंगे । आग
में कूदना वह काम है जो यह रस्तमे हिन्द ही कर सकता है ।

महमूद ने एक ज़ोर लगाया—वकील साहब कुरसी मेज़
पर बैठेंगे, तुम्हारा चिमटा तो बाबरचीखाने में ज़मीन पर
पड़ा रहेगा ।

इस तर्क ने सम्मी और नूरे को भी सजीव कर दिया ।
कितने ठिकाने की बात कही है पढ़े ने । चिमटा बाबरची

में पड़े रहने के सिवा और क्या कर सकता है।

हामिद को कोई फडकता हुआ जगमग न सूझा तो उम्प धाधली शुरू की—मेरा चिमटा बाघरचीखाने में नहीं रहेगा। यकील साइर कुरसी पर बैठेंगे तो जाकर उन्हें जमान पण पटक देगा और उनका जानून उनके पेट में डाल देगा।

बात कुछ चली नहीं। खासी गाली गलौज थी। लेकिन जानून का पेट में डालने वाली बात छु गई। ऐसी हार कि तीनों सुरमा मुद्द तकने रह गए मानों कोई धक्का ककौआ किसी डण्डे वाले ककौए का फाट गया हो। जानून मुद्द से बाहर निकलने वाली चीज है। उसको पेट में अन्दर डाल दिया जाये वेनुकी सी बात होने पर भी कुत नयापन रखती है। हामिद ने मैदान मार लिया। उसका चिमटा दस्तने दिन्दे। अब इसमें मोहसिन, महमूद, नू सम्मी, किसी को भी आपत्ति नहीं हो सकती।

विजेता को हारने वालों से जो सत्कार मिलता स्वामाविष है वह हामिद को भी मिला। औरों ने तीन तीन, चार चार आने जैसे खच किए पर कोई काम की चीज न ल सके। हामिद ने तीन पैसों में रग जमा लिया। सच ही तो है खिलाड़ों का क्या भरासा ! डूट फूट जायगे। हामिद का चिमटा ता बना रहेगा यरसों !

सा घ की शर्तें तय होने लगीं। मोहसिन ने कहा—जुर अपना चिमटा दो हम भी देखें। तुम हमारा मिदती लेकर देखो

हव स्वर्ग लोक से मर्त्य-लोक में आ रहे और उनका माटी चोला माटी में मिल गया ! फिर बड़े ज़ोर-शोर से तम हुआ और वकील साहब की अस्थि पारसियों की गनुसार घूर पर डाल दी गई ।

अब रहा महमूद का सिपाही । उसे चटपट गांव का दूरा देने का काम मिल गया, लेकिन पुलिस का सिपाही ई साधारण व्यक्ति तो नहीं, जो अपने पैरों चले । वह लकी पर चलेगा । एक टोकरी आई । उसमें कुछ लाला के फटे-पुराने चिथड़े विछाये गए, जिसमें सिपाही साहब ताराम से लेंटे । नूरे ने वह टोकरी उठाई और अपने द्वार तक चकर लगाने लगे । उनके दोनों छोटे भाई सिपाही की रक्त से 'छोने वाले, जागते लहो' पुकारते चलते हैं । मगर तब तो अंधेरी होनी ही चाहिए । महमूद को ठोकर लगती है । टोकरी उसके हाथ से छूट कर गिर पड़ती है और गांवां सिपाही अपनी बन्दूक लिए ज़मीन पर आ जाते हैं और उनकी टांग में विकार आ जाता है । महमूद को आज्ञा मिलती है कि वह अच्छा डॉक्टर है । उसको ऐसा मरहम मिला गया है जिससे वह टूटी टांग को आनन-फानन जोड़ सकता है । केवल गूलर का दूध चाहिए । गूलर का दूध प्राता है । टांग जोड़ दी जाती है, लेकिन सिपाही को ज्यों ही बढ़ा किया जाता है, टांग जवाब दे देती है । शल्य क्रिया असफल हुई तब उसकी दूसरी टांग भी तोड़ दी जाती है ।

को दिए। महमूद ने केवत ह्यामिद को सांझी बनाया। उसके अन्वयमित्र मुद्दताकते रह गए। यह उस विमटे का प्रसाद था।

(३)

ग्यारह बजे सारे गाव में हलचल मच गई। भेते चले आगए। मोहसिन की छोटी बहिन ने दौड़ कर भिश्ती उल्लेख हाथ से छीन लिया और मारे खुशी के जो उछली तो भिश्ती नीचे आ रहे और सुरलोक सिधारे। इस पर भई बहिन में मारपीट हुई। दोनों खूब रोए। उनकी अम्मा का शोर सुन कर गिगडी और दोनों को ऊपर से दो दो चोरे और लगाए।

मिया नूरे के बकील का अन्त उनकी प्रतिष्ठानुकूल इसल प्यादा गौरवमय हुआ। बकील जमीन पर या ताक पर ठ नहीं बैठ सकता है। उसकी मर्यादा का विचार तो करना ही होगा। दीवार में दो सूटिया गाड़ी गई। उन पर लकड़ा का एक पट्टा रफपा गया। पट्टे पर कागज का कालीन बिहवाया गया। बकील सादय राजा भोज की माति इस सिंहासन पर गिराणे। नूरे ने उठे पहा झलना शुरू किया। अदालतों में की टटियाँ और बिजली के पहे रहते हैं। क्या यहाँ की पहा भी न हो। क़ारून की गर्मी विमाय पर चढ़ गी कि नहीं। वास का पहा आया और नूरे हवा करते व। मानुम नहीं पहा की हवा से या पहे की चोट से बकाल

साहब स्वर्ग लोक से मर्त्य-लोक में आ रहे और उनका माटी का चोला माटी में मिल गया ! फिर बड़े ज़ोर-शोर से मातम हुआ और बकील साहब की अस्थि पारसियों की प्रथानुसार घूर पर डाल दी गई ।

अब रहा महमूद का सिपाही । उसे चटपट गांव का पहरा देने का काम मिल गया, लेकिन पुलिस का सिपाही कोई साधारण व्यक्ति तो नहीं, जो अपने पैरों चले । वह पालकी पर चलेगा । एक टोकरी आई । उसमें कुछ लाल रंग के फटे-पुराने बिथड़े बिछाये गए, जिसमें सिपाही साहब आराम से लेंटे । नूरे ने वह टोकरी उठाई और अपने द्वार का चक्कर लगाने लगे । उनके दोनों छोटे भाई सिपाही की तरफ से 'छोने वाले, जागते लहो' पुकारते चलते हैं । मगर रात तो अंधेरी होनी ही चाहिए । महमूद को ठोकर लग जाती है । टोकरी उसके हाथ से छूट कर गिर पड़ती है और मियां सिपाही अपनी बन्दूक लिए ज़मीन पर आ जाते हैं और उनकी टांग में विकार आ जाता है । महमूद को आज्ञात हुआ कि वह अच्छा डॉक्टर है । उसको ऐसा मरहम मिल गया है जिससे वह टूटी टांग को आनन-फानन जोड़ सकता है । केवल गूलर का दूध चाहिए । गूलर का दूध आता है । टांग जोड़ दी जाती है, लेकिन सिपाही को ज्यों ही खड़ा किया जाता है, टांग जवाब दे देती है । शल्य क्रिया असफल हुई तब उसकी दूसरी टांग भी तोड़ दी जाती है ।

अब कम से कम एक जगह आराम से बैठ तो सकता है। एक टांग से तो न चल सकता था, न बैठ सकता था। अब वह सिपाही सन्धासी हो गया है। अपनी जगह पर बैग बैठा पहरा देता है। कर्मी कर्मी देवता भी बन जाता है। उसके सिर का झालरदार, साफा खुरच दिया गया है। इससे अब उसका जितना रूपांतर चाहो कर सकते हो। कर्मी कर्मी तो उससे बाट का काम भी लिया जाता है।

अब मिया हामिद का हाल सुनिये। अमीना उसका आयाज सुनते ही दौड़ी और उसे गोद में उठा कर प्यार करने लगी। सबसे उसके हाथ में चिमटा देग कर वह बोला।

यह चिमटा कहा था ?

मैंने मोल लिया है।

कैसे में ?

तीन पैसे दिए।

अमीना ने छाती पीट ती। यह कैसा त्रसमक लडका है कि दोपहर हुआ कुछ खाया न पिया। लाया क्या था चिमटा। सार मले में तुम्हें और कोई चीज़ न मिली जो वह लाइ का चिमटा उठा लाया ?

हामिद ने अपराधा भाव से कहा—तुम्हारी उगलिया तो स जल जाती थीं। इसलिए मैंने इसे ले लिया।

। बुढ़िया का क्रोध तुरन्त छेद में बदल गया, और छेद भी यह नहीं जो प्रगल्भ होता है और अपनी सारी कसक यहाँ

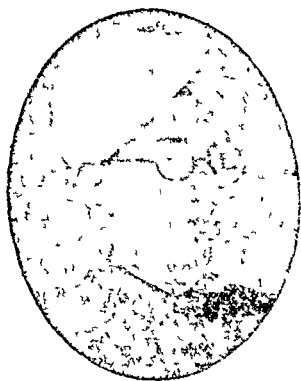
में विखेर देता है। यह मूक स्नेह था, खूब ठोस, रस और स्वाद से भरा हुआ। बच्चे में कितना त्याग और कितना सद्भाव और कितना विवेक है। दूसरों को खिलौना लेते और मिठाई खाते देख कर इसका मन कितना ललचाया होगा। इतना ज़ब्त इससे हुआ कैसे? वहां भी इसे अपनी बुढ़िया दादी की याद बनी रही। अमीना का मन गद्गद हो गया।

और अब एक बड़ी विचित्र बात हुई। हामिद के इस चिमटे से भी विचित्र। बच्चा हामिद ने बूढ़े हामिद का पार्ट खेला था। बुढ़िया अमीना बालिका अमीना बन गई। वह रोने लगी। दामन फैलाकर हामिद को दुआएं देती जाती थी और आंसू की बड़ी बड़ी बूंदें गिराती जाती थी। हामिद इसका रहस्य क्या समझता !!



श्री सुदर्शन

श्री सुदर्शन जी सन् १८६६ में उत्पन्न हुए थे । आपका जन्म स्थान स्यालकोट है । आपको कहानी लिखने का शौक बचपन से ही रहा है ।



कालिज छोड़कर आपने लाहौर के 'हिन्दुस्तान नाम के उर्दू पत्र के सम्पादक विभाग में नौकरी कर ली । उससे अलग होकर आपने कितने ही दूसरे उर्दू पत्र पत्रिकाओं का सम्पादन किया । अद्य तक आपका साहित्य क्षेत्र उर्दू ही रहा ।

आपकी पहली हिन्दी कहानी

सन् १९२० में सरस्वती में निकली थी । इसके बाद आपकी कहानियाँ हिन्दी में पर्याप्त संख्या में निकलती रहीं और इनका अच्छा आदर भी हुआ है । कहानियों के अतिरिक्त आप हिन्दी में एक दर्जन के लगभग पुस्तकें भी लिख चुके हैं ।

आपकी कहानियाँ सरल स्वाभाविक और मनोरञ्जक हون के साथ साथ ही भावगर्भित भी होती हैं । आपकी भाषा आप से प्रधान रहती है। आप आजकल कलकत्ता में एक भारत सदन नाम के लिये कहानियाँ लिख रहे हैं । आपने 'रामायण', 'धूप-झोंड' कुछ चित्रपट तैयार किए हैं ।

१



प्रेम-तरु

(१)

डेढ़ सौ साल बीत चुके हैं, परन्तु देवी सुलक़्खी का नाम आज भी उसी तरह ज़िन्दा है। गुरदासपुर के ज़िले में कड़याला नाम का एक छोटा सा गांव है, जहां ज्यादा आवादी हिन्दू जाटों की है। वहां आप किसी से पूछिये, वह आपको देवी सुलक़्खी की समाधि का पता बता देगा। यहां प्रतिवर्ष मेला लगता है, स्त्रियां रंग-विरंगे वस्त्र पहन कर आती हैं, और इस पर घी के दीप जलाती हैं। जब बेर पकते हैं, तो सबसे पहले बेर देवी सुलक़्खी की समाधि पर चढ़ाए जाते हैं, इसके बाद लोग खाते हैं। क्या मजाल कि समाधि के बेर चढ़ाए बिना कोई बेर को मुंह भी लगा जाए। दीवाली की रात को लोग पहले यहां दीप जलाते हैं, इसके बाद अपने घरों में जलाते हैं। किसी में इतना साहस नहीं कि देवी सुलक़्खी की समाधि पर रोशनी किए बिना अपने घर में रोशनी कर ले। ब्याह के बाद दुलहिने पहले यहां आकर प्रणाम करती हैं, इसके

बाद अपने ससुराल में पाव धरती हैं। किसी में हिम्मत नहीं कि गाव की इस रीति को तोड़ सके। देवी का सगर गाव क मध्य में है। उसके ऊपर थडालुओं ने सगरपर की एक सुदृढ़ और सुन्दर छत खड़ी कर दी है। इस छत के ऊपर एक झण्डा लहराता है, जो आसपास के गावों तक भी नजर आता है। देवी मुलकसी ने कोई सम्राज्य नहीं बना, न कोई राज्य स्थापित किया, न कोई उसमें विशेष शक्ति थी, जो लोगों के दिलों को पकड़ लेती, न उसने लोके के लिये कोई उल्लेख किया। वह एक गरीब, सीधा सादर अनपढ़, परन्तु सतवती ब्राह्मण महिला थी, जो एक दूत और दृष्टी जाट के शोध का शिकार हो गई। उसने अपने पति से जा प्रण किया था, उस पर वह भ्रष्ट के समान झटल रही। इसमें सन्देह नहीं, वह साधारण ब्राह्मणों की भा गरीब थी परन्तु पतिव्रत धर्म की दौलत से भालामान थी। वह मर्यादा की पुजारिन थी। उसने जो कहा था, वह करके दिखा दिया। उसके पति ने एक वृत्त को अपने सन्तान कहा था, मुलकसी ने मरत दम तक पति के इस वचन का निरादा। यही बात है, जिसने उसे इतने दिनों बाद आज भी गाव में जीती जागती शक्ति बना रखा है। 16 दृ दशा दशताओं का पूजन करते हैं, मुसलमान पालकों प्रकारों को मानते हैं परन्तु देवी मुलकसी का शासन दोषों के हृदयों पर है।

(२)

देवी सुलकणी इसी गांव के एक निर्धन ब्राह्मण जयचन्द ही स्त्री थी। जयचन्द के घर में स्त्री के अतिरिक्त कोई भी न था-न मां, न बाप, न बहने, न भाई। वस, पति-पत्नी थे, कोई बाल बच्चा भी न था। कुछ दिन इलाज करते रहे, परन्तु जब सारा परिश्रम निष्फल हुआ, तो भाग्य-विधान पर सन्तुष्ट होकर बैठ रहे। उस युग में ब्राह्मण लोग प्रायः नौकरी इत्यादि न करते थे, न धन दौलत में उस समय ऐसी मोहनी थी, न लोग धन को दुर्लभ समझ कर उसकी प्राप्ति के लिए अर्घीर रक्षते थे। थोड़े ही में गुज़ारा हो जाता था। एक कमाता था दस खा लेते थे। आज वह ज़माना कहाँ? दस कमाने वाले हो, एक बेकार को नहीं खिला सकते। उस समय के ब्राह्मण सारा सारा दिन पूजा पाठ में लगे रहते थे। खाने पीने को जाट यजमानों के यहाँ से आ जाता था। दोनों को किसी प्रकार की चिन्ता नहीं। हाँ, कभी कभी निःसन्तान होने पर कुढ़ा करते थे। यदि एक भी बच्चा हो जाता, तो दोनों का मन बहल जाता। उनका जीवन मधुर, प्रकाशमय तथा विनोदपूर्ण हो जाता। उनको कोई शुभल मिल जाता। अब ऐसा मालूम होता था, जैसे उनका घर सूना-सूना है। जैसे उनका जीवन लम्बी, अंधेरी, समाप्त न होने वाली रात है जिसमें कोई तारा नहीं, चांद नहीं, केवल निराशा के काले बादल घिरे हुए हैं। उन बादलों में कभी कभी, थोड़ी देर के

लिय आशा की विजली भी चमक जाती है परन्तु उसमें उनके दिलों का अधकार बढ़ता था, घटता न था। एक तरह कई साल गुजर गए।

एक दिन जयचन्द ने अपने आगन के कोने में नवव्रत बच्चे के समान बेरी का एक पौदा देखा, जो स्वयं हाथ आया था। पौदा बहुत छोटा था और साधारण पौदा जरा भी भिन्न न था किन्तु जयचन्द को ऐसा प्रताप हुआ मानों यह पौदा न था, प्रकृति का अद्भुत चमत्कार था। उसके छोटे छोटे रंग रेशे और चिकनी चिकनी जरा जरा कोंपलें देख कर बेसुध से हो गए। शांति के पुत्रलक्ष अशांति छा गई। दौड़े दौड़े सुलक्ष्मी के पास गए, और बोले— आओ, कुछ दिखाऊँ। भगवान् ने हमारे घर में स्वयं लगाया है बड़ा सुन्दर है।”

सुलक्ष्मी ने जाकर देखा तो एक नन्हा सा पौदा था। बोली—“क्या है यह ? ऐसे प्रसन्न क्यों हो रहे हो ?”

जयचन्द— बेरी का पौदा है। अभी छोटा है वन दिनों में बड़ा हो जायगा। इसमें हरे हरे पत्ते आएंगे। माठ-मीठे फल लगेंगे। लम्बी लम्बी डालिया फैला कर बढ़ा होगा।”

* सुलक्ष्मी ने पुलकित होकर कहा—‘ सारे आगन में बाँट दो जाएगी। ’

जयचन्द—‘ हर साल बेर लगेंगे। स्वयं मीठे होंगे। ’

सुलक्खी—“मैं इसे सदा जल से सींचा करूंगी। थोड़े ही दिनों में बड़ा हो जाएगा। कब तक फलेगा ?”

जयचन्द—(पौदे को प्रेम-भरी दृष्टि से देख कर)—“चार वर्ष बाद। तुमने देखा, कैसा प्यारा लगता है। बड़ा होकर और भी प्यारा लगेगा। कैसा चिकना और सुन्दर है ! देख कर मन खिल उठता है।”

सुलक्खी—(सरलता से)—“गरमी के दिन हैं, कुम्हला जाएगा। मुझे तो अब भी घबराया हुआ मालूम होता है। ज़रा कौपलें तो देखो, जैसे प्यास के मारे व्याकुल हो रही हों। कहिये, ताज़ा जल भर लाऊं ? गरमी से बड़ों-बड़ों का बुरा हाल है। यह तो विलकुल नन्ही सी जान है ! (चुटकी बजाकर) अभी भर लाऊंगी, दो मिनट में।”

जयचन्द—“इस समय तुम कहा जाओगी, मैं जाता हूँ।”

मगर सुलक्खी ने कलसा उठा लिया, और चली गई। थोड़ी देर बाद दोनों पति पत्नी उस छोटे से पौदे को पानी से सींच रहे थे। ऐसे प्यार से, जैसे उनका जीता जागता बच्चा हो; ऐसी भक्ति से, जैसे उनका देवता हो, ऐसी श्रद्धा से, जैसे कोई अमोल वस्तु हो। पौदा सचमुच धूप से कुम्हलाया हुआ था। ठण्डा पानी पीकर उसने आंखें खोल दीं। सुलक्खी बोली—“देख लो ! अब इसमें ताज़गी आ गई या नहीं ? क्यों ?”

जयचन्द— 'मुझे तो ऐसा मालूम होता है जैसे यह मुस्करा रहा है ।

सुलफखी— 'और मुझे ऐसा मालूम होता है जैसे हमस बातें कर रहा है । कहता है—मैं तुम्हारा बेटा हूँ ।"

जयचन्द— 'भइ ! बात तो तुमने मेरे मुँह से छीन ली । मैं भी यही कहने जा रहा था । हाँ बेटा तो है हाँ । इसे खूब प्यार करोगी न ?"

सुलफखी— तुम्हारे कहने की क्या आवश्यकता है ! अपना बेटे का कौन प्यार नहीं करता ?

जयचन्द— मैं डरना हूँ कहीं मुझे न भूल जाओ । यदा आयु म बालक पाकर स्त्रियाँ पति को उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगती हैं मगर मुझ से तुम्हारी लापरवाही सहन न होगी । यह अभी से कहे देता हूँ ।'

सुलफखी— चलो हटो ! तुम्हें तो अभी से डाँह देने लगा ।"

जयचन्द दमते-दसते घर के भीतर चले गए, परंतु सुलफखी कई घंटे घूप में खड़ी बेरी की ओर देखाता रही और खुश होती रहा । आज भगवान् ने उसके घर में रौनक भेन दी थी । आज उसको ऐसा अनुभव हुआ, जैसे बड़ बालक नहीं रही—पुत्रवती हो गई है । अशोष बालक छाँद को दूध समझ कर खुश हो रहा था ।

(३)

अब जयचन्द और सुलकषी दोनों को एक काम मिल गया। कभी बेरी को पानी देते कि कुम्हला न जाए, कभी खुरपी लेकर उसके आसपास की ज़मीन खोदते कि उसे अपनी खुराक प्राप्त करने में दिक्कत न हो, कभी उसके इर्द-गिर्द बाड़ लगाते कि कोई जन्तु हानि न पहुंचाए, कभी दो चारपाइयां खड़ी करके उस पर चादर फैला देते कि गरमी में सूख न जाए। लोग यह देखते थे, और उनकी इस मूर्खता (?) पर हंसते थे। कोई कोई कह भी देता था कि इनकी अकल मारी गई है, साधारण पौदे को पुत्र समझ बैठे हैं।

मगर प्रेम के इन सरल हृदयभक्तों को इसकी ज़रा भी परवा न थी। उन्हें उस बेरी की कोंपलें बढ़ती देखकर वैसे ही प्रसन्नता होती थी जैसी माता पिता को बच्चे के हाथ पांव बढ़ते देखकर होती है। जयचन्द बाहर से आते, तो सबसे पहले बेरी की कुशल-क्षेम पूछते। सुलकषी रात को कई कई बार चौंक कर उठती, और बेरी को देखने जाती। शायद उसे भय था कि कोई ऐसी अनमोल वस्तु को उखाड़ कर न ले जाय। ऐसी चाह, ऐसी सावधानी से किसी गरीब विधवा ने अपने एकमात्र पुत्र का भी लालन पालन शायद ही किया हो।

धीरे-धीरे यह प्रेम-तरु बढ़ने लगा। अब वह ज़मीन से

रहुत ऊपर उठ आया था। उसका तना भी मोटा हो गया था। डालें भी बड़ी उर्धी हो गई थीं। रात के समय एसा सन्देह होता था जैसे वह बाहें फैलाकर किसी से गने मिलन को अर्घीर हो रहा है। सुलफ्सी उसे अपनी बेटा और जयचन्द उसे अपना बेटा कहते थे। उसे देखकर उन की आँसू चमकने लगती थीं। उनका हृदय-कमल धिप उटना था। वह वृद्ध साधारण वृद्ध न था, उनके रात दिन के परिश्रम का परिणाम था। इसके लिये उन्होंने अपना रातों की नींद कुवान की थी। इस पर उन्होंने अपने श्पार और आत्मा की सम्पूर्ण शक्तिया मच कर दी थीं।

इसी तरह प्यार मुहम्मद और लाड चाच के चार वर्ष गुजर गए और पेरी के फलेने के दिन निकट आगए। जयचन्द और सुलफ्सी दानों के मन की दशा अकथनाए थी। जब वीर आया, ना दोनों सारा सारा दिन आगन में बैठे उसकी रत्ना किया करते थे कि कहीं कोई पाम न फटक जाय। जयचन्द अब पहले का तरह पूजा पाठ के पारन्द न रह थे। सुलफ्सी को अब चरखे का खयाल न था। साधारण वृद्ध के प्रम ने उन्हें इस तरह बाध लिया था कि जरा हिलत भी न थ। हर समय इसी का धाने करत थ। उस धकत वद इस ससार से बाहर चल जात थ। सुलफ्सी कहती— तुम्हारे इयाल में यह पाल रग का वीर हागा मगर मुझ ता एसा मातूम

होता है कि मेरी बेटी ने सोने के गहने पहने हैं। किस शान से खड़ी है !

जयचन्द कहते—“यह मेरे बेटे की पहली कमाई है। इसे और कौन कहता है ? यह तो मोहरें हैं, वलिकु मुझे तो इसके सामने मोहरें भी तुच्छ मालूम होती हैं। उन्हें मनुष्य बनाता है। इसे स्वयं भगवान् ने अपने हाथों से संवारा है। इसके सामने मोहरें और अशरफियां किस गिनती में हैं ? थोड़े दिनों में यह बेर बन जाएंगे। उनमें जो सुन्दरता, जो यौवन, जो मिठास होगी, वह सोने के उन सिक्कों में कहां ?

सुलक्ष्मी कहती—“जिस दिन पहले बेर उतरेंगे, उस दिन मिठाई बांटूंगी।

जयचन्द कहते—“मैं रतजगा करूंगा। गांव के सारे लोगों को बुलाऊंगा। सारी रात रौनक रहेगी।”

सुलक्ष्मी कहती—“खूब खर्च करना पड़ेगा।”

जयचन्द कहते—“लोग बेटों के ब्याहों में अपना धन लुटाते हैं। मेरे लिए यही बेटे का ब्याह। सब कुछ खर्च हो जाए, तब भी परवा नहीं; परन्तु एक बार दिल के अरमान निकल जाएं। कोई अभिलाषा शेष न रह जाए।”

यह सुनकर सुलक्ष्मी किसी दूसरी दुनिया में पहुँच जाती थी। उसके हृदयरूपी समुद्र में खुशी की तरंगें उठने लगती थीं। जैसे चान्दनी रात में समुद्र में ज्वार भाटा आ जाए।

(४)

आखिर वह दिन भी आ गया, जिसकी पति पत्नी दोनों प्रतीक्षा कर रहे थे। पहले दिन बेरी के दो सौ बेर उतरे। यह बेर इतने मोटे ऐसे गोल गोल ऐसे लाल, इतने सुन्दर और चिकने थे कि देखकर जी गुश्न हो जाता था। दोपहर का समय था। मुलफ्ती ने पुराने जमाने की हिन्दू स्त्रियों की तरह नए कपड़े पहने। लाल रंग की फुलकारी ओढ़ा। नाक में नथ पहनी और जाकर जयचन्द के सामने खड़ा हो गई। जैसे उस दिन उसके यहाँ कोई ब्याह शादी थी। उसको इन वस्त्रों में देखकर जयचन्द मुग्ध से हो गए। थोड़ा देर तक दोनों के मुह से कोई बात न निकली। आँसू मूद कर चुपचाप इस अलौकिक आनन्द से आनन्दित होते रहे। तब जयचन्द ने बेर टोकरी में रखे और मुलफ्ती से कहा— जा ! जाकर यजमानों के यहाँ गिन कर बीस बास दे आ।'

मुलफ्ती ने साहसपूर्ण नेत्रों से पति को देखा, और प्यार भरी आवाज में कहा— 'इश्वर करे खूब मीठे हों। लाग ये अश्रितियार बाह बाह कहें। आकर बधाइया दें। कहें एसे बेर सारे गाव में नहीं हैं।'

जयचन्द ने दस घट अपन लिप रख लिप थे। उनका और ताकत हुए बोले— 'तू ज़्यादा ब्याह मरी जाती है। दूसरों के लिप भाटे न होंग, न सही, पर हमारे लिप इनसे

मीठी वस्तु संसार में और कोई नहीं है । यह मैं चखे बिना कह सकता हूँ । जा । देर हुई जाती है । तू वांट कर आ जाए, तो एक साथ खाएँ । ”

सुलकखी ने पति की ओर श्रद्धा से देखकर उत्तर दिया—
“ मैं एक आध घर में दे लूँ, तो तुम खा लेना । मेरी राह देखने की क्या आवश्यकता है ? ”

जयचन्द—“वाह ! आवश्यकता क्यों नहीं ? एक साथ खाएंगे । अकेले मे क्या मज़ा आएगा । ज़रा जल्दी लौट आना । नहीं लड़ाई होगी ?”

सुलकखी ने छोटा सा घूँघट निकाला, और बेरों की टोकरी उठाकर वाटने चली, जैसे कोई व्याह-शादी की मिठाई वांटने जा रही हो । थोड़ी देर में एक यजमान दौड़ता हुआ आया, और बोला—‘ पण्डित जी ! बघाई है । बेर खूब मीठे हैं । ’

जयचन्द का दिल धड़कने लगा । मुंह गुलाब हो गया । बोले—“अच्छा, आपने खाए हैं ?”

यजमान—“ खाए क्या है ! एक बेर चखा है । मगर वाह भई वाह ! गुड़ से भी मीठा है । आम से भी मीठा है । कोई और बेर है, या नहीं ?”

जयचन्द की बाँछे खिली जाती थीं । उन्होंने दो बेर उठा कर यजमान के हाथ में रख दिए । यजमान खाता जाता था और तारीफ़ करता जाता था । कहता था—

‘परिद्धत जी ! यह बेर क्या है, चीनी के खिलौने हैं । मेरी इतनी आयु हो गई, मगर ऐसे बेर मैंने आज तक नहीं खाए । परमात्मा जान इनमें क्या स्वाद है, मालूम होता है जैसे सुगन्ध भरी है ।’

जयचन्द—‘परमात्मा ने हमारी मेहनत सफल कर दी ।’

यजमान—‘सारे इलाक़े में ऐसे बेर मिल जाए, तो मूँहें मुड़ना टू । दूर नजदीक से लोग आया करेंगे । मालूम होता है, आपने अभी तक नहीं चखे ।’

जयचन्द—‘यजमानों को भेंट कर लू फिर खाऊंगा ।’

यजमान—‘हरान रह जाओगे । ऐसे बेर काजुल, कम्हार में मा न होंगे । हमारे घर में दस बीस बेरों से क्या घनता है ? दम्बे देवते खतम हो गए । और बेर कब तक उतरेंगे ? हम बीस आर लेंगे ।’

जयचन्द—‘आपका अपना वृक्ष है । दो चार दिन तक और उतरेंगे, ता भिन्नवा दूंगा । मुझे दूसरों को खिला कर जो प्रसन्नता प्राप्त होती है वह आप आकर नहीं होती । लीजिए दो और ल जाएँ । कैयाकी हैं । हम दानों तीन तीन खालेंगे । हमें यही बहुत है ।’

थोड़ी देर बाद एक और यजमान आया । उसने भी इतनी तारीफ की कि जयचन्द की आँखें चमकने लगीं । बोले—‘यह प्रेम का वृक्ष है, इसमें प्रेम के बेर लगे हैं । इस से मीठे सत्कार मर में न होंगे । मर ! इतनी मेहनत कौन करता

है ? आप दोनों ने एक मिसाल कायम कर दी है। दो वेर खाए है, दो और मिल जाएं, तो मज़ा आ जाए। फालतू है या नहीं ? ”

जयचन्द ने मुस्करा कर कहा—“छै वचे है। दो आप ले जाइए। दो दो हम खा लेंगे। ”

यजमान—“यह तो अन्याय होगा रहने दीजिए। फिर सही। और वेर कब तक उतरेगें ? ”

जयचन्द—“आप ले जाइए। हमे स्वाद देखना है। पेट थोड़ा भरना है। (वेर हाथ पर रखते हुए) रात रतजगा है। आइयेगा न ? कोई बेटे का व्याह करता है, कोई पोती पोते का मुएडन करता है। मेरी आयु मे यही एक दिन आया है। यही खुशी का पहला दिन है, यही अन्तिम दिन होगा। और क्या ?

यजमान—“ज़रूर आऊंगा, परिडत जी ! मगर वेर खूब भीठे है, अभी तक मुँह से सुगन्ध आ रही है। ”

यह कहकर यजमान चला गया। इतने मे दो और आ गए। परिडत जी के पास चार वेर बाकी थे। चद उनकी भेंट हो गए। उनके पास अब एक भी वेर न था। परिडत जी दिल में डरे कि सुलकखी से क्या कहूंगा ? कहीं खफा न हो जाए। तैश मे न आ जाए। परन्तु सुलकखी इस प्रकार की खी न थी। सारा वृत्तान्त सुनकर बोली—“आपने

बहुत अच्छा किया। हमारा क्या है ? फिर खा लेंगे। अपना बूट इ, जम चाहा, दो बेर तोड़ लिए। कहीं मागने घोड़ा जाना है।”

जयचन्द—‘गाव में धूम मच गई है। कहते हैं—ऐसे बेर दूर दूर तक नहीं हों।’

सुलफखी की आँखों में आसू आ गए। नय को सम्मालने हुए बोली—“सभी कहने हैं—और दो। बेर क्या हैं, खोप के पेडे हैं।

जयचन्द—‘कहत हैं इनमें सुगन्ध भी है।’

सुलफखी—“जो खाता है, चटखोर लेता है। कहने हैं—ऐसा भड़ा न ग्राम में है, न सगतेरे में।”

जयचन्द—‘यह सब तुम्हारे परिधम का फल है। रोत्र पानी दिया करती थी। तुम्हारे हाथों का पानी अमृत हो गया।’

सुलफखी—‘और जो तुम कपड़ों से ढाया करते फिरते थे, उसका कोर असर ही नहीं ? यह सब उसी का फल है।’

जयचन्द—“तुम देर में लौटी। नहीं तो एक एक खा लते। अब दो-चार दिन के बाद पढ़ेंगे।’

(५)

परन्तु जयचन्द के भाग्य में बेर पचाना लिखा था, बेर खाना न लिखा था। रतजंग के बाद उनको सहसा सुघार

हो गया। गांव में जैसा इलाज हो सकता था, हुआ। हकीम ने समझा, थकावट का बुखार है। साधारण औषधियों से उतर जाएगा, परन्तु वह थकावट का बुखार न था, मृत्यु का बुखार था। जिसकी दवा दुनियां के बड़े से बड़े हकीम के पास भी नहीं। चौथे दिन प्रातःकाल जयचन्द सुलकखी से घंटा भर धीरे-धीरे बातें करते रहे। बातें क्या करते रहे, रोते और रुलाते रहे। दुनियांदारी की बातें समझाते रहे। ये बातें उनके जीवन का सार थीं। सुलकखी ये बातें सुनती थी और रोती जाती थी। इस समय उसका दिल बस में न था। वह चाहती थी, जिस तरह भी हो, पति को बचा ले। यदि उसके बस में होता, तो वह अपनी जान देकर भी उन्हें बचा लेती। इसमें उसे ज़रा भी संकोच न था, परन्तु जो भाग्य में बदा हो, उसे कौन रोक सकता है। थोड़ी देर बाद इधर संसार का सूर्य उदय हो रहा था, उधर जयचन्द के जीवन और सुलकखी की दुनियां का सूर्य सदा के लिए अस्त हो गया।

अब सुलकखी संसार में विलकुल अकेली थी। अब उस का सिवाय एक छोटे भाई के और कोई न था। थोड़े दिन रोती रही, इसके बाद चुप हो गई। इसलिए नहीं कि मृत्यु का शोक भूल गई, बल्कि इसलिए कि उसकी आंखों में आंसू न रहे। रो रोकर आंसु भी समाप्त हो जाते हैं। मगर उसके दिल के घाव हमेशा हरे थे। उसे किसी तरह

फल न षडती थी। पति की मृत्यु के बाद किसी ने उसे हसते हुए न देखा। न अच्छा खाती थी न अच्छा पढ़ता थी। उसका क्यादा समय हुआ जी लोगों की सेवा में गुजरता था। गाव में कोई बीमार होता सुलफ्फी पहुच जाती फिर उसे सोना हराम था। सरहाने से न उठती थी। हर समय सेवा में लगी रहती थी, जैसे मा बच्चे की तीमारदारी कर रही हो। जब वह स्वस्थ हो जाता, तब घर लौटती। उसका इन सेवाओं ने गाव वालों के मन मोह लिये। कहते थे—यह स्त्री नहीं देवी है। अब उन्हें मालूम होता था कि यदि यह न हो तो गाव वालों पर विपत्ति टूट पड़े। उसे दुनिया की किसी वस्तु से प्रेम न था—किसी वस्तु की परया न थी, जैसे उसने सत्यास ले लिया हो, जैसे उसने दुनिया की हर एक वस्तु का परित्याग कर दिया हो।

पर तु एक वस्तु से उसे अब भी प्यार था यह उसकी घरी थी। यह अब भी उसका उसी तरह इयाल रखती थी। उसको उसी तरह पानी देती थी। उसी तरह देख माल करती थी। गरमी में उसके पत्तों को कुम्हलाया हुआ देख कर अब भी उसी तरह अघार हो जाती थी। रात को घोंक घोंक कर अब भी उसे देखती थी। बाहर जाती तो माई लक्ष्मन से कह जाती, पेरी का प्रयास रचना। जब बेर लगते तो दो तीन मदाने उसके पास से न उठती, कहीं देसा न हो जानवर आकर कुतर जाए। जब बेर उतरते,

जिसको बेर खाने की इच्छा होगी, वैसे देकर खरीद लेगा ।'

सुलक्ष्मी ने दूकानदार की ओर करुणापूर्ण दृष्टि से देखा और कहा—'मे घाह्यणी हू कुजड़िन नहीं जो अपनी बेरा क बेर बेचू । न भाई, यह न होगा । तू अपने रुपये लेजा, मुझे यह सौदा स्वीकार नहीं ।'

एक दूसरे दूकानदार ने कहा—'तू बेरी बेच दे, तो मैं ५००) दू । बोल दे इरादा ?'

सुलक्ष्मी— यह बेरी नहीं है, हमारी सत्तान है । अपनी सत्तान कौन बेचता है ?'

दूकानदार— यह तेरा भ्रम है । आदमी की सत्तान आदमी होता है, वृत्त नहीं होता ।'

सुलक्ष्मी— यह अपना अपना विचार है । कई आदमी ऐसे भी हैं जो ठाकुर को पत्थर कहते हैं ।'

दूकानदार—'मुझे तो वृत्त ही मालूम होता है ।'

सुलक्ष्मी— तेरी आँखों में यह जोल कहा, जो इसकी असली सूरत देख सके ? वृत्तों के बेर ऐसे मीठे कहा होते हैं ?

लक्ष्मण अथ तक चुप था, यह सुनकर बोला—'ऐसे मीठे बेर तुमने कहाँ और भी देखे हैं ? एक एक बेर एक आने को भी सरना है ।'

दूकानदार—'यह ठीक है ! किन्तु आपिर है तो बेरी ।

सुलकखी—“नही भैय्या ! यह बेरी नहीं है मेरे स्वामी की यादगार है । जो अपने स्वामी की यादगार को बेच दे उसे मर कर नर्क भी न मिलेगा ।”

दुकानदार—“अब इसका क्या उत्तर दूं ! ५००) थोड़े नहीं होते । तेरी सारी आयु सुख से कट जायगी ।”

सुलकखी—“भैय्या ! जो सुख मुझे इसको पानी देकर होता है, वह सुख रूप लेकर कभी न होगा ।”

दुकानदार—“तो पानी देने से तुझे कौन रोकता है ? जितना चाहे, पानी दे । अगर तेरा हाथ पकड़ जाऊं, तो जो चोर की सज़ा, वह मेरी सज़ा ।”

सुलकखी—“परन्तु जो बात अब है, वह फिर कहाँ ? अब अपना है, फिर पराया हो जायगा । अब बेर सारे गांव में बांटती हूँ, फिर तू हाथ भी न लगाने देगा । गांव के जिन लोगों के पास पैसे नहीं, वह क्या करेंगे ? बेरों को देखेंगे, और ठण्डी सांस भर कर रह जायेंगे । मुझे कोसेंगे, दिल में गालियां देंगे । अब सब को मुफ्त मिलते हैं, फिर किसी को भी न मिलेगा । गांव के छोटे छोटे वच्चे कहेंगे, कैसी लोभिन है, चार पैसों की खातिर बेरी बेच दी । न भाई ! यह कलङ्क का टीका न खरीदूंगी । मैं गरीब ही भली ।”

यह कह कर सुलकखी बेरी के पास चली गई, और उसकी डालियों पर हाथ फेरने लगी ।

और यह उस स्त्री का हाल था, जिसने किसी पाठशाला में विद्या नहीं पढ़ी थी, निम्ने कम धर्म पर कोई व्याख्यान न सुना था, जिसके पास खाने को कुछ न था जो अपने यजमानों के दान पर निर्वाह करती थी; परन्तु उसका हृदय कितना विशाल, कितना पवित्र था। उसने पड़ोसियों के कर्तव्य को कितना ठीक समझा था। ऐसी पवित्र हृदया सुशीला तथा सभ्य देविया सत्कार में कम जम लेती हैं।

(६)

कई वष बीत गए।

ज्येष्ठ का महीना था। सुलक्ष्मी घेरी के सोर बेर बाट चुकी थी। अब घेरी पर एक घेर भी बाकी न था। सुलक्ष्मी घेरी के पास खड़ी उसकी साली डालियों को देखती थी, और गुश होती थी कि इस साल का कर्तव्य भी पूरा हो गया। इतने में एक यजमान हाड़ीराम ने आकर सुलक्ष्मी को नमस्कार किया और बोला—'परिडतानी जी! हमारे घेर कहा है?'

सुलक्ष्मी का मुह कुम्हला गया। हैरान थी, क्या बहे, क्या न बहे। हाड़ीराम गाव में सब से उजड़ जाट था। ज़रा ज़रा सी बात पर जोश में आजाता था और मरने मारने को तैयार हो जाता था। उसकी साल आँखें देख कर सारा गाव सदम जाता था। यह अपने परिवार सहित दो महीने

से कहीं बाहर गया हुआ था। सुलक़्खी एक दो बार उसके मकान पर गई, और किवाड़ बन्द पाकर लौट आई। इसके बाद वह उसे भूल सी गई, और बेर समाप्त हो गए और अब—

हाड़ीराम उसके सामने खड़ा था। सुलक़्खी ने उसकी ओर सहमी हुई निगाहों से देखा और कहा—“यजमान ! बेर तो ख़तम हो गए।”

हाड़ीराम ने ज़रा गर्म हो कर कहा—“बाह ! ख़तम कैसे हो गए ? हमें तो मिले ही नहीं !”

सुलक़्खी—‘तुम जाने कहां चले गए थे ? दो बार तुम्हारे मकान पर लेकर गई, दोनों बार दरवाज़ा बन्द था। लौट आई। इसके बाद मुझे ख़याल नहीं रहा।’

हाड़ीराम--(तयारियां चढ़ा कर)--‘ ख़याल क्यों नहीं रहा। इतनी बच्चा भी तो नहीं हो।’

सुलक़्खी--(शान्ति से)--“अब यजमान ! तुमसे वह सब कौन करे ? भूल हो गई, अगले साल दुगने ले लेना।”

हाड़ीराम—खाना तो कभी नहीं भूलती हो, न फसल पर गल्ला मांगना भूलती हो, हमारे बेरो का समय आया, तो भूल गई !”

सुलक़्खी--“तुम बाहर चले गए थे। क्या करती ?”

हाड़ीराम—‘वृक्ष में लगे रहने देता । मैं आता, उतार लेता ।’

सुलफखी—‘और जो पक कर गिर जाते तो फिर ? अब किसी के मुँह में तो पक गए । उस अवस्था में किसी के मा काम न आते ।’

हाड़ीराम के नेत्रों से अग्नि की ज्वाला निकलने लगी । गरज कर बोला—‘मेरे बेटे जय मेरे काम न आए ता मुझे क्या चाहे रहें चाहे मिट्टी में मिल जाए । मेरे लिए एक सा बात है । तू दूसरों को देने वाली कौन थी ?’

अब सुलफखी को भी क्रोध आया । जरा तेज़ होकर बोली—‘बेटी मेरी है, तुम्हारी नहीं । जिसको चाहे, एक बेटे भी न दू जिसको चाहे, सब क-सब दे दू । बेटी तुम्हारे हाथों विकी हुई नहीं । तुम बोलने वाले कौन ?’

हाड़ीराम—‘अच्छा अब हम कौन हो गए ?’

सुलफखी—(उसी तरह गुस्से से)—‘मेहनत मैं करती हूँ । रात दिन मैं जागती हूँ, फिर सारे के सारे बेटे घाट देती हूँ । आप एक बेटे भी नहीं खाती । इस पर मैं इतना क्रोध ! आपसे आदमी को कुछ सोचना भी तो चाहिए । जाओ नहीं दिए न सही । जो कुछ करना हो कर लो ।’

हाड़ीराम दांत पीसता हुआ चला गया । इधर सुलफखी बेटी के पास जा कर उससे लिपट गई, और बोली—‘बेटी !

अगर तुम्हारा बाप जीता होता, तो इसकी क्या हिम्मत थी, जो इस तरह मेरी बेइज्जती कर जाता।”

इससे तीसरे दिन सुलक़्खी एक बीमार बच्चे की सेवा-सुश्रूषा कर रही थी कि एक लड़का दौड़ता हुआ आया, और हांपता हुआ बोला—‘तुम्हारी बेरी को हाड़ी ने काट दिया। कई लोगों ने मना भी किया, मगर वह कहता था, मुझे सुलक़्खी ने गाली दी है। सारा आंगन भर गया है।’

(७)

सुलक़्खी को ऐसा मालूम हुआ, जैसे किसी ने गोली मार दी है। वहां से चली, तो उसे रास्ता न दिखाई देता था। उसके पांव तले से ज़मीन निकलती जा रही थी। उस समय उसके शरीर में ज़रा भी शक्ति न थी। पांव इस तरह लड़खड़ा रहे थे, जैसे अभी गिर पड़ेगी। मार्ग के दोनों ओर लोग खड़े उसको देखते थे, और हाड़ी को गालियां देते थे। उस समय उन्हें सुलक़्खी का विचार था। हाड़ी का भय न था। वे सुलक़्खी के साथ सहानुभूति दिखाना चाहते थे, और उन्हें सिवाय हाड़ी को गालियां देने के और कोई ढंग न दिखाई देता था।

उधर सुलक़्खी का आंगन स्त्री पुहपो से भरा था और बीच में बेरी पड़ी थी। लोग कहते थे—“कितना ज़ालिम है, ज़रा सी बात पर बेरी काट दी। काटने पर ही सबर किया

होता, तो मी तैर थी । अगले वर्ष फिर उग आती, परन्तु इसने जड़ें भी उखाड़ दीं । आदमी काँदे को है चाडाल है ।

सहसा सुलफखी छारा सा घूँघट निजाले आई, और आगन में खड़ी हो गई । उसने तेरा की डालों को जमान पर पड़ा देखा, तो उसके दिल पर छुरिया चल गई । उसको ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे यह वृक्ष की डालियाँ नहीं, उसकी सत्तान के हाथ पाव हैं । उसने आगे उड़कर एक एक डाला को गले लगाया और रो रोकर विलाप किया । इस विलाप को सुन कर लोग रोने लगे । सुलफखी कहती थी— 'अरी ! तून् मुझे बुला क्यों न लिया ? बच्ची ! पता नहीं ! जर तुम्ह पर जालिम का कुरदासा चला होगा, तेरा दिव्य क्या कहता होगा । तड़पता होगा । सोचता होगा, मा काँदे को है डायन है । यह कसाइ मरे हाथ पाव काट रहा है, बड़ धाँवर धूम रही है । बच्ची ! मुझे क्या मालूम था तेरे सिर पर मौत खेल रही है । अभी मली चगी छोट कर गई थी, अभी अभी तू बाँहे फैला कर खड़ी थी । तुझे देख कर जी प्रसन्न होना था । इतनी जल्द तैयारी कर लो । आ लोग तेरे घेरों को तरसोगे । ऐसे भीड़े घेर और क्या है !

'तेरे बाप ने मरने समय कहा था जब तक जीती है इसकी रक्षा करना, और इसके घेर लोगों में बाटना । आज ये दोनों बातें अकस्मय हो गई । अब मेरा जारा

वृथा है। चल दोनों, एक साथ चले। वहाँ तीनों मिल कर रहेंगे।

यह कह कर उसने बेरी की डालियों की चिता सी चुनी। नीचे ऊपर सूखी लकड़ियाँ डाल कर उस पर घी डाला, और आग लगा दी। आग की ज्वालाएं हवा में उठने लगी। लोग पीछे हट गए, मगर सुलकखी जलती हुई बेरी के पास चुपचाप खड़ी उसकी ओर देख रही थी।

सहसा वह चिता में झूद पड़ी। लोगों में हलचल मच गई। वे "है-है" कहते हुए आगे बढ़े; परन्तु आग की ज्वालाओं ने उनका रास्ता रोक लिया। सुलकखी आग में बैठी जल रही थी; किन्तु उसके मुख पर ज़रा परेशानी—ज़रा घबराहट नहीं, बल्कि आरिमक प्रकाश था। जैसे उसके लिए आग आग नहीं, ठंडा जल था। इतने में आग में से आवाज़ आई—“मे मरते समय बसीअत करती हूँ कि मेरे कुल के लोग भविष्य में दान न ले।”

पुरुषों की आंखों से आंसू जारी थे। स्त्रियाँ फूट फूट कर रो रहीं थीं, परन्तु सुलकखी मृत्यु के गरजते हुए शौलों में चुपचाप बैठी थी। देखते-देखते मां बेटी दोनों जल कर भस्म हो गईं। कल दोनों जीती थीं, आज कोई भी नहीं थी। थोड़ी देर के बाद सुलकखी का भाई लछमन और गांव के जाट लाठिया लिए हाड़ीराम को ढूंढते फिरते थे।

वे कहते थे—“आज उसको जीता न छोड़ेंगे । पहले मारेंगे फिर घाघकर आग में जला देंगे ।’

परन्तु हावीराम बगलों और बनों में सुदृढ़ छिपावा फिरता था । इसके बाद उसको किसी ने नहीं देखा । कब मरा ? कहा मरा ? कैसे मरा ?—यह किसी को भी मालूम नहीं ।

राजा

(१)

‘सौ साल ।’

मैं चौंक पड़ा । मुझे अपने कानों पर विश्वास न आया । मैंने कापी मेज पर रख दी और अपनी कुरसी को थोड़ा सा आगे सरका कर पूछा—“क्या कहा तुमने ? सौ साल ? तुम्हारी उम्र सौ साल है ?”

तीनों कोटों को एक साथ बांधते हुए धोधी ने मेरी तरफ देखा, और उत्तर दिया—‘हां यावू साहब ! मेरी उम्र सौ साल है । पूरी सौ साल । न एक साल कम न एक साल ज्यादा । मेरी सूरत देखकर बहुत लोग धोखा खा जाते हैं ।’

‘मगर तुम इतने बड़े मालूम नहीं होते । मेरा विचार था, तुम सत्तर साल से ज्यादा न होंगे ।’

‘नहीं यावू साहब ! पूरे सौ साल खा चुका हूँ ।’

‘उहे भाग्यमान् हो । आन कल तो लोग पचाम साल मे पदले हा तैयारी कर लेते है ।

घात्री ने इसका कोई उत्तर न दिया ।

महमा मेरे हृदय में एक विचार उत्पन्न हुआ । मैंने पूछा— अच्छा माइ घात्री ! यह तो कहा तुमने सिफ्तों का राज्य ता देखा होगा ।’

‘हा देखा है ।’

‘उस राज्य में तुम सुनो ये या नहीं ? मेरा मतलब यह है उस राज्य में लोगों का क्या दशा था ।’

घात्री ने मरी आर मत्प्य नेरों से देखा जैसे किसी को मूर्ती हुई बात याद आ जाय और ठण्डी सास भर कर बोला— मैं उस जमान में बहुत छोटा था । मित्रों का राज्य क्या था, यह नहीं कह सकता । हा मित्रों का राजा क्या था यह कह सकता हू ।’

मेरे हृदय में गुदगुदी सी दाने लगी पूछा— तो तुमने महाराज का दशन किया है ?

‘हा सरकार ! दशन किया है । क्या कहना ! अजीब आदमी थे । उनकी यह शक्ल-मूरत याद आती है तो दिल में भाले से धुम जाते हैं । बहुत न्यानु थे । राजा थे मगर स्वभाव साधुओं का था । घमण्ड का नाम भी न था । मैं आपसे एक बात सुनाता हू । शायद आप को उस पर विश्वास न आए । आप कहेंगे यह कहानी है । मगर यह कहानी नहीं

सच्ची घटना है । इसमें झूठ जरा भी नहीं । इसे सुन कर आप खुश होंगे । आपको अचरज होगा । आप उछल पड़ेंगे । मैं मामूली हिन्दी जानता हूँ, पर मैंने बहुत किताबें नहीं पढ़ीं आप रात दिन पढ़ते रहते हैं । परन्तु मुझे विश्वास है, ऐसी घटना आपने भी कम पढ़ी होगी ।'

मैं दत्त चित्त होकर सुनने लगा । धोवी ने कहा—

(२)

मैं धोवी हूँ । मेरा बाप भी धोवी था । हम उन दिनों लाहौर में ही रहते थे । पर आज का लाहौर वह लाहौर नहीं । हम उस ज़माने में जहा कपड़े धोया करते थे, वह घाट अब ख़ुशक हो चुका है । रावी नदी दूर चली गई है, और उसके साथ ही वह दिन दूर चले गये हैं । भेद केवल यह है कि रावी थोड़ी दूर जा कर नज़र आ जाती है मगर वह ज़माना कहीं दिखाई नहीं देता । भगवान् जाने, वह कहाँ चला गया है ।

मेरी उम्र उन दिनों सात आठ साल की थी, जब चारों तरफ़ अकाल का शोर मचा । ऐसा अकाल इससे पहले किसी ने न देखा था । लगातार अढ़ाई साल वर्षा न हुई । किसान रोते थे । तालाब, नदी, नाले सब सूख गए । पानी सिवाय आखों के कहीं नज़र न आता था । मुझे घे दिन आज भी कल की तरह याद है, जब हम लंगोट लगाए मुँह काले कर बाज़ारों में डंडे बजाते फिरते थे कि शायद इसी तरह

वषा होने लगे । मगर वषा न हुई । लड़किया गुड़िया जलाती थीं, और उनके सिर पर खेदे होकर छाती कूटती थीं । पानी बरसाने का यह नुस्खा इस युग में बड़ा कारगर समझा जाता था लेकिन उस समय इससे भी कुछ न बना । मुसलमान मसजिदों में नमाज पढ़ते, हिन्दू मंदिरों में पूजा करते सिक्ख गुरुद्वारों में ग्रथ साहब का पाठ करते । मगर वषा न होती थी । भगवान् वृषा ही न करता था । दुनिया भूखों मरने लगी । बाजारों में रौनक न थी दूकानों पर ग्राहक न थे घरों में अनाज न था । ऐसा मालूम होता था, जैसे प्रलय का दिन निकट आ गया है । और सब से घुरी दशातों जाटों का थी । मेरा दादा कहता था उस समय उनके चेहरों पर सुरभी न थी, आँखों में चमक न थी, शरीर पर मास न था । सब की आँखें आकाश की ओर लगी रहती थीं । मगर बड़ा दुभाग्य की घटायें थीं, पानी की घटायें न थीं । अनाज रुपये का बीस सेर बिकने लगा ।

मैंने आश्चर्य से पूछा—“बीस सेर ?”

‘जी हाँ बीस सेर ! उस समय यह भी बहुत महंगा था । आज कल रुपये का चार सेर बिकने लगे, तो भी बाबू लोग अनुभव नहीं करते । मगर उस समय यह दशा न थी । मेरे घर में एक मैं था, एक मेरा घूड़ा बाबा, एक विधवा मा, दो बहनें । इन सब का खर्च चार पाच रुपये मासिक से अधिक न था ।”

मैंने अधीरता वश वात काट कर पूछा—‘फिर ?’

‘हां, तो फिर क्या हुआ। अनाज बहुत मंहगा हो गया, लोग रोने लगे। अन्त में यहां तक नौबत आ पहुंची कि हमारे घर में खाने को कुछ न रहा। ज़ेवर बरतन सब बेच कर खा गये। केवल तन के कपड़े रह गये। सोचने लगे अब क्या होगा। मेरा बाबा, भगवान् उसे स्वर्ग में जगह दे, बड़ा हंस मुख मनुष्य था। हर समय फूल की तरह खिला रहता था। प्रायः कक्षा करता था, जो संकट आए, हंस कर काटो। रोने से संकट कम नहीं होता, बढ़ता है। मैंने सुना है, मेरे बाप के मरने पर उसकी आंख से आंसू की बूंद न गिरी थी। परन्तु इस समय वह भी रोता था। कहता था, कैसी तवाही है, बाल-बच्चे सामने भूखों मरते हैं। और मैं कुछ कर नहीं सकता। यहां तक कि कई दिन हमने वृद्धों के पत्ते उवाल कर खाए।’

एक दिन का जिक्र है। बाबा आंगन में बैठा हुक्का पीता था, और आकाश की तरफ देखता था। मैंने कहा—‘बाबा ! अब नहीं रहा जाता। कहीं से रोटी का टुकड़ा ला दो। पत्ते नहीं खाए जाते।’

बाबा ने ठण्डी सांस भरी और कहा—‘अब प्रलय का दिन दूर नहीं।’

मैं—‘प्रलय क्या होती है।’

बाबा—‘जब सब लोग मर जाते हैं।’

मैं—‘तो क्या अब सब लोग मर जाएंगे ?’

बाबा—‘और क्या बेटा ! जब खाने को न मिलेगा, तब मरेंगे नहीं तो और क्या होगा ?’

मैं— बाबा ! मैं तो न मरूंगा । मुझे कहीं से रोटी भगवा दो । बहुत भूख लगी है ।

बाबा की आँखों में आँसू आ गये । भराई हुई आवाज़ से बोला—‘ऐसा जमाना कभी न देखा था । तुम वृत्तों के पत्तों से उड़ना गए हो । गाव के लोग तो मँडक और चूरे तक खा रहे हैं ।’

मैं— बाबा ! ऐसी चीजें वे कैसे पा लेते हैं ?

बाबा—‘पेट सब कुछ करा लेता है ।’

मैं— पर ये चीजें बड़ी घृणित हैं ?

बाबा—‘इस समय कौन परवा करता है भई !’

मैं—‘उनका जी कैसे मानता होगा ?’

बाबा—‘भगवान् किसी तरह यह दिन निकाल दे ।’

मैं— बाबा, मँडक क्यों नहीं बरसता ?

बाबा—‘हमारी नीयतें बदल गई हैं । वना ऐसा समय कभी सुना न था । आदमी आदमी के लहू का व्यासा हो रहा है । हर एक की दृष्टि में खाली है । मानों हर आँसू में खून है पानी नहीं है । तुम अज्ञान हो जाओ, कहीं से माँग लो । शायद कोई तरस खाकर तुम्हें राटी का एक टुकड़ा दे दे ।’

मैं—‘तो जाऊं ।’

बाबा—‘भगवान् अब मौत दे दे । गरीब थे, पर किसी के सामने हाथ तो न फैलाते थे ।’

(३)

मैं भूख से मर रहा था, रोटी मांगने को निकल पड़ा । मेरा विचार था, अकाल शायद गरीबों के यहाँ ही है । मगर बाहर निकला, तो सभी को गरीब पाया । उदास सब थे, खुश कोई भी न था । मैं बहुत देर तक इधर उधर मांगता फिरा । मगर किसी ने रोटी न दी । मैं निराश होकर घर को लौटा, पर पाँच मन मन के भारी हो रहे थे ।

सहसा एक जगह लोगों का समूह नज़र आया । मैं भी भागकर चला गया । देखा, सरकारी आदमी मुनादी कर रहा है, और लोग उसके गिर्द खड़े खुश हो रहे हैं । मैं चकित रह गया । मैं समझ न सकता था कि उनके खुश होने का कारण क्या है । मगर थोड़ी देर बाद रहस्य खुल गया । महाराज रणजीतसिंह ने शाही किले में अनाज की कोठड़ियाँ खुलवा दी थीं, और घोषणा करा दी थी कि जिस जिस गरीब को आवश्यकता हो, ले जाए । दाम न लिया जायगा । लोग महाराज की इस उदारता पर चकित रह गए । कहते थे, ये आदमी नही देवता हैं । मुसलमान कहते थे, कोई औलिया हैं । अब खुदा की खलकत भूखों न मरेगी । खुदा

नहीं सुनता, राजा तो सुनता है। खलकत के लिए राजा ही खुदा है। एक आदमी कह रहा था 'महाराज ने आदमी बाहर भेजे हैं कि जितना अनाज मिल सके, खरीद लाओ। मेरी प्रजा मेरी सन्तान है, मैं उसे भूखों न मरने दूंगा।'

दूसरा आदमी बोला—'मगर महाराज पहले क्या सो रहे थे ? यह विचार पहले क्यों न आया, अब क्यों आया है ?'

पहले आदमी ने उत्तर दिया—'महाराज सोते नहीं थे, जागते थे। हर समय पूछते रहते थे कि अब अनाज का क्या भाव है, अब लोगों का क्या हाल है ? कल तक यही पता था कि अनाज महंगा है। आज समाचार पढ़ा कि बाजार में अनाज का दाना भी नहीं मिलता। महाराज घबरा गए कि अब क्या होगा ? आखिर उन्होंने आदमी बाहर भेज दिए कि जितना अनाज मिल सके, खरीद लाओ। मैं लोगों में मुक्त बादगा। मेरे कोप में खपया रहे या न रहे मगर लोग बच जाए।'

एक हिन्दू बोला—'इन्होंने तो कह दिया कि महाराज क्या पहले सोते थे ? यह मालूम नहीं, महाराजों को एक की चिन्ता नहीं होती सयकी चिन्ता होती है।'

दूसरा—'माई ! मेरा यह अभिप्राय घोड़ा ही था।'

पहला—'एक और बात भी है। महाराज ने बाहर के शिलेदारों को भी यही आज्ञा भेजी है।'

दूसरा—“आफ़रीन है राजा हो तो ऐसा हो।”

तीसरा—“कोई और होता तो कहता, वर्षा नहीं हुई तो इसमें मेरा क्या दोष है। मेरे राज भवन में सब कुछ है।”

दूसरा—“इस समाचार से मरते हुए लोगों में जान पड़ जाएगी।”

तीसरा—“आज शहर की दशा देखना।”

पहला—“किसी की आंख में चमक नहीं थी।”

दूसरा—“ऐसा अंधेर कभी न हुआ था।”

तीसरा—“पर अब परमेश्वर ने सुन ली।”

मैं यहाँ से चला, तो ऐसा प्रसन्न था, जैसे कोई अनमोल चीज़ पड़ी मिल गई हो। कुछ देर संयम करके धीरे धीरे चला, फिर दौड़ने लगा। डरता था, कि यह शुभ-समाचार घर में मुझ से पहले न पहुँच जाए। मैं चाहता था, घर के लोग यह खबर मुझी से सुनें। गोली के सदृश भागा जाता था, मगर घर के पास पहुँच कर गति कम कर दी और धीरे धीरे घर में दाखिल हुआ। मेरा बाबा उसी तरह सिर झुकाये बैठा था। मेरा हृदय खुशी से घड़कने लगा— वह अभी तक न जानता था।

मुझे खाली हाथ देख कर बाबा ने ठण्डी सांस भरी और सिर झुका लिया। मैंने जाकर बाबा का हाथ पकड़ लिया, और उसे जोर से घसीटता हुआ बोला—“उठो, चादर लेकर चलो। महाराज ने मुनादी करा दी है कि अनाज मुक्त मिलेगा।”

मेरी मा मेरी बहन, मेरा बाबा सब चौक पड़े। उनको मेरे कहने पर विश्वास न हुआ। सिर हिलते थे, और कहते थे—“बच्चा है। किसी ने मजाक किया होगा। यह सब समझ बैठा हूँ। भला महाराज सारे शहर को अनाज मुफ्त कैसे दे देंगे? बहुत कठिन है।”

मगर मैंने कहा— मैंने मुनादी अपने कानों से सुनी है। यह गलत नहीं है। लोग सुनते थे, और खुश होते थे। तुम चादर लेकर मेरे साथ चलो।”

मेरा बाबा चादर लेकर मेरे साथ चला। उसको अमीर तक सदेह था कि यह मजाक है। लेकिन बाजार में आकर देखा तो हजारों लोग उधर ही जा रहे थे। अथ उसको मेरी बात पर विश्वास हुआ।

जिल में पहुँच तो वहाँ आदमी हा आदमी थे। पर किसी अमीर को अन्धर जाने की आशा न थी। पाटक पर सिपाही खड़े थे। वे जिनके कपड़े सफ़ेद देखते उसे रोक लेते। कहते यह अनाज परीशों की सहायता के लिए है, अमीरों के घर तो अथ भी भरे हुए हैं। यह परीशों का लहर था, अमीरों का भोजन न था। मेरा इतना उच्च हो गई है। मैंने अमीरों के लिए सब दर खुले देखे हैं। उनको वहाँ रोक टोक नहीं होती। पर वहाँ अमीर खड़े मुँह ताकते थे और उनका कोई परया न करता था। हम पराय थे हमें किसान ने नहीं रोक। हम अन्धर चले गए। वहाँ देखा कि सैकड़ों सरकारी

आदमी तराजू लिए बैठे हैं, और तोल तोल कर २०-२० सेर अनाज सब को देते जाते हैं। लेकिन हर घर में एक ही आदमी को देते थे, दूसरो को लौटा देते थे। लोग बहुत थे, आगे बढ़ना आसान न था। मैं छोटा था, मेरा बाबा बूढ़ा था, और हमारे साथ कोई जवान आदमी न था। हमने कई आदमियों से मिन्नत की कि हमें भी अनाज दिलवा दो, मगर उस आपा-धापी के समय किसी की कौन सुनता है। मेरे बाबा ने दो चार आगे बढ़ने का यत्न किया मगर दोनों चार धक्के खा कर बाहर आ गया। तब मैं और मेरा बाबा दोनों एक तरफ़े खड़े हो गए, और अपनी विवशता पर कुढ़ने लगे।

(४)

सन्ध्या के समय जब अन्धेरा हो गया, तब शेर बजने की आवाज़ सुनाई दी। इसके साथ ही अनाज देने वालों ने अनाज देना बन्द कर दिया। हुकम हुआ, बाकी लोग कल आ कर ले जायें। लेकिन अगर कोई दुबारा आ गया तो उसकी खैर नहीं महाराज खाल उतरवा लेंगे। लोग निराश हो गए, पर क्या करते? धीरे धीरे सारा आगन खाली हो गया। हम कैसे चलें जाते? कई दिन से भूखे मर रहे थे। दोनों रोने लगे। बाबा बोला—“बेटा! हम कैसे अभागे हैं, नदी के किनारे आ कर भी प्यासे लौट रहे हैं। जो भाग्यवान्

धे धे भोलिया भर कर ले गए । हम खडे देखते रहे । अब खाली हाथ लौट आयेंगे ।”

मैं—‘ बाबा ! उनसे कहो हमें दे दें । हम बहुत भूखे हैं ।’

बाबा— कौन सुनेगा । चलो घर चलें । अनाजन मिलेगा गालिया मिलेंगी ।’

म—‘ तुम कहो तो सही ।’

बाबा—‘ घेटा तुम बैसी बातें करते हो । ये लोग अन्न न देंगे, कल फिर आना पड़ेगा ।’

मैं—‘ तो आज क्या खाएंगे ?’

बाबा—‘ गरीबों के लिए हम के सिया और क्या है ! आज की रात और सब करो ।’

मैं— बाबा मैं तू न जाऊंगा । कहो, शायद दे दें ।’

बाबा—‘ तुम पागल हो ! क्या मैं भी तुम्हारे साथ पागल हो जाऊ ।’

इतने में एक सरदार आ कर हमारे पास खड़ा हो गया और बोला—“अन्न जाते क्यों नहीं ! कल आ जाना, आज अनाजन मिलेगा ।’

बाबा—(टण्डो सास भर कर) ‘जाते हैं सरकार !’

इस विचरता से उन सरदार साहय का दिल पसीज गया, ज़रा ठहर कर बोले—‘ तुम कौन हो !’

बाबा—‘ घोषी हूँ ।’

सरदार—‘ कल न आ सकोगे !’

बाबा—“आने को तो सिर के बल आणेंगे । पर गरीब आदमी हैं । मैं बुढ़ा हूँ, यह अभी बच्चा है । भीड़ में पता नहीं कल भी अवसर मिले, न मिले । आज मिल जाता तो रात पीस कर खा लेते ।”

सरदार—“तुम्हारे यहां कोई जवान आदमी नहीं है ?”

बाबा—“नहीं सरकार ! इस बालक का बाप था, वह भी मर गया ।”

सरदार—“तो कल आना कठिन है तुम्हारे लिए ?”

मैं—“सरकार आज ही दिला दे ।”

सरदार—(हंस कर) “आओ आज ही दिला दूं ।”

मैं—“बाबा कहता था, आज न देगे । क्यों बाबा ?”

सरदार साहब हंसने लगे, मगर मेरे बाबा ने मुझे संकेत किया कि चुप रहो । मैं चुप हो गया । सरदार साहब ने कहा—“आओ, मैं तुम्हें दिला दूं ।”

हम सरदार साहब के पीछे पीछे चले । उन्होंने अनाज के ढेर के पास पहुंच कर एक आदमी से कहा—“इस बुढ़े को बीस सेर गेहूं दे दो ।”

वह आदमी मेरे बाबा से बोला—चादर फैला दो, और गेहूं तोलने लगा ।

मेरा बाबा बोला—“सरकार ! अब कब फिर मिलेगा ?”

सरदार—“अगले सप्ताह ।”

बाबा—“हम कई दिन से भूखों मर रहे हैं ।”

सरदार—(इस क्र) “तो और क्या चाहते हो ?”

बाबा—“सरकार ! कहते हुए भी शर्म आती है, क्या कहूँ !”

सरदार—“नहीं कह दो । कोई बात नहीं ।”

बाबा—‘बीस सेर और दिखाने दो बड़ी टपा हो । आपकी जान को दुश्माप देता रहूंगा ।’

सरदार—“बड़े लाम्बी हो ।

बाबा—सरदार साहब ! पेट मागता है तब जीम खुलती है । नहीं हम पेस बेधैरत कभी न थे ।

सरदार—‘अगर इसी तरह तमाम लोग करें तो कैसे पूरा पड़े ?’

बाबा—‘सरकार ! राजा के महल में मोतियों की क्या कमी है । नहीं होता ता न दे । फिर द्वार पर आ पड़ेगें । महाराज ने इस धैर्य से लोगों के दिल मोह लिए हैं । शहर में बड़ा यश हो रहा है । (मुझसे) बेटा ! नमस्कार कर । उन्होंने हमें बचा लिया, नहीं तो रात रोते कटती ।’

मैं—(आगे बढ़ कर) नमस्कार !

सरदार—(मुस्करा कर) जीते रहो बेटा ! तुम्हारा क्या नाम है ?

मैं—‘अमो !’

सरदार— अथ अनाज मिल गया ना, आधो रोटिया पका कर खाओ ।’

मैं—“सरकार ! बीस सेर और दिला दें ।”

सरदार—“अरे ! तू बाबा से भी लोभी निकला ।”

मैं—“नहीं, सरकार ! बीस सेर और दिला दें ।”

सरदार—(अनाज तोलने वाले से) “बीस सेर और तोल दे । बूढ़ा बाबा बार बार कैसे आएगा ।”

बीस सेर और मिल गया ।

सरदार—“बाबा ! अब तो खुश हो गए ?”

बाबा—“बाहू गुरु आपका यश दूना करे ।”

सरदार—“महाराज की जान को दुआ दो । यह सब उनकी कृपा है, नहीं तो लोग भूखों मर जाते । और सच पूछो तो यह उनका धर्म था । न करते तो पाप के भागी बनते, राजा प्रजा का पिता होता है ।”

बाबा—“सच है सरकार ! महाराज ऋषि हैं ।”

सरदार—“ऋषि तो क्या होंगे । आदमी बनें तो यह भी बड़ी बात है ।”

अब तक सब तोलने वाले आदमी जा चुके थे । किले में हमी थे, और कोई न था । सरदार साहब बोले—“अब उठा लेकर ले जाओ ।”

गरीब दाघत मैं जाकर खाता बहुत है, यह नहीं सोचता पवेगा या नहीं । बाबा ने भी आज अनाज ले तो बहुत लिया अब उठाना मुश्किल था । क्या करे क्या न करें । उस समय सिक्खों का वही रोव था, जो आज अंगरेजों का है ।

बाबा सद्धम कर बोला "सरदार साहब गठरी भारी है। कोई सिर पर रख दे तो ले जाऊँ।"

सरदार साहब ने गठरी उठा कर मेरे बाबा के सिर पर रख दी।

बाबा दो ब्रह्म चल कर गिर गया।

सरदार साहब बोले— 'क्यों भाई ! इतना अनाज क्यों बधिया लिया जो उठाए नहीं उठता ? घास खेर लेते तो यह तकलीफ़ न होती। लोभ करते हो, अपनी देह की ओर नहीं देखते। जाओ, अपने किसी आदमी को घुला लामो। तुमसे न उठेगा।

मेरे बाबा न आह भरी, और कहा—'सरकार ! मेरी सहायता कौन करेगा ?

सरदार साहब ने कुछ देर सोचा फिर यह गठरी अपने सिर पर उठा कर चलन लगे। हम दह रह गए। हमारे शरीर के एक एक अंग से उनके लिए दुआ निकल रही थी। हम सोचते थे यह आदमी नहीं देवता है।

(५)

यहा पहुँच कर घोषी रुक गया। कहानी ने बहुत मनोरञ्जक रूप धारण कर लिया था। मैं इसका अगला भाग सुनन को अर्धर हो रहा था। मैंने जल्दी से पूछा— 'क्यों भाई घोषी ! फिर क्या हुआ ?'

धोबी ने वायु-मण्डल में इस भांति देखा, जैसे कोई कोई वस्तु को खोज रहा हो और फिर दीर्घ निःश्वास लेकर बोला—‘जब हम घर पहुंचे और सरदार साहब अनाज की गठरी हमारे आंगन में रखकर लौटे तो मैं और मेरा बाबा दोनों उनके साथ बाज़ार तक चले आए। मेरा बाबा चार चार कहता था, इसका फल आप को वाह-गुरु देंगे। मैं इसका बदला नहीं दे सकता। एकाएक उधर से कुछ फौजी सिक्ख निकल आए। वे सरदार साहब जहां खड़े थे, वहां रोशनी थी। फौजियो ने उनको पहचान लिया, और तलवारें निकाल कर सलाम किया। यह देखकर मेरा बाबा डर गया। सोचा, यह कौन है ? कोई बड़ा ओहदेदार होगा, वरना ये लोग इस प्रकार सलाम न करते।

जब सरदार साहब चले गए तब मेरा बाबा उन फौजियो के पास पहुंचा, और पूछा—‘यह कौन थे ?’

उनमें से एक ने मेरे बाबा की तरफ आश्चर्य से देखा, और जवाब दिया—‘तुम नहीं जानते ! यह हमारे महाराज थे ।’

बाबा चौंक पड़ा। उसकी आंखें खुली रह गईं। उसके मुंह से एक शब्द भी न निकला।

यह महाराज थे। वही महाराज जिनकी आंख के इशारे पर फौजो में हलचल मच जाती थी जो अपने युग के सबसे बड़े राजा थे। जिनके सामने अभ्युदय हाथ बाधता था।

आज ये पर घोषी के घर गेहू की गठरी छोड़ने आए हैं । यह सबे महाराज हैं । इनका राज्य दिलों पर है ।

उस रात हमें नींद न आई । सारा घर जागता, और महाराज के लिए दुआ मागता था । हमारे दिन बड़े जोर की बया हुए ।

यह कहानी सुनाकर घोषा चुप हो गया । मेरे रोए खड़े हो गए । आँखों में पानी भर आया । आज वह समय कदा चला गया ? आज केन राजा लोग क्यों नहीं नजर आते । उनका भ्रमण का शौर है विषय वासना का धाव है, परंतु अपनी प्रजा के हित अहित का ध्यान नहीं ।

मने घारी की तरफ देखा, उसकी भी आँखें सजल थीं, मैंने ठण्डी सास मरी ।

घोषा ने कपटे गिन कर कहा— बाबू साहब ! लिखिए चौदह पायजाम बीस कमीज़ें ।

मैंने काफी उठा ली और लिखने लगा ।

श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा “कौशिक”

श्री विश्वम्भरनाथ जी का जन्म १८४८ वि० को अवाला छावनी में हुआ। पीछे आप कानपुर जा रहे, अथ यहीं के निवासी माने जाते



हैं। आप अच्छी धन सम्पत्ति के स्वामी हैं। अत आजीविका की चिन्ता आपकी साहित्य सेवा में बाधक नहीं रही।

आप प्रसिद्ध कहानी लेखक हैं। आपकी कहानिया हिन्दी के पत्र पत्रिकाओं में आदरणीय स्थान प्राप्त कर रही हैं। आपके 'चित्रशाला' और 'मणिमाला'

दो गल्प-संग्रह और 'मा' तथा 'भित्तारिणी' दो उपन्यास अथ तक प्रकाशित हुए हैं। निम्न श्रेणियों के चरित्र चित्रण में आप सिद्धहस्त हैं। आपकी कहानियों की विशेषता संभाषण है—वे संभाषण से आरम्भ होकर संभाषण से ही समाप्त होती हैं। भाषा, भाव, चरित्र-चित्रण, मानसप्रवृत्तियों के विश्लेषण आदि की दृष्टि से आपकी कहानियों का स्थान साहित्य में बहुत उचा है।

राजपूत

शाम के पाच बज चुके थे । राजपूताने की भूमि दिनभर तपने के पश्चात् क्रमशः ठण्डी हो रही थी । इसी समय एक धूल धूसरित अश्वारोही एक गाव में प्रविष्ट हुआ । अश्वारोही अभी नवयुवक था । वयस लगभग २३-२४ वर्ष की होगी । गौरवण नेत्र बड़े बड़े तथा रफतवर्ण । मुख पर छोटी परतु घनी दाढ़ी, जो इस समय धूल भर जाने से कुछ भूरी दिखाई पड़ रही थी छोटी मूँछें, शरीर पुष्ट तथा बलवान् , सिर पर बहुरङ्ग सुस्त साफ़ा बधा था । शरीर पर राजस्थाना ढग का अमरसा और उसके नीचे पाजामा । पैरों में देसी जूता । धाँ और तलवार लटक रही थी । सामने कमर में एक बटार लगी हुई थी और पीठ पर एक छोटा-सा भाला कसा हुआ था ।

अश्वारोही गाव की गलियों में से होता हुआ एक मकान के द्वार पर पहुँचा । इस मकान के द्वार पर चौपाल और एक चबूतरा था । चबूतरे पर दो चारपाइया पड़ी हुई थीं ।

और उन पर चार आदमी बैठे थे। सामने एक बड़ा हुक्का रक्खा हुआ था। अश्वारोही को देखते ही वे चारों इस प्रकार सड़े हो गए मानो उसके आने की प्रतीक्षा ही कर रहे थे। एक प्रौढ़ व्यक्ति ने मुस्करा कर अश्वारोही से कहा—
“आ गए ?”

अश्वारोही ने पहले उस व्यक्ति को प्रणाम किया, तत्पश्चात् घोड़े से उतरा। एक व्यक्ति ने लपक कर घोड़े की लगाम थाम ली। वह व्यक्ति ज्योंही घोड़े से उतरा, त्योंही उस व्यक्ति ने, जिसे अश्वारोही ने प्रणाम किया था, उसे छाती से लगाया और पीठ पर हाथ फेरते हुए पूछा—“रास्ते में कोई कष्ट तो नहीं हुआ, बेटा ?”

नवयुवक ने शिष्टतापूर्वक उत्तर दिया—“जी नहीं, कष्ट काहे का !”

“अकेले ही चले आए, किसी को साथ न ले लिया !”

नवयुवक ने मुस्कराकर कहा—“साथ की क्या आवश्यकता थी !”

“रास्ते में कोई खटका-बटका हो, इसलिये किसी को साथ ले लेना चाहिए था !”

नवयुवक उसी प्रकार मुस्कराते हुए बोला—“खटका किस बात का ! और हो भी तो मैं क्या कुछ कमज़ोर हूँ ?”

प्रौढ़ वयस्क व्यक्ति ने स्नेह-भरी दृष्टि से नवयुवक को देखते हुए कहा—“लो तो ठीक है, परन्तु फिर भी एक से दो

अच्छे होते हैं। छैर, चलो, कपड़े उतारो, दिन भर के धके हो। घर में कब चले थे ?”

सबरे मुँह अधेरे चल दिया था !’

‘दोपहर को कहीं ठहरे होंगे !”

“हाँ, एक गाँव में ठहर कर पानी चानी पिया था !”

चारपाई के पास पहुँच कर नययुवक ने पीठ पर का भाला खाल कर एक किनारे रख दिया, तत्पश्चात् तलवार खोल कर चौपाल की खूटी पर टांग दी, और साफा उतार कर चारपाई पर रख दिया। इसके पश्चात् अंगरखा भी उतार दिया और चारपाई पर बैठ गया। प्रौढ़ वयस्क पहा झलने लगा। नययुवक बोला—“आप रहने दीजिए, मुझे दीजिए !

प्रौढ़ वयस्क न कदा—‘तो क्या हज है !”

नययुवक ने उसके हाथ से पहा छीन लिया और स्वयं अपने हाथ से झलने लगा।

प्रौढ़ वयस्क ने पुकारा—‘अचल ! ओ अचल !’ घर के भीतर से एक सग्रह-अठारह घण्टे का लड़का निकल कर बोला—‘क्या है काका जी ?’

प्रौढ़ वयस्क बोला—‘देख तेरे जीजा जी आए हैं। इनके लिए हाथ मुँह धोने को पानी-चानी तो ला ।’

लड़के ने युवक को प्रणाम किया और मुस्करा कर बोला—

‘जी !’

युवक बोला—“अभी चला आ रहा हूँ।”

“हमने तो कल बड़ी बाट देखी।”—लड़के ने कहा।

“हां, कल नहीं आ सका।”

“कुछ काम लग गया था?”

“हां काम ही लग गया था।”

लड़के का काका बोला—“अरे इन व्यर्थ की बातों में क्या धरा है। जा, पानी ला जाकर।”

“अभी लाया।” कह कर लड़का मकान के भीतर चला गया।

* * * *

उपरोक्त घटना के तीसरे दिन प्रातःकाल उसी मकान के द्वार पर कुछ आदमी तथा दो घोड़े खड़े हुए थे। घोड़े सफ़र के लिए तैयार थे। हमारा परिचित युवक भी यात्रा के लिए तैयार खड़ा था। इसी समय घर के भीतर से एक नवयुवती, जो धूँधट निकाले हुए थी, सिसकती हुई निकली। उनके पीछे तीन-चार स्त्रियां युवक के घोड़े के समीप पहुंची। एक व्यक्ति ने घोड़े की लगाम पकड़ ली। स्त्रियों ने सहारा देकर नवयुवती को घोड़े पर बिठा दिया। युवक ने काका जी को प्रणाम किया और तत्पश्चात् स्त्रियों को प्रणाम किया। एक स्त्री बोली—“देखो बेटा, खबरदारी से जाना!”

युवक हंस पड़ा और बोला—“आप बेफिक्र रहिए!”

काका जी ने भी सावधान रहने के लिए कहा। युवक

उछल कर उसी घोड़े पर नवयुवती के आगे बैठ गया। दूसरे घोड़े पर एक अन्य व्यक्ति बैठा। इस व्यक्ति से काका जी बोले—“इन्हें घर पहुँचा के तू कल लौट आना।”

वह व्यक्ति बोला—“हा, कल आ जाऊंगा, क्यादा ठहरने का काम क्या है ?”

इधर स्त्रियों ने मङ्गल मान गाना आरम्भ किया। काका जी ने आशीर्वाद दिया। युवक ने घोड़े को पट लगाई। घोड़ा तेजी के साथ चल दिया, पीछे पीछे दूसरा घोड़ा भी चला।

(२)

दोपहर तक ये दोनों बराबर चलते ही रहे। दोपहर होने के पश्चात् साथ का आदमी बोला—“भाई चन्द्रमानसिंह ! मेरी समझ में तो अब कहीं ठहर कर कुछ खाने-पीने का डील होना चाहिए। भूख बड़े जोर से लगी है।

चन्द्रमानसिंह ने कहा— यह सामने गाव है। इसी में ठहरेंगे।

‘ गाव के बाहर कोई कुआ उवा तो हो हीगा। ’

“हा है कुआ है छाया है। घण्टे आध घण्टे आराम भी कर सकते हो।

इसी प्रकार की बातें करने हुए दोनों व्यक्ति उक्त स्थान पर पहुँचे। वहाँ पहुँच कर दोनों व्यक्ति घोड़ों से उतरे— युवती को भी उतार कर एक छोर बिठाया। इसके पश्चात्,

हाथ मुंह धोकर तीनों व्यक्तियों ने साथ में जो भोजन-सामग्री थी, उसका भोग लगाया। भोजन करने के पश्चात् चन्द्रभानसिंह ने साथी से पूछा—‘क्यों भाई क्या इरादे हैं, चलोगे या थोड़ी देर आराम करोगे?’

‘जैसी तुम्हारी इच्छा हो!’

‘जैसा कहो!’

‘थोड़ी देर आराम कर लो। घोड़े पर बैठे-बैठे कमर रह गई। खैर, हमारा तो कुछ नहीं, लड़की को कष्ट हुआ होगा।’ इसीलिए तो कहता हूँ, थोड़ी देर यही विश्राम कर लें, फिर चलें।’

‘बहुत ठीक।’

वही पर एक दूरी विछा दी गई और युवती को लिटा दिया गया। चन्द्रभानसिंह और उसका साथी बैठकर बातें करने लगे।

इसी समय कुएं पर एक व्यक्ति पानी भरने आया। उसने लोगों को देखकर पूछा—‘कहा के रहने वाले हो?’

चन्द्रभानसिंह ने एक गांव का नाम बताया। वह व्यक्ति बोला—‘आज ठिकाने के सरदार शिकार खेलने आए हुए हैं, अभी अभी यहां से गए हैं।’

चन्द्रभानसिंह लापरवाही से बोला—‘आए होंगे।’

वह व्यक्ति कहने लगा—‘जिस दिन आ जाते हैं हम लोगों को तो त्रास हो जाता है।’

‘क्यों ? क्या अच्छे आदमी नहीं हैं ?’

‘कौन सा सरदार अच्छा है ? जब तक राजा अच्छे नहीं हैं, तब सरदार कदा से अच्छे होंगे। जिस गांव में जायगे, नजर-बेगार लेंगे वह बेटियों को लारेंगे, नुकसान कर जायगे। बस यही इन लोगों के काम है। भगवान् बचावे इनसे।’

‘तुम लोग कुछ नहीं बोलते ?’

‘बोलें तो मारे पीटे जाय। राजा के पास क्रियाद ले जाय तो वह भी नहीं सुनते। क्या करें सब सहना पड़ता है।’

इस गांव में राजपूत रहते हैं।—चंद्रमानसिंह ने पूछा।

‘सभी रहते हैं, राजपूत भी रहते हैं और लोग भी रहते हैं पर करें क्या ?’

‘राजपूत के रून में अय गर्मी नहीं रही।—चंद्रमानसिंह बोला।

गर्मी भी हो तो कर क्या सकते हैं, अपने प्राण भले गया दें।’

अपने प्राण गवाने पर जो कमर बाध सकता है वह दूसरों के प्राण भी ले सकता है। सारी बात तो यही है कि अय राजपूत मौत से डरने लगे। इसी से वह सब देखना पड़ता है।’

अन्तिम वाक्य कहते हुए चंद्रमान ने अपने साथी की ओर देखा। साथी सिर दिखाते हुए बोला—‘ठीक बात है।’

उस व्यक्ति ने कुएं में वर्तन डालते हुए कहा—“ऐसा कौन है, जो मरने से नहीं डरता ?”

‘मरने से वैसे तो सभी डरते हैं, परन्तु असली बात यह है कि जब मौके पर न डरे, जब जान माल या श्रावरू पर आ बने तब मरने से न डरे—यही सारी बात है, क्यों भाई उजागरसिंह !

चन्द्रभान का साथी उजागरसिंह बोला—‘यही बात है, भैया ! मौके पर आदमी को जान का मोह नहीं करना चाहिए।

वह व्यक्ति रस्सी खींचता हुआ बोला—‘हमने तो कोई ऐसा देखा नहीं।’

‘देखो कहा से, मैं तो पहले ही कह चुका कि राजपूतों का खून ठण्डा हो चुका है। यही कारण है कि सड़े से सड़े सरदार आकर सब कार्य कर जाते हैं। पहले किसी राजा महाराजा की हिम्मत तो पड़ती ही न थी, सरदार बेचारे तो किसी गिनती में थे ही नहीं।’

वह व्यक्ति जल का पात्र कुएं से निकालते हुए बोला—‘पहले की बातें जाने दो, पहले सरदार भी इतने अन्यायी नहीं होते थे !’

‘इसीलिए नहीं होते थे कि उन्हें भय रहता था कि अत्याचार करेंगे तो खतम कर दिए जावेंगे। ‘बिन भय होत न प्रीति !’

यह कहकर चन्द्रमानसिंह हस पड़ा। उभागरसिंह भी हसते हुए बोला— यही बात है !

यह व्यक्ति जल का पात्र लेकर चलते हुए बोला—‘ज़रा होशियारी से जाना, वे लोग इधर ही कहीं होंगे !

होंगे तो हुआ करें, हमारा क्या बना लेंगे !’

इस बात का उत्तर उस व्यक्ति ने कुछ नहीं दिया और जल लेकर चला गया !

इधर ये लोग थोड़ी देर तक इसी सम्बन्ध की बातचीत करते रहे तत्पश्चात् पूववत् घोड़ों पर सवार होकर चले।

(१)

तीन घंटे तक ये लोग बराबर चलते रहे। तीन घंटे के पश्चात् युवती ने लघुशङ्का से निवृत्त होने की इच्छा प्रकट की। अतएव एक वृक्ष के नीचे घोड़े रोके गए। चन्द्रमानसिंह ने युवती को घोड़े से उतारा और एक तरफ बतला कर कहा—‘इधर झाड़ियों की आड़ में चली जाओ !’

युवती उधर चली गई। ये दोनों उसके लौटने की प्रतीक्षा करने लगे।

युवती लौट ही रही थी कि सड़क की दक्षिण दिशा से दस बारह अश्वारोही आते हुए दिखाई पड़े। उभागरसिंह ने चन्द्रमानसिंह से कहा— यह देखो कौन आ रहे हैं। जान पड़ता है यही सरदार है !’

चन्द्रभानसिंह—ने उस ओर देख कर कहा—“हां, मालूम तो वही होते हैं।” यह कह कर वह युवती से बोला—“आओ जल्दी, देर होती है।”

युवती लपक कर चली। उसी समय उसके घाघरे में कांटे उलझ गए। वह खड़ी होकर कांटे छुड़ाने लगी। कांटे छुड़ा कर घोड़े के समीप आई। चन्द्रभान ने उसे घोड़े पर सवार कराया और स्वयं भी उछल कर बैठ गया। इसके पश्चात् वह दो कदम चला ही था कि अश्वारोहियों ने आकर घेर लिया। दोनों घोड़े रुक गए। एक व्यक्ति ने, जो अङ्गरेजी ढर्र के शिकारी पोशाक पहने था, चन्द्रभान से पूछा—“तुम लोग कौन हो?”

चन्द्रभानसिंह ने अपना और अपने साथी का परिचय दिया। उसने पुनः प्रश्न किया—“कहां से आते हो?”

चन्द्रभानसिंह ने बताया।

“यह औरत कौन है?”

‘यह मेरी जोरू है, ससुराल से विदा कराए ला रहा हूँ।’

‘हमें कैसे विश्वास हो?’

चन्द्रभानसिंह का मुख तमतमा गया। उसने कहा—
विश्वास हो या न हो, इससे हमें क्या मतलब?’

वह व्यक्ति बोला—

“अच्छा ! यह बात है?”

यह कह कर उसने अपना घोड़ा चन्द्रभान के घोड़े से

मिला कर युवती से पूछा—“क्या यह तेरा पति है ?”

युवती ने कोई उत्तर न दिया । उस व्यक्ति ने पुन प्रश्न किया । युवती पुन मौन रही । इस बार उस व्यक्ति ने हाथ बढ़ा कर युवती का घूँघट उलट दिया । घूँघट का उलटना था कि पेसा प्रतीत हुआ मानो मेघ में से चन्द्रमा निकल आया । यह व्यक्ति अवाक् होकर रह गया । युवती ने झटपट घूँघट सुधार कर कहा—‘ हा मेरे पति हैं ।’

इधर उस व्यक्ति की यह बेहूदा हरकत देख कर चन्द्रमानसिंह ने तुरन्त तलवार पर हाथ डाला । परन्तु उसी समय एक दूसरे व्यक्ति ने भाले की नोक चन्द्रमानसिंह के साने पर रख दी और फटक कर कहा— यस ! खरदार !”

चन्द्रमानसिंह ने तलवार हाथ से छोड़ कर कहा— ‘आधिर आप लोग हैं फौज जो मुसाफिरों को इस प्रकार तहक करते हैं ?’

एक व्यक्ति बोला—‘यह ठिकाने के सर्दार भीमान् त्रिभुवनसिंह हैं ।’

चन्द्रमानसिंह बोला—‘सर्दारों को अपनी प्रजा पर पेसा अत्याचार नहीं करना चाहिये ।’

त्रिभुवनसिंह ने कहा— अच्युता ! पूछु ताछु करना भी अत्याचार हो गया !

चन्द्रमानसिंह बोला—‘आपने एक भले घर की स्त्री का घूँघट इस प्रकार उलट दिया यह अत्याचार नहीं तो

क्या है? यह काम सर्दारों का नहीं, बटमारों का है।”

सर्दारों ने कहा—“अपनी प्रजा की बटमारों से रक्षा कराने के लिए ही हम इतनी जांच करते हैं।”

“परन्तु जांच करने के पहले आपको भले आदमियों और बटमारों की पहचान कर लेना चाहिए।”

एक दूसरा व्यक्ति बोला—“क्या किसी के माथे पर लिखा रहता है? चला वहां से बड़ा भला आदमी बन कर तुम्हारे जैसे आदमी ही बटमारी करते हैं।”

चन्द्रभानसिंह ने निर्भिकता से उत्तर दिया—“परन्तु इस समय तो मैं नहीं, आप बटमारी कर रहे हैं।”

“अच्छा, बस चुप रहो, नहीं तो ठीक कर दिए जाओगे।”

“बड़े वीर हो, क्या कहना है। अकेले होकर ऐसी बातें करते तो वीरता समझी जाती। फौज फाटे साथ तो सभी वीर हो जाते हैं।”

सर्दार, जो बारम्बार युवती की ओर देख कर कुछ सोच रहा था, यह कथोपकथन सुन कर बोला—“खैर, इस तूर में से कोई फायदा नहीं। इन दोनों आदमियों को हिरासत में ले चलो। वहां पहुंच कर इनकी जांच की जायगी। यदि यह भले आदमी प्रमाणित हुए तो छोड़ दिए जायेंगे—अन्यथा सज़ा दी जायगी।”

चन्द्रभानसिंह बोला—“परन्तु हिरासत में लेने का कारण क्या है, अन्नदाता? मैंने कौन सा अपराध किया है?”

“कारण यही कि हमें तुम पर सन्देह होता है। —
सदार ने कहा।

‘किस बात का सन्देह होता है?’

‘इस बात का सन्देह होता है कि तुम कोई डाकू या
छुटेरे हो।’

“तो यह सन्देह बहुत सरलता से दूर हो सकता है।
मेरा गांव यहा से सात आठ कोस की दूरी पर है। वहां
चल कर जाच कर नीजिए।”

‘हमें इतनी फुर्सत नहीं। अपनी गद्दी में पहुच कर
जाच करेंगे। इन्हें हिरासत में लो—जल्दी करो!’

सदार का यह वाक्य सुनने ही दो आदमियों ने चन्द्रमान
सिंह तथा उजागर के हथियार खुलवा कर अपने अधिकार
में किए। तत्पश्चात् एक ने चन्द्रमानसिंह के घोड़े की लगाम
धामी तथा दूसरे ने उजागरसिंह के घोड़े की, तत्पश्चात्
दोनों को बीच में लेकर सब लोग एक ओर चल दिए।

(४)

चन्द्रमानसिंह तथा उजागरसिंह को गद्दी के कारागार में
पड़े हुए एक सप्ताह रोक गया। चन्द्रमान तथा उजागरसिंह
एक ही कोठरी में बन्द थे। प्रातःकाल का समय था।
चन्द्रमानसिंह रात भर जागने के पश्चात् तीन यज्ञे के लगभग
एक घण्टे भर को सोया था और पुन चार यज्ञे के पश्चात्

जाग पड़ा। उसकी दशा एक पागल के समान हो रही थी। सिर के बाल बिखरे हुए—आंखें उबली हुई तथा रक्त के समान लाल हो रही थीं। उसने उजागरसिंह से कहा— 'आज सात दिन होने आए, अभी तक हम लोगों की पेशी नहीं हुई।

उजागरसिंह दुःखपूर्ण स्वर में बोला—'भइया, भगवान् ही इस मुसीबत से छुड़ावें तो छुड़ावें, अन्यथा और कोई उपाय नहीं। यह अङ्गरेजी इलाका नहीं है, जो जल्दी सुनवाई हो—यहां तो लोग बरसों जेल में पड़े सड़ा करते हैं।'

'पता नहीं, हमारे घर वालों की क्या दशा होगी?'

'और तुम्हारी ससुराल में भी द्वाहाकार मचा होगा। दूसरे दिन लौट जाने की बात थी, आज सात दिन हो गए।

'वे लोग तो कुछ न कुछ जतन कर ही रहे होंगे।'

'पता लगेगा तब तो करेंगे। जब पता ही न चलेगा कि कहां गए, कौन ले गया, तो जतन क्या करेंगे? और पता भी लग जाय तब भी बड़ा कठिन है। बड़ा अन्धेर है, भाई! भगवान् ही मालिक हैं। उन्हीं का ध्यान करो। लड़की का कुछ भी पता नहीं, कहां रक्खा, क्या किया। भगवान् उस की आवरू बचावे।'

चन्द्रभानसिंह उत्तेजित होकर बोला—'यदि उसकी जान या आवरू पर सर्दार ने हाथ डाला तब तो मैं उसे क्षमा नहीं करूंगा। यदि मैं जीवित रहा तो एक न एक दिन इसका

बदला उसे अथर्व्य चखाऊगा । यदि ऐसा न करू तो राजपूत का पुत्र नहीं ।'

'पहले यहा से तो छुटकारा मिले । बिना यहा से छूटे क्या कर सकोगे !'

कभी न कभी मिलेगा ही ।'

इसी समय कोठरी का द्वार खुलने का शब्द सुनाई पड़ा । चन्द्रमानसिंह धीरे से उजागर से बोला—'आज इस पदरेदार से कुछ पूछना चाहिये ।'

इसी समय द्वार खुला और पदरेदार भीतर आया । उसके कुछ बोलने के पहले ही चन्द्रमान ने उससे पूछा—
क्यों भइया, हमारा कुछ न्याय वाय भी होगा या योंही पड़े सटा करेंगे ?

'अब यह हम क्या जानें । यह तो राजदरवारके आदमी बता सकते हैं, हम तो पदरेदार हैं ।

'यहा अचेर है ! मले आदमियों को बन्द कर रक्खा है । कोई झूसूर नहीं—कोई अपराध नहीं । हमारी औरत का भी पता नहीं ।

'क्या तुम्हारे साथ कोई औरत भी थी ?'—पदरेदार ने पूछा ।

हा, मेरी औरत थी ।

उमर क्या है ?

'यही कोई सप्तद अठारद परस की ।'

पहरेदार ने मुस्करा कर कहा—“तब ठीक है”

‘क्या ठीक है?’—चन्द्रभानसिंह ने पूछा।

“ठीक यही है कि, तुम्हारा कसूर-वसूर कुछ नहीं। सर्दार ने इस वहाने से तुम्हारी औरत हथियाली। अब उसके मिलने की आशा छोड़ दो—अपनी जान की खैर मनाओ। वह तो इस समय महलों का सुख भोग रही होगी। तुम्हारी तो उसे याद भी न आती होगी।”

चन्द्रभानसिंह एकदम उठकर खड़ा हो गया और दांत पीस कर बोला—“नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। वह राजपूत की लड़की है, ऐसा कभी न करेगी।”

पहरेदार अट्टहास करके बोला—“अरे भाई, बस रहने दो। हमारी यही देखते-देखते उमर बीत गई। बड़े-बड़े राजपूतों और क्षत्रियों की लड़कियां हज़म हो गईं। इन बातों में क्या धरा है? जो औरत महल के अन्दर पहुँच गई, वह फिर बाहर नहीं आई।”

“परन्तु इस बार..”—इतना कर चन्द्रभानसिंह रुक गया। जो बात वह कहना चाहता था, उसे कहना उचित न समझा।

पहरेदार बोला—“अच्छा, तो चलो पाखाना पेशाब कर लो।”

दोनों अपने पैरों की बेड़ियां संभाल कर उठे और पहरेदार के साथ शौचादि के लिये चले गए।

शौचादि से निवृत्त होने के पश्चात् जब पदरेदार उन्हें पुन कोठरी में बन्द करने आया तो चन्द्रभानुसिंह उससे बोला—“तुम्हारी बात हमें ठीक मालूम होती है। अब हमारा औरत मिलना बड़ा कठिन है। वह स्वयं ही हमारे पास आना पसन्द नहीं करेगी। महलों का सुख छोड़ कर कोपरे में जाना कौन पसन्द करेगा ? परन्तु हमें व्यथ भे बन्द कर रक्खा है। यदि सर्दार साहब चाहें तो हमें फारसती (फारगिसती) लिख दें। वह भी बेसटके हो जायें, हमारे प्राण भी बचें।’

पदरेदार बोला—‘हा इस तरह तो तुम छूट सकते हो। इस प्रकार तो कई आदमी मेरे सामने छोड़ दिए गए हैं।’

“तो भइया, इतनी दया करो कि हमारा यह स देया सदार तक पहुंचा दो।”

“अच्छी बात है। हम कोशिश करेंगे।

‘अगर इतना कर दो तो ज़मभर पहसान मानेंगे।’

“नहीं, पहसान की कोर बात नहीं। ऐसी बातों की इत्तला पहुंचाने का तो हमें सरदार की ओर से हुक्म भी है।’

तो बस ठीक है। अरे और क्या छूटकर घर जाय। औरत सुसरी एक नहीं पगस मिल जायगी। जान है तो जदान है।’

ठीक कहते हो—समझदारी की यही बात है।—इतना कह कर पदरेदार कोठरी बन्द करके चला गया।

(५)

उपरोक्त घटना के चौथे दिन एक कर्मचारी एक कागज़ और कलम-दावात लेकर कोठरी में प्रविष्ट हुआ। चन्द्रभानसिंह उसे देखते ही उठ खड़ा हुआ और उसने बड़ी शिष्टता-पूर्वक उन्हें सलाम किया। कर्मचारी कागज़ सामने करके बोला—'इस पर दस्तखत कर दो।'

चन्द्रभानसिंह ने पूछा—'यह क्या है ?'

'वही फ़ारखती है। तुमने कहलाया था कि तुम फ़ारखती लिखने को तैयार हो ?'

'हां, बतलाया तो था।'—चन्द्रभानसिंह ने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया।

'तो बस वही है।'

'फ़ारखती तो मैं लिखने को तैयार हूं। परन्तु सरदार साहब के सामने लिखूंगा। मुझे क्या पता कि सरदार साहब लिखवा रहे हैं या कौन लिखवा रहा है। उनके बढाने से कोई दूसरा लिखवा ले तब ?'

'ऐसा साहब कौन कर सकता है।'—कर्मचारी ने दातों तले जीभ दाब कर कहा।

'परन्तु मुझे कैसे सन्तोष हो ?'

'मैं जो कह रहा हूं।'

'मैं क्या जानूं आप कौन हैं।'

‘खैर, जैसी तुम्हारी इच्छा । मैं यह बात कह दूंगा आगे सरकार की मर्जी ।’

‘हां, आप कह दीजिएगा । उसके सामने मैं तुरन्त दस्तखत कर दूंगा ।’

‘अच्छी बात है—बढ़कर कर्मचारी चला गया । दो घण्टे पश्चात् वह पुन लौटा और बोला—‘चलो, सरकार ने बुलाया है ।’

ये बेढिया तो कटबाइए ।

बेढिया तो दस्तखत हो जाने के बाद कटेंगी ।’

‘चलने में कष्ट होता है, और कुछ नहीं—अच्छा चलिए।’ दोनों व्यक्ति कर्मचारी सहित चार पहरेदारों के बीच में चले ।

एक सजे हुए कमरे में सरदार साहब विराजमान थे । दोनों व्यक्ति उनके सामने पेश किए गए ।

सरदार साहब मुस्करा कर बोले—‘अरे मर्द, दस्तखत मैं हा करवा रहा हूँ—तुम्हें न देव क्यों हुआ । बिना मेरी आज्ञा के किसी मजाल है जो ऐसा कर सके ।’

‘यह तो टीक है अगदाता, परंतु मुझ सन्तोष न होता।’ चन्द्रमान ने यही शानतापूर्वक कहा ।

‘खैर, अब तो सन्तोष है ?’

‘हां, अब क्यों न होगा । कारण मैं दस्तखत कर दूँ ।’

मिचारी ने कागज़ और कलम चन्द्रभान की ओर
 ढ़ाया ।

चन्द्रभान हाथ में कलम लेकर बोला—‘परन्तु दस्तखत
 रने के पहले एक बात मैं आपसे कहना चाहता हूँ ।’

‘वह क्या ?’—सरदार ने पूछा ।

‘वह मेरी स्त्री के सम्बन्ध में है । जय मैं उसे आपको
 सौंप रहा हूँ तो यह मेरा धर्म है कि उसके गुण अवगुण भी
 आपको बता दूँ ।’

सरदार साहब घबड़ा कर बोले—‘हां-हां, यह तो अवश्य
 होना चाहिए, बोलो !’

‘तो कृपा करके एकान्त करा दीजिए, सबके सामने
 कहना ठीक नहीं ।’

सरदार साहब ने इशारा किया । सब लोग वहां से हट
 गए । उजागरसिंह भी बाहर कर दिया गया । चलते समय
 चन्द्रभानसिंह ने उजागर को और उजागर ने चन्द्रभान को
 विपादपूर्ण दृष्टि से देखा । नेत्रों से ही दोनों ने परस्पर अपने
 मन के भाव प्रकट कर दिए । सबके बाहर चले जाने पर
 सरदार ने कहा—‘अब बताओ !’

चन्द्रभान बोला—‘आपने जिस मतलब के लिए मुझ
 निरपराध को बन्दी बनाया, वह मतलब तो आपका पूरा
 हो गया होगा ।’

सरदार साहब सिर झुकाकर बोले—‘नहीं, तुम्हारी

औरत वही जिद्दी निकली । उसने अथ तक मेरी बात नहीं मानी । हा, अर जो उसे यह पता लगेगा कि तुमने उसे मुझे सौंप दिया तब उसे मेरी बात माननी ही पड़ेगी ।

चंद्रमानसिंह के मुख पर एक क्षण के क्षिप्त प्रसन्नता दौड़ गई, परन्तु वह गम्भीर होकर बोला—यदि आपको यह सन्देश हो कि वह आपकी बात नहीं मानेगी तो मैं उसे समझा दूँ ।

‘आशा तो है कि मान लेगी परन्तु यदि समझा भी दो तो अच्छा है ।’

तो उसे बुलाइए ।’

सर्दार साहब ने दीवार में लगा हुआ एक बटन दबाया । थोड़ी देर में एक और का द्वार खुला और एक बादी आकर बोली—‘क्या आशा है ?’

देखो वह औरत जो आई है उसे यहाँ ले आओ । कहना कि तुम्हारा पति तुमसे मिलना चाहता है ।’

बादी के चले जाने के पश्चात् सर्दार साहब बोले—‘तब तक दस्तखत तो कर दो ।’

उसी के सामने दस्तखत करूँगा, जिसमें उसे विश्वास हो जाय ।

‘अच्छी बात है’—कहकर सर्दार साहब चुप हो गए । कुछ ही क्षण में चंद्रमान की पत्नी आ पहुची । उसके साथ ही बादी को सर्दार साहब ने हटा दिया । चंद्रमान की पत्नी

वस्त्राभूषणों से सुसज्जित थी, परन्तु उसका चेहरा उदास तथा पीतवर्ण हो रहा था। चन्द्रभानसिंह उसे कुछ क्षणों तक सटपट नेत्रों से देखता रहा। तत्पश्चात् संभल कर बोला—
“देखो आज से तुम मेरी पत्नी नहीं, सर्दार साहब की पत्नी हो। मैंने तुम्हें त्याग दिया।”

पत्नी के मुख पर मुर्दनी छा गई। वह लड़खड़ाती हुई जिह्वा से बोली—“नहीं नहीं, ऐसा न कहो।”

“अवश्य कहूंगा। तुम अब मेरे काम की नहीं रही।”

“आह, आज मेरी सारी आशाएं टूट गईं।”—यह कह कर उसने उंगली से अंगूठी उतार कर शीघ्रतापूर्वक मुंह में रख ली। सर्दार साहब यह देख कर—“है! यह क्या किया?” कहते हुए उसकी ओर लपके। इसी समय चन्द्रभानसिंह, सिंह के समान उन पर टूटा। उसके पैरों में वेड़िया थीं, परन्तु हाथ खुले हुए थे। उसने लपक कर सर्दार साहब का गला दोनों हाथों से दाब लिया और बोला—“नरक के कीड़े, तूने मेरे साथ जैसी दगा की, वैसा ही फल तुझको देता हूँ। मैंने इस वहाने से तुझ तक पहुंचने की राह निकाली।”—यह कहते हुए चन्द्रभान ने जोर से सर्दार साहब का गला दबाया। सर्दार साहब ने गला छुड़ाने का बड़ा प्रयत्न किया, बहुत कुछ हाथ-पैर मारे, परन्तु चन्द्रभान का पक्षा मौत का पक्षा था। अन्त में सर्दार साहब की आँखें

निफल आई और वह निर्जीव हो गए । चन्द्रमानसिंह ने उठाया गला छोड़ा । गला छोड़ते ही लाश धूम से मृगि पर गिरी ।

इसके उपरांत चन्द्रमान ने अपनी पत्नी पर दृष्टि डाला। वह भयभीत हाकर विस्फोरित नेत्रों से वह काण्ड देख रही थी । चन्द्रमान ने लपक कर उसका हाथ पकड़ लिया और पीठ पर हाथ फेर कर कहा—‘शामाश राजपूतनी ! तूने अपनी और मरी राज रख ली ।’ उसकी पत्नी कुछ कहना ही चाहती था कि उसे एक जोर का वमन हुआ । वमन में रक्त ही रक्त था ।

इसा समय एक ओर से चीख सुनाई दी और किसी स्था के कण्ठ ने चिल्ला कर कहा—‘अरे दौड़ो, सरकार को मार डाला ।’ इसके उपरांत तुरंत ही आठ दस आदमी भीतर घुस आए। उन्होंने पहले सदाँर साहय की जाच की, चन्द्रमान इस कर घोसा—‘देखते क्या हो—सरकार साहय तो यमराज क घर पहुँच गए ।’

उसके मुख से यह शब्द निकले ही थे कि उस पर चारों ओर से तलवारें पड़ने लगीं और एक क्षण में वीर चन्द्रमान टुकड़-टुकड़े होकर सदाँर की लाश पर गिर पड़ा ।



मोह

“अरे कोई मज़दूर है ?”

इतना सुनते ही चार-पांच मज़दूर एकदम दौड़ पड़े । एक मज़दूर जो यद्यपि शरीर से हट्टा-कट्टा थी, परन्तु प्रौढ़ा वस्था पार करके बुढ़ापे की राज्य-सीमा में पहुंच चुका था और अन्य युवा तथा प्रौढ़ मज़दूरों की भांति उसके शरीर में कुर्ती तथा तेज़ी नहीं थी, आगे बढ़ा, परन्तु अन्य मज़दूरों को पुकारनेवाले के पास पहले पहुंच जाते देखकर ठिठक गया और म्लानमुख होकर पुनः अपने स्थान पर जा बैठा और बड़बड़ाने लगा—इन लोगों के मारे अब मजूरी लगना कठिन है । इसी समय अन्य मज़दूर भी लौट आये और अपनी-अपनी झुल्ली आधी रखकर उन्हीं पर बैठ गये । वृद्ध मज़दूर बोला—“भैया ! अब यहां गुज़र होना कठिन है ।”

“क्यों ? गुज़र होनी कठिन क्यों है ?” एक दूसरे मज़दूर ने पूछा ।

“दस वरस हुए होंगे । इससे अधिक नहीं हुए । तब इतना अन्धेर था ।” अंगनू काका ने कहा ।

“पर कोई कायदा कानून तो तब नहीं था ।”

“कायदा कानून नहीं था, पर इतना अन्धेर भी नहीं था कि एक को बुलाओ और दस दौड़ जायें ।”

“तुम तो कभी दौड़ते न होगे । अभी साल भर पहले तक की तो मुझे याद है—सबसे पहले पहुँच जाते थे । अब आज पौरुष घट गया तब कायदा-कानून सूझा ।”

अंगनू काका झल्ला कर बोले—“अच्छा भैया खूब दौड़ो । कौन मना करता है ? हमारा भी राम मालिक है ।”

“यही ठीक है राम पर ही भरोसा रखे वेड़ा पार होगा—“कायदा-कानून तो यहां न कभी रहा है और न रहेगा ।”

एक अन्य मज़दूर बोला—“अच्छा भैया, अब की अंगनू काका की पारी है । यह बुद्धे आदमी है । इनका खयाल रखना चाहिये ।”

इसी समय फिर ‘मज़दूर’ ‘मज़दूर’ की आवाज़ आई । सबने कहा—“जाओ अंगनू काका ।”

अंगनू काका बोले—“अरे अब तुम्हीं लोग जाओ ।”

एक ने अंगनू काका का हाथ पकड़कर उठा दिया और कहा—“अब जाते हो या नखरे बघारते हो ।”

“अभी तो ज्ञापदा कानून बना रहे थे और अब उठते नहीं।”

अगनू काका के स्वाभिमान को कुछ ठेस लगी। इस प्रकार दया की भीख लेना उठे अचड़ा न लगा। वह कुछ झेपकर यह कहते हुए चले—‘ऐसे तुम लोग कहा तक करोगे। एक दिन का काम थोड़े ही है।’

पुकारने वाले के पास पहुँचे तब वह उनका परिचित निकला। उसने अगनू को देखते ही कहा—“ओहो! तुम कहा थे! मैं तो तुम्हारी तलाश में था—जब तुम दिखाई न पड़े तब मैंने आवाज लगाई।”

अगनू काका ने सतोप की निश्वास छोड़ी सोचा ये तो हमारे पुराने गाइक हैं। उन लोगों का (मज़दूरों का) कोई पहचान नहीं हुआ। यह सोचने के पश्चात् गाइक से बोले— यहाँ ता थड़ा था। आप ता हमारे पुराने मालिक हैं। आप हमें भूल जाय ता बड़ गजब की बात हो।

अचड़ा यह समान रफता।

अगनू ने कुछ फल आर शाकभाजी अपनी झटकी में रफधी और झटकी सिर पर उठाकर उस व्यक्ति के साथ चला। कुछ देर तक मौन चलते रह।

अकस्मात् अगनू बोला— अब पौधे नहीं चलता यादू!

दा मुहंटे भी तो हो आय। उस व्यक्ति ने कहा।

‘यह तो बहो आप जैसे दो चार हमारे पुराने मालिक

है, इससे खाने भर को मिल जाता है । नहीं तो बड़ी मुश्किल पड़ जाय ।”

“भगवान् सबका मालिक है ।”

“अब मजूर भी बहुत बढ़ गए हैं, बाबू । पहले इतने नहीं । अब जिसे देखो वही झुल्ला लिए फिरता है । पर दि वीस सेर बोझा लाद दो तो कांख मारें । हमने डेढ़ डेढ़ इन बोझा इसी सिर पर उठाया । एक दफ़ा एक बाबू गये । उन्होंने सूरन (ज़मीकन्द) लिया । कुल ६ गांठें थीं, पर बाबू तुमसे क्या कहें, एक-एक गांठ दस-दस आठ आठ र की थी । जितने मजूर थे, सब हारी बोल गये कि हमसे अकेले नहीं जायगा । तब हमने हिम्मत बांधी । अकेले ले गए । उनके घर पर जब पहुँचा तब बोले—ऊपर जीना चढ़ जाना होगा । यह सुनकर पहले तो हमारा जी कचुवाया, किन्तु फिर हिम्मत बांधी और बजरङ्गवली का नाम लेकर अटखट जीना चढ़ गए । बाबू की तबियत खुश हो गई—पार पैसे इनाम दिए । हमारी जवानी देहात में कटी है । जो दूध खाते पीते थे, कसरत करते थे और खूब डटकर मती किसानों का काम करते थे, जब घर वाली मर गई बड़के का पीछा हो गया, उधर जमींदार ने वेदखल कर देया, तब देहात से जी उचट गया, यहां चले आये और मजूरी करने लगे । मजूरी सहल काम नहीं है बाबू ! गहरवाले मजूरी करना क्या जाने ? झुल्ला ले ली और

मजूर बन गये । मजूरी करना दिल्लगी नहीं है । इसी प्रकार अगनू काका बहबहाते हुए चले जा रहे थे । वह व्यक्ति भी हूँ हूँ करता जाता था । घर पहुँचकर उस व्यक्ति ने अगनू को चार पैसे दिये । अगनू काका दात निकाल कर बोले— एक पैसा और दे देते बाबू ।

‘भाई तीन पैसे की जगह तुम्हें चार दे दिये ।’

‘बाबू, आप हमारे पुराने मालिक हैं, इससे कहते हैं । आप लोगों की बदीलत चुढ़ापा बट जायगा—नहीं तो आजकल यही मुश्किल पड़ती है ।’

बाबू ने एक पैसा और दे दिया । अगनू काका प्रसन्न हो गये और आशीर्वाद देते हुए चल दिए ।

(२)

अइड़े पर लौट कर आये तब मजदूरों ने पूछा—‘क्या मिला अगनू काका ?’

‘अगनू काका बोले— वे हमारे पुराने ग्राहक थे । तुम लोगों का कुछ पहचान नहीं रहा ।’

इस पर एक हसकर वाला—‘सुना भैया मजूरी दिलवाए तब ये बातें होने लगीं ।’

‘दिलवाए ! इन्हीं दिलवाए ! यह दिलवाने वाले ! वे मुझे छोड़ और किसी को ले ही न जाने ।’

‘सुम न होते तो अपने तिर लाद ले जाते-क्यों न !’

श्रंगनू काका कुछ अप्रसन्न होकर बोले—'ज़रा वात समझ लिया करो, फिर बोला करो। मेरा मतलब यह है कि यदि वे मुझे देख पाते तो फिर दूसरा मजूर न लेते। तुम लोग जैसे दौड़कर पहुंच जाते हो और छीनाभपटी करते हो वह वात उनके साथ न चलती। समझे ?'

'अब चाहे जो समझाओ श्रंगनू काका। अब तो मजूरी मिल गई न ?'

'अच्छा भैया तुम्हारी दया से मिली—वस ! पर अब हम दया की भीख नहीं लेने, यह याद रखना। अब यदि किसी ने हमसे कहा कि जाओ तो फ़ौजदारी हो जायगी। इस पर सब कहकहा लगाकर हंसने लगे। एक ने पूछा—
'अच्छा यह बताओ, मिला क्या ?'

'मिला है खज़ाना। तुमने मजूरी दिलवाई थी न, इससे खज़ाना मिल गया।' श्रंगनू काका ने आँखें तरेर कहा।

दूसरा बोला—'इस वक़्त इनसे न बोलो। नही सचमुच फ़ौजदारी हो जायगी। ये लड़ने पर तुले हुए हैं।

'नही ऐसी वात नहीं है। क्यों श्रंगनू काका ? श्रंगनू काका लड़ेंगे तो फिर गुज़र कैसे होगी !'

श्रंगनू काका खून का सा घूंट पीकर बोले—'हां भैया, ठीक कहते हो। तुमसे लड़ेंगे तो हमारी गुज़र कैसे चलेगी। तुम्हीं लोगो की बदौलत हमारी गुज़र होती है।

वह व्यक्ति बोला— लेश्रो और सुनो ! हमने कहा अपने लिए और ये समझे अपने को !

इसी समय एक मजदूर मजदूरी से लौटकर आया । उसने उपयुक्त वाक्य सुनकर बैठते हुए कहा— अगन् काका सठिया गए हैं ।’

इतना सुनते ही अगन् काका ने उसको झुली फेंककर मारी । वह झुली का धार बचा कर हसता हुआ वहां से उठकर भागा ।

अगन् काका बोले—‘अब भागते क्यों हो ? बैठे रहो । हम सठिया गए हैं ! ये ससरज अभी बारह ही बरस के हैं—चोर कहीं का । बच गया ! यदि कहीं झुली पक जाती तो छठी का दूध याद आ जाता ।

सब मजदूर हस रहे थे । अगन् काका ने उठकर झुली उठाई और अपने स्थान पर जा बैठे । इसी समय ‘मजदूर ‘मजदूर की आवाज आई । जो मजदूर उठकर भागा था वह आवाज सुनकर तुरन्त पहुंच गया, अन्य सब बैठे ही रह गए ।

एक बोला—‘लेश्रा ! अगन् काका ने झुली मारी, इस में भी उसका पायदा हो गया ।

‘अभी एक मजदूरी से लौटकर बैठा भी नहीं था कि दूसरी मिल गई । दूसरे ने कहा ।

अगन् काका अकड़ कर बोले— देखा ये बड़े धूर्तों के

लटके हैं। तुम लौंडे इन बातों को क्या जानो ? हमारी नाराज़गी में भी तुम लोगों का फ़ायदा है।”

“हां अंगनू काका, इस वक़्त तो यही बात हुई।” पहले वाले ने कहा।

“यदि ऐसी बात है काका तो हमारे ऊपर भी दया हो जाय-ज़रा झल्ली खींच कर मारो।” दूसरे ने कहा।

“वह तो वक़्त की बात होती है बेटा। ऐसे कुछ नहीं होता।”

(३)

अंगनू काका चार पैसे रोज़ पर एक कोठरी लिये हुए थे। दिनभर में सात आठ आने पैदा करते थे, उसी में गुज़र करते थे।

गर्मी के दिन थे। अंगनू काका भोजन करके कोठरी के बाहर पत्थर पर एक टाट बिछाये पड़े थे। कभी पिछले जीवन की याद करके ठंडी सांसे भरते थे और कभी भविष्य का ख़याल करके सोचते थे कि हाथ पांव चलना बन्द हो जायंगे तब कैसे गुज़र होगी। उस समय की याद करके अंगनू काका को रोमाञ्च हो आता था। मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना करते कि हे भगवान्, हाथ-पाव थकने से पहले ही हमें उठा लेना। इसी प्रकार की बातें सोचते-सोचते अंगनू काका को नींद आने लगी। अकस्मात् एक पिल्ला

‘तुम्हारी कोठरी ताका करेगा ।’

‘कोठरी में कौन खज़ाना गड़ा है जो ताकेगा ?’

वह व्यक्ति हंसता हुआ चला गया ।

अंगनू काका शौच इत्यादि से निवृत्त होने लगे । लौटकर आये तब उन्हें देखते ही पिल्ला डुम हिलाकर उनकी ओर गौड़ा और पैरों से लिपट गया ।

अंगनू काका ने उसे हटाकर कोठरी खोली और रात की रक्खी हुई रोटी खाने बैठे । पिल्ला भी सामने बैठकर मुंह ताकने लगा । अंगनू ने उसके सामने एक टुकड़ा फेंका । पिल्ले ने टुकड़ा सूंघा-सूंघकर उसे खाने का प्रयत्न किया परन्तु फिर छोड़ दिया और आँठों पर जीभ फेरते हुए अंगनू का मुंह ताकने लगा ।

अंगनू काका बोले-‘वाह बेटा ! तब तो तुम्हारा निर्वाह होना कठिन है । यहां तो यही सूखे टुकड़े हैं । दूध मलाई पाना हो तो कही और जाओ ।’

अंगनू काका की बात के उत्तर में पिल्ला केवल पूंछ हिलाता रहा और उनकी ओर ललचाई हुई दृष्टि से देखता रहा ।

अंगनू खा-पीकर उठे और इच्छा हुई कि कोठरी में ताला लगाकर मजूरी पर जाय । अंगनू के उठते ही पिल्ला पुनः उसके पैरों में लिपट गया । अंगनू उसकी ओर कुछ क्षणों तक ताकता रहा । अकस्मात् उसके नेत्रों में दया की सृष्टता

अंगनू ने कहा—‘जब खाने को नहीं मिलेगा तब अपने आप चला जायगा । इसके लिए चार पैसे रोज़ कोई कहीं से लायेगा ?’

अंगनू खाने बैठा । सामने पिल्ला भी बैठ गया । अंगनू ने एक टुकड़ा फेंका । पिल्ले ने सूँघकर छोड़ दिया । अंगनू बोला—“हां, अब काहे को खाओगे-सबेरे का दूध मुंह लग गया है न ! सो इस वक़्त मैं दूध लाने वाला नहीं । तुम चाहे जितना लपर-लपर करो ।” अंगनू खा-पीकर उठा तब कुत्ता दुम हिलाता हुआ पैरों में लिपट गया । अंगनू ने उसकी ओर देखकर सोचा—बैठे बिठाय यह अच्छी व्याधि पीछे लगी । अंगनू कुछ क्षणों तक उसकी ओर ताकता रहा, कभी उस पर क्रोध आता था, कभी दया आती थी । अन्त को अंगनू का जी न माना, दौड़कर गया और दूध ले आया प्रातःकाल जब अंगनू सोकर उठा तब उसने पिल्ले को अपने पास बैठा पाया । उसने सोचा—अब यह कहीं न जायगा, हमारे ही मत्थे रहा । चलो अच्छा है, एक से दो जने तो हुए ।

इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए । अब अंगनू को कुत्ते से स्नेह हो गया । वह अपना दुख-सुख कुत्ते से कहने लगता । कोठरी में बैठा उसको बाते सुनाया करता । जिस रोज़ जो मिलता वह भी उससे कहता । कभी कहता—‘आज तो गहरे हैं बेटा मोती । कहो क्या खाओगे ?’ कभी कहता—

श्रंगनू काका ने दीर्घ निःश्वास छोड़ कर कहा—“ठीक रहते हो भैया ! सब निकल रही है ।”

दूसरा बोला—“हमने जो उस दिन कहा था कि काका सठिया गये हैं तब कुछ भूठ थोड़ा ही कहा था । पूछो, कुत्ते के पीछे प्राण दे रहे हैं । अपना लड़का न रहा, औरत न रही, कोई न रहा, सब जंजाल से छूट गये थे । सो बुढ़ापे में कुत्ते से नाता जोड़ बैठे ।”

‘नाता’ शब्द पर सब मज़दूर हंसने लगे ।

श्रंगनू काका को बड़ा बुरा लगा, बोले—“यह जब बोलेंगा तब ऐसी ही ऊट-पटांग बात कहेगा ।”

वह हाथ जोड़कर बोला—“भूठ नहीं कहता हूँ काका ! चाहे जूते मार लो । तुम्हे चाहिए था कि सब जंजाल से चित्त हटाकर भगवान् का भजन करते सो वह तो कुछ न किया, कुत्ते के हवाले हो गए । रात-दिन उसी की माला जपा करते हैं ।”

श्रंगनू काका ने कहा—“क्या करें भैया, अब हमारा शरण आ गया है, तब उसे कहां निकाल दें ?”

“अरे मारो इसे चार डंडे । आप भाग जायगा । कुत्ते का क्या ! उसके बीस ठिकाने हैं । पचासों कुत्ते फिरा करते हैं । उन्हें कौन पाले हुए है ?”

“भैया, हमसे तो अब यह हों नहीं सकता कि डंडे मार कर निकाल दें ।”

‘कैसे हो सकता है ? नाता है ।’

अगन्तू काका ने झुल्लाकर झुल्लो खींच कर मारी । परन्तु वह पढ़ले से ही चोकन्ना बैठा था, चार बचा गया । अगन्तू काका लाल लाल आँखें करके बोले—नाता है ! हम कुत्ते से नाता जोड़ेंगे ! कहीं आदमी और जानवर का भी नाता होता है ?”

‘होता नहीं तो तुम्हारा कैसे हो गया ?’

“अब चले जाओ ! नहीं मारे जूतों के छोपड़ी गजी कर दूंगा ।’

‘जूतों मार लो काका पर जो बात सच्ची है वह तो हम ज़रूर कहेंगे । सुद तो नमक रोटी खाओ और कुत्ते को दूध रोटी खिलाओ । यह नाते की बात नहीं तो क्या है ?’

‘अरे मैया सिवराखन यह पिन्ना सूखी रोटी खाता नहीं ।’
अगन्तू काका ने नम्रतापूर्वक कहा ।

‘जय दूध रोटी मिलती है तर सूखी क्यों खाय ? यह कुछ तुम्हारी तरह सटिया गया है !’ सिवराखन ने कहा ।

अगन्तू काका स्नान का सा घूट पीकर रह गये । सोचा—
“ये लोग क्या जानें कि यह क्या है ।’

एक अन्य व्यक्ति बोला—‘उसे यद्दा तो लाओ किसी दिन।’

अगन्तू काका ने कहा—‘ज़रा और बड़ा हो जाय तो साया करेंगे ।’

“अंगनू काका, उसे कुछ पढ़ाओ-लिखाओगे भी या अपनी तरह डलिया ही दुलवाओगे ?” शिवराखन ने पूछा ।

“अच्छा अब दिल्लीगी हो चुकी । अब चुप हो जाओ ।”

“नही काका इन्तज़ाम तो तुमने अच्छा सोचा है । बुढ़ापे । तुम मज़े से पड़े रहना । वह इधर-उधर से रोटी उठा लाया करेगा और तुम्हें खिलाया करेगा ।”

अंगनू काका बोले—“अच्छा भैया, जो तुम्हारा जी चाहे, हो । अब तो पाल ही लिया है । अब तुम्हारे कहने से हम उसे निकाल नहीं सकते ।”

एक दिन मज़दूरो के आग्रह पर अंगनू काका जब सवेरे प्रड़े पर आये तब मोती को भी साथ लेते आये । एक स्थान पर उसको बांध दिया । दिनभर मज़दूरी की । उस दिन पैसे अधिक मिले । वड़े प्रसन्न हुए । सोचा कि आज मोती को दो पैसे की बरफ़ी खिलावेगे ।

सन्ध्या समय उसे साथ लेकर चले । आगे आगे अंगनू काका जा रहे थे, पीछे मोती था । एक चौराहा पार करने लगे । संयोगवश मोती चौराहे के बीचोबीच चला गया । दो ओर से मोटर आ रहे थे । अंगनू काका ने देखा कि मोती मोटरों के नीचे दबना चाहता है । झपटकर उसे उठाने चले-मोती तो कतरा कर निकल गया, परन्तु अंगनू काका को मोटर की टक्कर लगी, वे तड़ाक से गिरे । भल्ली हाथ से

छूटकर दूर जा गिरी मोटर अगन् काका के ऊपर से निकल गया ।

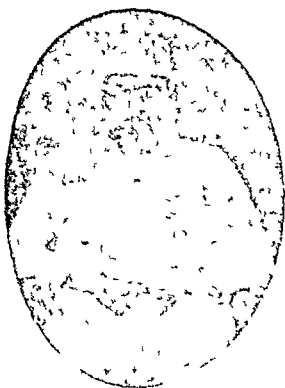
* * * *

एक मजदूर के साथ एक कुत्ता रहता है । सवेरे उसी के साथ थोड़े पर आता है और शाम को उसी के साथ जाता है । यह मजदूर जहा जहा मजदूरी पर जाता है कुत्ता भी साथ रहता है । उसल जा कोई पूछता है कि यह कुत्ता कब पाला तब यह उत्तर देता है— मैंने नहीं पाला,— यह अगन् काका का कुत्ता है । मरते समय मुझको सौंप गये थे । भगवान् की लीला देखा ! लडका मर गया । औरत मर गई, घर द्वार छूट गया, पर उसकी उर्दें कुछ चिन्ता नहीं था— मस्त रहते थे । आखिरी समय इसे पाल लिया । तब ऐसा मोह बढ़ा कि इसी के पीछे जान दे दी और मरते समय भी इसीकी चिन्ता रही । न लडके को याद किया, न औरत को और न भगवान् का नाम लिया । इसी का नाम रटते रहे । हमसे बोले— 'भैया सिधरायन ! इसे तुम पाल लो, मेरी निशानी तुम्हारे पास रहेगी, पर अच्छी तरह रखना ।' मैंने जब क्रसम साह कि अच्छी तरह रफ्तूगा तब प्राण छूटे । सो यह उर्दी अगन् काका की निशानी है ।

आज दिन भी उस कुत्ते को देखकर लोगों को अगन् काका का स्मरण हो आता है ।

श्री ज्वालादत्त शर्मा

आप मुरादाबाद के निवासी हैं। आपका जन्म सन् १८८८ में हुआ।
हिन्दी के साथ साथ ही आपको संस्कृत, उर्दू, फारसी का भी अच्छा



ज्ञान है। आप पुराने गल्प-
लेखकों में से हैं। आप के गल्प
उस समय भी सरस्वती में
निकलते थे जब कहानियों का
रिवाज बहुत कम था। समाज
के कुरा जनक दृश्यों का वर्णन
करने में आप विशेष निपुण हैं।

आपने उर्दू के कई प्रसिद्ध
कवियों पर पालोचनात्मक

पुस्तकें लिखी हैं, जो हिन्दी साहित्यकोष का कीमती धन समझी
जाती हैं। आपकी वर्णन शैली सरस और आकर्षक तथा, भाषा
सरल और मंजी हुई है। कहीं कहीं उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग
मिलता है।

मृत्यु-शय्या

(१)

एक हिन्दू पर एक साथ कई मारें पड़ जाती हैं । पहले तो वह हिन्दुस्तानी होने के कारण उन समस्त दोषों से युक्त होता है जो परतंत्र भूमि में उगनेवाले पौधे में हुआ करते हैं, फिर वह हिन्दू होने के कारण अनेक निरर्थक और मन-गढ़त रुढ़ियों का दास होता है । यदि वह परीय होकर बेकार और २३ क-याओं का पिता हुआ तो बस फिर उसके जीवन पर मृत्यु को भी तरस आने लगता है । यहाँ एक अजब तमाशा है—विप में अमृत छिपा हुआ है, नाश होने वाली चीज़ों में अविनाशी डेरा डाले पड़ा है । विगाड़ के उजाड़ में बनाघट की देवी का शृङ्गार हुआ करता है । कहीं इधर किसी की दृष्टि से पहुँच गए तो उसे कुछ और ही देखने को मिल जाता है फिर ता प्रलय काल के यादलों की गरज भी उसकी शांति को भङ्ग नहीं कर-सकती, शेष शय्या पर

करते समय उसकी शक्ति 'जाम' खा गई। कई दिन तक वो बह मोचता रहा, आन दलाल से कह, कल कह, उसे अपना अभिप्राय प्रकट करते इन्ज़त की डायन तरह तरह के रूप भरकर डराती थी, मुह से वात न निकली थी, मानों वह पहली बार जररदस्ती किसी समा में धोलने के लिए बसा कर दिया गया है। अंत में उसने दिल पका करके एक दलाल से अपने मन की बात प्रकट कर दी। दलाल ने कहा 'बाबूजी' मैं बहुत जरूर आपका काम बना दूंगा पर मुझे इसका डोल पीटना पड़ेगा, आप को दुःख तो न होगा।' उसने देखा, बूढ़ दलाल की तेज नजर ने चोर पकट लिया है। उसने हिम्मत से उत्तर दिया—'नहीं भाई मुझे दुःख न होगा। तुमने अच्छा किया जो पूछ लिया जिस तरह काम बने बनाओ मुझे कोई आपत्ति नहीं है।'।

दूसरे दिन से उसके बहा एक नये नाटक का अभिनय शुरू हो गया। उसने देखा, तुम सुनो।

(४)

उसके पाम तीन तरह के आदमी आये। एक तो वे जो दिल में गुश थे, मानों उन्हें ही उसकी सारी जायदाद पट्टा गई है। मुह से सहानुभूति दिखाने आते थे, मानों उन पर कोई मारी विपत्ति पट गई है। बात शुरू करते तो इस तरह बालते मानों उनके बहा कोई मर गया है। दूसरे

दिन समाप्त होने वाला है और अन्धेरी रात मुंह खोले दौड़ी चली आ रही है।

(३)

पहले तो उसने सोचा, अभी तीन-चार साल से ही जो इस घर में आई और बाहरी ठाठ में जो इस उजड़े खड़े को चमन समझे बैठी है उस अपनी स्त्री से इस विषय में परामर्श न करूं तो अच्छा है, किन्तु वह अपनी स्त्री के रूप से अधिक सद्गुणों पर मुग्ध था, उससे न रहा गया ! उसी दिन उससे सारा हाल कह दिया । वह डर रहा था कि यह सब सुन कर वह रोयेगी, एक-दो दिन भोजन न करेगी, किन्तु उसने देखा कि उसके चेहरे पर कोई विशेष अन्तर न हुआ । हां, चिन्ता के सूफियाने रङ्ग ने उसके भीतरी सौन्दर्य पर एक हल्की सी चिन्ता ज़रूर कर दी । वह बोली—‘यदि ऐसा है तो तुरन्त सब ज़ायदाद बेच डालो, मकान बहुत बड़ा है, हमें इसकी कुछ ज़रूरत नहीं है, कहीं और जगह चलकर रहो, कुछ रुपया बचेगा उसके सूद से और तुम्हारी २०) .५) की नौकरी से हमारा सब काम चल जायगा !’

उसने यह काम जितनी शीघ्रता से करने को कहा और वह स्वयं भी उसे जिस सफ़ाई से कर डालना चाहता था, कार्य-क्षेत्र में उतरने पर उसे मालूम हुआ कि सोचने की ‘स्पीड’ से काम की गति बहुत थोड़ी हुआ करती है । काम

करते समय उसकी शक्ति 'जाम खा गए। कई दिन तक तो वह सोचता रहा, आज दलाल से कह, कल कह, उसे अपना अभिप्राय प्रकट करते इत्जत की डायन तरह तरह के रूप भरकर डराती थी, मुह से वात न निकली थी, मानों वह पहली बार जगरदस्ती किसी समा में बोलने के लिए सजा कर दिया गया है। अंत में उसने दिल पका करके एक दलाल से अपने मन की बात प्रकट कर दी। दलाल ने कहा 'बाबूजी' मैं बहुत जल्द आपका काम बना दूंगा पर मुझे इसका डोल पीटना पड़ेगा, आप को दुःख तो न होगा।' उसने देखा, बूढ़े दलाल की तेज नज़र ने चोर पकड़ लिया है। उसने हिम्मत से उत्तर दिया—'नहीं भाई मुझे दुःख न होगा। तुमने अच्छा किया जो पूछ लिया जिस तरह काम बने बनाओ मुझे कोई आपत्ति नहीं है।'।

दूसरे दिन से उसके यहाँ एक नये नाटक का अभिनय शुरू हो गया। उसने देखा, तुम सुनो।

(४)

उसके पास तीन तरह के आदर्मी आये। एक तो वे जो दिल में तुश थे मानों उधे ही उसकी सारी जायदाद पट्टुच गई है। मुह से सदानुमति दिखाने आते थे मानों उन पर कोई भारी विपत्ति पड़ गई है। बात शुरू करते तो इस तरह बोलते मानों उनके यहाँ कोई मर गया है। दूसरे

वे थे जो उसकी जायदाद थोड़े दाम में खरीदना चाहते थे और हितैषी बनकर घोखे का जाल बुनते थे । इनमें, उसके पिता के मित्र लाला रामप्रसाद, जो सन्तानहीन होने के कारण स्नेह के पंखी से परिचित ही न थे, सबसे नम्बर ले गए । उन्होंने उसे एकान्त में समझाया, तुम्हें रुके पर्वों का रुपया देना है, तुम अपनी सारी जायदाद मेरे यहां गिरवी डाल दो, रकम को खूब बढ़ाकर लिख दो, जब वह काम हो जायगा तब देने वाले भक मार कर रुपये मे ॥) लेने पर राजी हो जायंगे, बाद को इतमीनान से बेच लेना । थोड़ी जायदाद से ही मेरा रुपया पूरा पड़ जायगा और सब तुम्हारी जायदाद बेच जायगी । इस प्रपंच के लिए उन्होंने बहुत सिर खपाया । कभी महाजनों के पास जाते, उनसे कहते कि तुम किस ध्यान में बैठे हो, लड़का सब जायदाद बेच कर विलायत भागना चाहता है, बैठे-बैठे देखते रहोगे तो देखते रह जाओगे फट से नालिश कर दो और कुर्की से पहले फ़ैसला निकलवा दो, मेरे तो मित्र का बेटा है, किन्तु उसकी चाल मुझे बुरी दीखती है, फिर तुम लोगों से भी तो मेरी दुश्मनी नहीं है, सच्ची कहूंगा चाहे किसी की हो, यह मेरा स्वभाव है । दूसरे समय रामभरोसे के पास जाकर कहते थे, महाजन बड़े चाण्डाल होते हैं । बड़ी मुश्किल से समझा कर आया हूँ । जायदाद बेचने की खबर सुनकर अजब अजब मनसूबे बांध रहे हैं । नालिश करने पर उतारू हैं । भइया, जायदाद

बेचने का नाम घुरा होता है । इससे हवा उखड़ जाती है । मेरा कदा मान लो, फिर इन दुष्टों से मैं निपट लूंगा । यह सब पाखण्ड लीला उसे घुरी लगती थी किन्तु बचपन से जिनका आदर करना सिखाया गया था, उन पर उसे शोध न आकर दया ही आती थी । तीसरे वे थे और एक हाथे उसके पिता के सच्चे मित्र उसके सच्चे हितैषी, मनुष्य जाति के उज्ज्वल रत्न उस पर अशेष स्नेह रखनेवाले परिदत्त सनेदीलाल, जो उसी मुदले में रहते थे । उनके बहा भी थोड़ी सी जर्मीदारी थी ।

जब उन्होंने यह खबर सुनी तब एक दिन उसके पास आए । चेहरा तो पुरुश ही था, किन्तु आँखें सुस्त थीं । उस समय रामभरोसे के पास कई आदमी बैठे थे । थोड़ी देर तक इधर-उधर की बातें करके बोले—“दुलारे की मा तुम्हें कई दिन से बहुत याद कर रही है । कि किसी समय उसके पास हो आना ।” दुलारे, परिदत्तजी का पुत्र और रामभरोसे का पाल्य-सया, प्रवेशिका पास कर के बाहर पढ़ने चला गया था । उसकी माता का भरोसे पर भी बहुत स्नेह था, जिस त्प्रीति पर दुलारे न आता था इसे बुला कर ही वह खिला-पिला कर सन्तोष प्राप्त करती थी । उसने कहा—“चाचाजी मैं आज जरूर आऊंगा । मेरा मन भी कई दिन से आने की कर रहा था, किन्तु आ न सका ।”

थोड़ी देर में वह उनके स्थान पर पहुँचा । परिदत्तजी

बाहर बैठे थे। उसे देखकर खड़े हो गये और साथ लेकर अन्दर गये। उसे देखकर उनकी स्त्री ने कहा—‘क्यों रे भरोसे, बहू ने ऐसा क्या जादू कर दिया है जो घर से निकलता ही नहीं? पहले रोज़ आता था, अब हफ़्ते गुज़र जाते हैं, सूरत को तरस जाती हूँ।’ यह वाण दिल के पार हो गया, घात सच थी। उसकी नज़र नीची हो गई और मुंह से एक शब्द न निकला, शर्म के पानी में मानों डूब गया। उसे भेंपा देखकर परिडतजी ने कहा—‘अरे तुम भी कमाल करती हो। इतने दिन बाद आया है उसे कुछ खिलाओ-पिलाओ, प्यार करो, शिकायत ले बैठी। उस पर घर का सारा बोझ आ पड़ा है। अब उसे उतनी फुर्सत कहां है?’ आओ बेटा ऊपर बैठोगे। कहकर वे उसे ऊपर ले गये। वहां छत पर कम्बल बिछा हुआ था, उसी पर दोनों बैठ गये। थोड़ी देर बाद परिडत जी की स्त्री एक बड़े थाल में मिठाई, नमकीन फल आदि लिये वहां आ गई और भरोसे को अपने हाथ से इस तरह खिलाने लगी, मानों वह ३-४ वर्ष का अवोध-बालक है। उसने मन में कहा—पृथ्वी पर प्रेम का अभी चिह्न बाकी है, उसी के सहारे यह हरी-भरी है। उसने कहा—‘चाची, कितना खिलाओगी? मेरा पेट भर गया। अब नहीं खाया जाता।’ ‘अरे अभी से ऐसी बातें करता है, अच्छा यह खा, तेरे लिये मैंने अपने हाथ से बनाया है।’ ‘नहीं चाची, अब रहने दे, पेट भर गया।’ उसने कहा—‘यह तो खाना पड़ेगा।’

रोज आता था। अथ बहुत दिनों में आया है। अपना पूरा हिस्सा खाना पड़ेगा।' उसने कहा—'चाची माफ़ कर। अगले में रोज़ आकर अपना हिस्सा खा जाया करूंगा।' परिडतजी निर्निमेष दृष्टि से वात्सल्य का पान कर रहे थे बोले—“अच्छा रहने दो, तबीयत भर गई तो फ्यों खिलाती हो।” हाथ से मिठाई थाल में रख कर चाची ने कहा—“बेटा, मेरा बात का पुरा न मानना। मुझे बड़ी कसक आ रही है। मैंने तुमसे ऐसी बात फ्यों कही तू तो मेरा वैसा ही भोला भरोसे है। अपनी बहू से उस बात का जिज़ न करना, धुरा मानेगी। वह तो साक्षात् लक्ष्मी है।”

परिडतजी ने कहा— भरोसे” मैंने सुना है तुम अपना सब जायदाद बेच रहे हो।

उसने कहा—' हा चाचाजी, बिना पैसे किये ऋज नहीं उतर सकता।

उन्होंने पूछा— ऋज कितना है ?”

उसने कहा— कोई ३० हजार।”

उन्होंने पूछा— जायदाद किस क्रीमत की है ?”

उसने कहा— २५ हजार गाव के लग गये हैं ६-७ हजार में मकान भी बिक जायगा।

उन्होंने पूछा—“ तो फया मकान भी बेचागे ?”

उसने कहा— 'यदि गाव के दाम कम लगे तो मकान बेचना ही पड़ेगा।'

उन्होंने कहा—“बेटा एक बात कहता हूँ। वुरा न मानना। मैं तुझमें और दुलारे में अन्तर नहीं समझता हूँ। मेरे पास इस समय ७ हज़ार नकद रक्खा है और ४ हज़ार के ज़ेवर हैं। ये सब तू अपने कर्ज में दे दे, आधा गांव और मकान बचा ले। गांव ३० से कम का नहीं है। मैंने ठाकुर जयसिंह से बात की है। वे २८ तक ले लेंगे। ज़ोर डालूंगा, जो कुछ बढ़ जायगा अच्छा है। तेरे पिता मेरे मित्र थे। उन्होंने मेरे ऊपर बहुत श्रद्धा किये हैं। यदि मुझसे भी कुछ बन जाय तो सुख से मरूंगा।”

उसने कहा—‘चाचाजी, आपका स्नेह अनुपम है। किन्तु मैं इस तरह आपका सर्वस्व लगाकर अपनी जायदाद बचाना नहीं चाहता। आपके स्नेह का अधिकारी होने से आपके बन का भी अधिकारी हूँ। किन्तु क्या आप स्नेह के कारण दुलारे का कोई अनिष्ट चाहेंगे?’

उन्होंने कहा—“कभी नहीं। तेरी चाची ने बहुत कहा, बेटे को आंख ओझल न करो, किन्तु मैंने इनकी एक न मानी। तेरे पिता बीमार पड़ गये और अन्त में उनका शरीर ही छूट गया, नहीं तो मैं तुझे भी कालेज बिना भेजे न मानता। हाय जब सुख देखने का समय आया तब चल बसे। तपस्या करते करते ही जीवन पूरा हो गया है। हां, तो मैं स्नेह में अनिष्ट नहीं कर सकता।”

उसने कहा— चाचाजी, यह अनिष्ट ही है जो आप अपना सर्वस्व देकर मेरी आधी जायदाद बचाना चाहते हैं। बुलारे की पढ़ाई का अभी बहुत खर्च बाकी है, फिर अगले वर्ष उसका विवाह होगा। उसके लिए आपको ज़रूर पैसे की जरूरत होगी। खर्च के लिए भी बहुत रुपया चाहिए। फिर कर्ज लेना पड़ेगा। इसलिए ऐसा काम करना उचित नहीं है। अपनी जायदाद बिक जाने पर भी मैं आपका जायदाद से जायदादवाला हूँ।

उन्होंने कहा— 'अच्छा तो मकान अवश्य बचाना होगा।'

चाची बोल उठी— 'बेटा, तूने मेरी यह बात न मानी तो मैं समझूंगी तुम्हें मुझसे मुहम्वत नहीं है। तुम्हें मेरी ब्रसम जो मकान देवे। जितना रुपया कम पड़े मुझसे ले लेना। दाय तेरी माता ने किस चाच से उस घर में तेरे लिए कमरे बनवाये थे। मेरी बहू इनमें रहेगी। आज वे नहीं है तो मैं तो हूँ। मैं अपनी जिन्दगी में यह न देख सकूंगी। बोल क्या कहता है ?'

उसने कहा— चाची, तू मुझ ब्रसम देती है तो मैं भी तुम्हें एक ब्रसम देता हूँ। तुम्हें भी मेरा कहना मानना पड़ेगा। जरूरत पड़ने पर जो रुपया तुम्हें लूंगा उस लौटाने का मुझे अधिकार होगा। तुम्हें लेना पड़ेगा और—

यह बीच में बोल उठी— हाँ ले लूंगी और क्या—सूद ?'

में नहीं। क़सम तो उसी बात के लिए दूंगा। वता मानेगी ? चाची ने कहा—“पहले तू अपनी बात वता फिर मैं बताऊंगी।”

उसने कहा—“नहीं बताऊंगा। तूने क्या मुझे मुझसे पूछ कर क़सम दी थी ? मैं तो इतना पूछ भी रहा हूँ।”

चाची ने कहा—“अरे तू मेरी बराबरी करता है। बेटे के पास मां का दिल नहीं होता। अच्छा वता, मंजूर है।”

उसने कहा—“मंजूर है तो जहां मैं रहूंगा, साल में तुझे कम से कम दो महीने सूद लेने के लिए मेरे पास रहना पड़ेगा। आज मुझे मालूम हुआ है कि मेरे मा-बाप मेरे नहीं, ज़िन्दा हैं। उनके रूप में अन्तर पड़ गया है, तत्त्व ज्यों का त्यों है।” उसका गला रुंध गया।

चाची ने कहा—“इसके लिए क़सम दिलाता है, बड़ा भोला है। मैं चार महीने रहूंगी—बस—कहकर आंचल से मुँह पोंछने लगी।”

उसने कहा—“बस।”

चाची ने कहा—“ये सात हज़ार के नोट हैं। इन्हें साथ लेता जा।”

उसने कहा—“इनका अभी से मैं क्या करूंगा ? ज़रूरत पड़ने पर ले जाऊंगा।”

परिडतजी बोले—“ठीक है अभी इन्हे तुम अपने रक्खो। अंगरेज़ी पढ़े-लिखे में एक दोष होता है—

से मानते हैं, कि-तु साथ ही यह गुण भी होता है कि जब मान लेते हैं तब दुबारा मनाना नहीं पड़ता । दुबारे में भायही बात है । अच्छा पढ़ा, अब जा बहुत देर हो गई । वह अकेली होगी ।'

(५)

घर का जेवर गाव और कुछ फिन्ल पड़ा सामान बेच कर नज़ा निपट गया । तब हजार चाची के लेन पड़ । ठाकुर साहब ने २७ हजार स अधिक गाव के न दिए । जब चाची ने रुपय मांगने गया तब वाली यह से ले लेना । मैंने घर आकर पूछा ता मालूम हुआ । घ दूबर हो दिन एक लिफाफा दे गई थी और कह गई थी कि जब भरोस माग तब दे देना । इसमें सरकारी फायज है, समाल कर रचना । मैंने कहा — 'लाना ये सरकारी कायन ।' लिफाफे में सात हजार क नाट ये मैं चार हजार लाटान गया तब बोली — 'ये अपने पास रख कुछ राजगार कर खाने का भी तो कुछ चाहिए ।'

मैंने कहा—चाची, मैंने स्कूल में नौकरी कर ली है । परसों चला जाऊंगा । मेरे पास १००) हैं । ज़रूरत हुए तो तुमसे मगा लूंगा ।' वही कठिनाई से लिए ।

अब जीवन का नया अध्याय आरम्भ हुआ, न घर में मदरी, न बाहर नौकर छोटे से मकान में रहना और सब

काम अपने हाथ से करना । इस स्थिति में जो आनन्द, शान्ति और सन्तोष था उसका कभी अनुभव भी न हुआ था । सब काम समय पर होते थे । न अब महरा के न आने से चौका भिनकता था और न नौकर के आने से कमरा मैला रहता था । मैं नित्य पानी भरता हूँ, काम से अधिक व्यायाम के खयाल से । गृहिणी भोजन बनाती है । पहले तो जो पहाड़ मालूम होता था, अब वह आनन्द का हेतु हो गया है । एक समय था एक गिलास पानी के लिए परतन्त्र था । आज दसों घड़े पानी घर की सफ़ाई में लुढ़का देता हूँ । आज का जीवन स्वावलम्बन का जीवन है, आज कोई काम ही नहीं दिखाई पड़ता, क्योंकि सारा काम अपने हाथ से किया जाता है ।

(६)

पाच वर्ष बीत गए, तनखाह में से आधा रुपया बचा कर चाची का कुल रुपया दे चुका हूँ । मेरी स्थिति भी सुधर गई है । पहले वर्ष में बी० ए० पास हो जाने से नार्मल-स्कूल का हेडमास्टर हो गया हूँ । वेतन भी खासा मिलता है । दुलारे डाक्टर पढ़ रहा है । चाची अपना वायदा हर साल पूरा करती है । उसके आने से हमारा घर स्वर्ग बन जाता है । मैं भी छुट्टियों में उसी के उतरता हूँ । दूसरे नहीं जान पाते, मैं और दुलारे सगे भाई नहीं हूँ ।

मौजूमी जायदाद का अक्साद न उतरता तो भात्र यह सुदिन देखने को न मिलता । पिता जी यदि ऋण न छोड़ते तो मौजूमी जायदाद की अशुद्ध धेदी पर इस निक्कमे जीवन की बलि चढ़ जाता और ससार के बाज़ार में असली नकली प्रेम की पहिचान न होती । वे भाग्यवान् हैं जिन पर विपत्तिया पडती हैं और जो धैर्य से उनका सामना करते हैं ।

* * * *

समुद्र से सटे महाशय भाटिया के सैर्नाटोरियम में मृत्यु शय्या पर पड़े मेरे एक मित्र ने पूछा—“मास्टरजी, दुलारे जी तो ब्राह्मण हैं और आप वैश्य हैं । फिर इनके परिवार के साथ आपकी इतनी आरमीयता कैसे हो गई ?”

मैंने उसका दिल बहलाने के लिए उसे अपने जीवन का एक अध्याय सुना दिया । उस समय चन्द्रमा का शीतल प्रकाश समुद्र की छाती पर ऊधम मचा रहा था, सुनकर वह बोला—

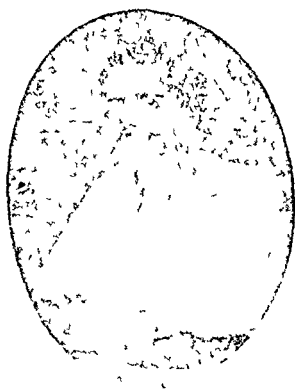
मास्टर जी, इसमें तो अद्भुत रस है । इस समय फिर मुझे यह जगत् अच्छा मालूम होने लगा है, मानो मेरे शरीर में कोई रोग ही नहीं है ।”

मैंने कहा—“भाई, मन की यह स्थिति टिकी रहे तो रोग का समूल नाश हो जाय । तुम्हें कहीं रोग छू सकता है ।”

उसी दिन से उसे आराम होना शुरू हो गया । अब वह भी हमारे आन्तरिक परिवार का एक हो गया है ।

श्री जैनेन्द्रकुमार "जैन"

आप एक जैन परिवार के रत्न हैं, आपका जन्म अलीगढ़ में सन् १९०३ में हुआ। आप अब दिल्ली में रहने लगे हैं।



अभी कुछ दिन हुए आपने कहानी लिखने के क्षेत्र में प्रवेश किया है। देखते देखते श्रेष्ठ लेखकों में आपकी गणना होने लगी है। वास्तव में आपकी क्षमता, योग्यता तथा प्रतिभा ऐसी ही हैं। आप सब भाँति से मौलिक हैं—भाषा में भी और भाव में भी।

'तपोभूमि' नामक उपन्यास आपने और श्री ऋषभचरण जैन ने मिल कर लिखा है पर आपकी छाप उस पर अधिक स्पष्ट मालूम होती है। आपकी सबसे प्रसिद्ध कृति 'परल' है। 'वातायन' में आपकी कहानियों का संग्रह है।



फोटोग्राफी

(१)

बहुतेरा पढ़ाने लिखाने के धाद और मा के बहुत बड़ने सुनने पर भी जब रामेश्वर को कमाने की चिन्ता न हुई तो मा द्वार मान कर रह गई । रामेश्वर की बाल सुलभ प्रकृति चाहती था कि रुपये का अभाव तो न रहे, पर कमाना भी न पड़े । दिन का बहुत सा समय वह ऐसा ही कोई जुगत सोचने में बिता देता था । पच के लिए रुपये मिलने में कुछ हीला हवाला होते ही, वह अपने को बड़ा कोसता था बड़ा धिक्कारता था मन ही मन प्रतिज्ञा करता था कि कल से ही किसी काम में लग जाऊंगा; और मा से अनुनय विनय करने पर या लड़ झगड़कर, जब रुपया मिल जाता था तब भी वह प्रतिज्ञा को भूलता नहीं था; पर जब अगला सवरा होता, तो फिर वह कोई सदल सी जुगत ढूढ़ने की पिक में लग जाता ।

मां ने भी होनहार को सिर नवाकर स्वीकार कर लिया । इस २३ वर्ष के पढ़े लिखे निर्जीव काठ के उटलू को, दुलार के साथ अच्छा-अच्छा खिला-पिलाकर पालते-पोसते रहना मां ने अपना कर्तव्य समझा ।

रामेश्वर बड़े भले स्वभाव का युवका था । उसके चलने में जरा भी खोट न था, पर था वह आनन्दी और निश्चिन्त स्वभाव का । उसने प्रशंसनीय सफलता के साथ बी० ए० पास किया था; पर वह यह नहीं जनता था, कि इस दो शब्द की पूंछ से कहां और किस तरह फ़ायदा उठाया जा सकता है । इस पूंछ के लगने के बाद, एक विशिष्ट गौरव से सिर उठाकर, राह चलते नेटिव लोगों पर हिंकारत की निगाह डालते हुए चलने का अधिकार मिल जाता है—यह भी वह न समझता था ।

इस फोटोग्राफी की सूझ के बाद अब वह बिल्कुल पेरे-गैरे लोगों में अपना केमेरा बांह पर लटकाये और हाथ में स्टैण्ड को छड़ी के मानिन्द घुमाता हुआ कहीं भी देखा जा सकता है । उसकी अपनी खीची हुई अच्छी-बुरी तस्वीरों के संग्रह में आप एक जाट को दिल्ली के चादनी चौक के फ़ुट-पाथ पर बोलत होठ से लगाये सोडा वाटर गटकते पा सकते हैं, होली के उत्सव की खुशी में रंग-विरंगे उछलते कूदते आठ आठ दस-दस ग्रामीणों की नाचती हुई उन्मत्त टोलियों को पा सकते हैं । सारांश यह कि उसके चित्र अधिकतर

साधारण कोटि के सामों में से लिये गये हैं । यह उनसे जितना अपनापा अनुभव कर सकता है, उतना बड़ आदमियों से नहीं ।

यह दम यह भी कह देना चाहते हैं कि यह कोई धनिक का पुत्र नहीं है । उसे अपने खर्च के लिए ४०) मासिक मिलते हैं, लड़क भगडकर १०) मासिक तक और मिल जाते हैं—इत्यादि नहीं । रामेश्वर यह जानता है, और यह जहां तक होता है ४०) से अधिक न लेने का ही प्रयत्न करता है । कभी अधिक खर्च होता है, तो यह अपने ऊपर झुम करके इधर उधर के खर्चों से काट छांटकर पूरा कर लेता है ।’

(२)

जब यह अलीगढ़ गया, तो साथ में छु प्लेट ले गया था । पहुंचने के दिन ही उसने छहों खींच डाले । चार सभाल कर बेग में रख लिये दो स्लाइड में ही रहने दिये ।

लड़के जिन्हें प्रकृति ने परमात्मा की तरह निर्दोष बनाकर भी, उनमें ताक भाक और तोड़फोड़ की उत्सुकता भर कर शैतान बनाया था, और जिन्हें रामेश्वर ने स्लाइड की हाथ न लगाने की सख्त ताकीद कर दी थी दृष्टात् छेड़ छुड़ किये बिना न रह सके । भीतर फसा जादू दे, यह जानने के लालच से उन्होंने स्लाइड

खोल डाली, प्लेट का कांच निकाल लिया और पटककर तोड़ दिया।

जब रामेश्वर अलीगढ़ स्टेशन पर दिल्ली आने वाली एक्सप्रेस के एक ड्योढ़े दर्जे में घुसा, तो एक भरी, एक खाली, दो स्लाइड उसके पास थीं।

गाड़ी चलते समय ही सामने की बेंच पर एक रूठते हुए बालक की ओर उसका ध्यान गया। उस बालक को केले की आशा दिलाई गई थी; पर केले वाला खिड़की के पास आया था, कि गाड़ी चल दी। इसी पर बच्चा मचल रहा था।

“क्यों मचल रहे हो बेटा, अगले स्टेशन पर केले मंगा लूंगी”—उसकी मां उसे मनाने के लिए कह रही थी।

बच्चा बहुत ही सुन्दर था। लाली छाये हुए उसके गोरे-गोरे गाल और माथे के दोनों ओर खेलते हुए उसके टेढ़े-मेढ़े बाल नये फोटोग्राफ़र को अलौकिक जान पड़े। उसने ऐसा सुंदर बालक कभी न देखा था।

और हां, मां! मां विलकुल बालक के अनुरूप थी। वही स्वच्छ खिला हुआ रूप, और वही मधुर आकृति; पर माता में सलज्ज संकोच था, और बालक में लज्जा से अछूता चांचल्य।

बालक मचला हुआ था, किसी तरह नहीं मानता था।

रामेश्वर ने केमेरा खोला । कहा— 'आओ श्याम, तुम्हें एक नमशा दिखाए ।'

केमर को देखते ही बालक श्याम केले वाले को और कले पर अपने रूठने को भूल गया । तुरंत रामेश्वर की गोद में आ बैठा ।

रामेश्वर ने पूछा— 'तस्वीर खिचवाओगे ?'

श्याम ने ताली बजाकर कहा— 'खिचवाएंगे ।'

मा बालक की भसन्नता से खिल उठी और अनायास बोल पड़ी— "हा खींच दो ।"

रामेश्वर ने बालक को मा के पास बेंचपर बिठा कर अपने केमेरे को ठोक जमाना शुरू किया ।

बालक बड़े उल्लाम से एक अद्भुत चीज़ पा जाने की आशा में केमेरे के लेंस की तरफ एकटक देख रहा था । मा भी यह ध्यान से देख रही थी कि फोटोग्राफी कैसे होती है ।

रामेश्वर ने केमेरा ठोक कर लिया । फिर न जाने उसे क्या सूझा कि सट्टुचाते हुए वह मा से बोला— "इसमें आपकी भी तस्वीर आ जाती है कुछ हज़ तो नहीं ?"

मा ने कुछ उत्तर न दिया उ होने बेग में से चश्मा निकाल कर पहना और अपने कपड़ों की सज़ायट ठोक कर पचे के पास आ बैठी ।

रामेश्वर के पास खाली स्लाइड थी । उसने फोकस

लगाया, श्याम को लेंस दिखा कर कह रखा—इसमें से चिड़िया निकलेगी । फिर नियमित रूप से एक-दो तीन किया और कह दिया—फोटो खिंच गई ।

तमाशा था, खतम हुआ । रामेश्वर जब केमरे को बन्द करके रख देने की तैयारी में था, तो उससे कहा गया—
लाइए, तस्वीर दीजिए ।

वह बड़ी उलझन में पड़ा । तस्वीर खिंची ही कहाँ थी ? वह तो भूठ-मूठ-का तमाशा था । स्लाइड तो खाली थी और तस्वीर खिंचती भी, तो दी कैसे जा सकती थी ? उसे तैयार करने में अभी तो कमसे कम दो दिन और लगते; पर उसने फिर सुना—जितने दाम हों ले लीजिए, तस्वीर दे दीजिए ।

उसकी घबड़ाहट बढ़ती जा रही थी । क्या वह कह दे—तस्वीर नहीं खिंची गई, वह तो सिर्फ़ धोखा था और तमाशा था ! नहीं, वह यह नहीं कह सकता । मां ने कितनी उमंग के साथ अपने बालक की और अपनी तस्वीर खिंचवाई है ! क्या वह सच-सच कह कर उनके मन को अब मार देगा ? नहीं, सच बात कहना ठीक नहीं ।

“देखिए, यह ठीक नहीं है, तस्वीर दे दीजिए ।”

रामेश्वर ने कहा—“तस्वीर अभी कैसे दी जा सकती है ? उसे अभी धोना होगा, छापना होगा—तब कहीं वह तैयार होगी ।”

मा ने कहा—‘ धोनी होगी ? टैर, हम लादौर में धुलवा लेंगे ।’

रामेश्वर बोला—जी नहीं, उसे जरा सा प्रकाश लगेगा कि वह खराब हो जायगी ?

अगर सचमुच की तस्वीर होती तो रामेश्वर स्लाइड समेत उसे बिना दाम भेंट करके कितना प्रसन्न होता ! पर अब तो वह जा रहा था । कैसी घुरी विडम्बना में फस गया था वह !

उसस सुनना पड़ा—यह ठीक नहीं है । जो हो, आप तस्वीर दे दीजिए । हमें यह नहीं मालूम था ।

रामेश्वर क्या कहे ! बोला— क्या आप यह समझता थीं, तस्वीर अभी तैयार हो जायगी, और आपका मिल जायगी ?’

जवाब मिला—“हमें यह नहीं मालूम था कि तस्वीर आपके ही पास रहगी ।

रामेश्वर ने कहा—“तो, इसमें हज ही क्या है !”

महिला अकेली नहीं थी । उनके साथ एक महिला और थी । एक पुरबिया बुढ़ा नौकर था, और वह बाल बंध थे । उन्होंने क्षण भर अपनी साथिन की ओर दृष्टा, देख कर कहा— नहीं नहीं आप दे दीजिए ।’

रामेश्वर अभी तक कमी का दे देता, पर दे तो तब जब हो । उसने कहा—‘ देने के माने उसे खराब कर देना

है । इससे अच्छा, उसे तोड़ ही दिया जाय । आप मेरा परिश्रम क्यों व्यर्थ करवाती हैं ?”

उन्होंने फिर साथिन की ओर ऐसे देखा, जैसे वह स्वयं रामेश्वर को छुटकारा दे देना चाहती हैं । पर शायद साथिन की ओर से उन्हें संकेत मिला—लाहौर जाकर यह बात छिपी न रहेगी, फिर कैसा होगा ? उन्होंने कहा—
“तो तोड़ डालिए ।”

रामेश्वर ने सोचा—“अगर, कहीं दूसरी महिला भी फोटो में आ गई होती तो शायद कठिनता न होती । उसने अपील करते हुए कहा—“जी, देखिए मैं दिल्ली रहता हूँ, आप लाहौर जा रही हैं । मेरा आपका परिचय भी नहीं है । इस दिन को छोड़ कर शायद फिर कभी मिलना भी न होगा । मैं व्यवसायी फोटोग्राफर भी नहीं हूँ । आपको मैं बचन देता हूँ, मेरे पास तस्वीर रहने में, आपका कुछ भी अहित न होगा ।”

मां ने फिर अपनी साथिन की ओर देखा; पर उनकी तो तस्वीर खिंची न थी । मां ने कहा—“आप अखबार में भेजे देंगे, अपने यहां लगा लेंगे ।”

रामेश्वर ने तुरन्त कहा—“मैं बचन देता हूँ, न मैं लगाऊंगा न कहीं भेजूंगा; पर आप मेरा परिश्रम व्यर्थ न काजिए ।”

मां को विश्वास हो चुका था, कि यह बात लाहौर में

बालक के पिता तक अवश्य पहुँचेगी। वह बेचारी क्या करती ? बोली— नहीं आप तोड़ ही दीजिए।'

वह इतना अविश्वासी समझा जा रहा है, इस पर रामेश्वर भीतर से बड़ा घुट रहा था। इच्छा हुई कि सच सच बात कह दू, पर ध्यान हुआ—उसे सच कौन मानेगा ! मैं कहूँगा तस्वीर नहीं खिंची, सिर्फ बालक को पहलाने की तमाशा किया गया था तो कोई यकीन न करेगा। वह समझेंगी— मैं तस्वीर रखना चाहता हूँ, इससे भूट बोलता हूँ और बहाने बनाता हूँ। रामेश्वर को इस लाधारी पर बहुत दुःख हुआ, परन्तु उसने कहा— "अगर आप कहेंगी, तो मैं तस्वीर को तोड़ ही दूँगा, पर मैं फिर आपसे कहता हूँ, मैं दिल्ली चला जाऊँगा। फिर आपके दर्शन कभी मुझे नहीं होंगे। अगर आपकी तस्वीर मेरे पास रही भी, और मैंने टाग भी ली तो इस में आपका क्या हज है ? देखिए बालक श्याम का चित्र मेरे पास रहने दीजिए। आपके चित्र के धारे मैं मैंने आपसे पहले ही पूछ लिया था। आपका यह श्याम मुझे फिर कब मिलेगा ? इसके दर्शन को आप मुझसे क्यों छीनती हैं ?

वह बोली— हा, श्याम का चित्र आप दूसरा ले लीजिए।'

किन्तु दुर्भाग्य, रामेश्वर के पास खाली प्लेट तो कोई

फ़ोटोग्राफी

हीं है। होता तो यह बखेड़ा ही क्यों उठता ? कहा—“खेद कि मेरे पास खाली प्लेट ही कोई नहीं है।”

जब उसने अपना पीछा छूटते न देखा, तो हार मान कहा—“अच्छा लीजिए।”—और भरी स्लाइड को खोल डाला।

उससे कहा गया—‘देखिए, आप बदल न लीजिएगा।’
“इतना अविश्वास न करें।”—यह यह कर उसने स्लाइड का प्लेट निकाल कर चलती हुई रेल के नीचे छोड़ दिया।

जिनकी फ़ोटो न खिंची थी, उनको शायद संदेह बना ही रहा। रामेश्वर से कहा गया—“ज़रा वह दिखलाइए तो, देखें आपने फैंका भी या नहीं।

रामेश्वर मर-सा गया। उसने उठ कर श्याम के सिर पर हाथ रखते हुए कहा—“बालक के सिर पर हाथ रख कर कहता हूँ, मैं इतना असत्यवादी नहीं हूँ।” यह कह कर स्लाइड उसने ‘मां’ को दे दिया।

स्लाइड को खोल कर, उसके एक-एक हिस्से को उंगली से दया दया कर, और हरेक कोना टटोल कर, साथिन महाशया के यह प्रमाण दे देने पर कि अब सचमुच स्लाइड में कोई चीज़ है, रामेश्वर के प्रति उनको थोड़ा-थोड़ा विश्वास होने लगा।

रामेश्वर ने अब श्याम से खूब दोस्ती पैदा कर ली,

और दिल्ली पहुँचते-न-पहुँचते वह श्याम का पका मामा बन गया।

उन्हें आराम से लाहौर की गाड़ी में बिठाकर, उनके पैसों को अस्वीकार करके, श्याम की अम्मा से लूना माग कर, और सोते श्याम का अन्तिम चुम्बन लेकर, दिल्ली स्टेशन पर जय रामेश्वर उनसे सदा के लिए बिदा लेने को धा, कि उससे कहा गया—आपने क्या कष्ट उठाया। इतनी कृपा और करें कि सवेरे तार दे दें।

हाथ से एक रुपया रामेश्वर की ओर बढ़ाते हुए माने लाहौर का अपना पता लिखवा दिया।

पता लिखते ही रामेश्वर भाग गया। 'यह लेते जाएँ' का आवाज़ उसके पीछे दौड़ी पर वह नहीं लौटा। स्टेशन के बाहर आते ही जयमाके नौकर ने उसे पकड़ कर रुपया हाथ में धमना चाहा तब उसने एक भिड़की के साथ कहा—
जाओ ! रेल पर वह अकेली है। कह देना, तार सवेरे ही दे दिया जायगा।'

(३)

तार घर खुलते ही लाहौर तार दे देने के बाद रामेश्वर ने सोचा—उसके जीवन का एक पन्ना जीवन क्रम से अनायास ही अलग होकर जो एक प्रकार की रसमय घटना से रग गया है, उसे दृष्टान् यहाँ अंत करके मुझे अब अगला पन्ना

श्रम कर देना होगा। उसे इस पर दुःख हुआ। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ घटनाएं ऐसी घट जाती हैं, जिनको वह समाप्त कर देना नहीं चाहता उनका सिलासिला बराबर जारी रखना चाहता है। श्याम को सदा के लिए भुला देना होगा—भाग्य का यह विधान उसे बहुत ही कठोर मालूम हुआ। उसकी इच्छा थी कि उसके जीवन ग्रन्थ के अन्तिम पन्ने तक 'श्याम' और 'श्याम की अर्म्मा' का सम्बन्ध चलता रहे—टूटे नहीं; परन्तु अब उनके बीच में २५० से ज्यादा मील का व्यवधान है, और उनके जीवन की दिशाएं भिन्न होने के कारण, उस व्यवधान को क्षण क्षण बढ़ा रही है।

उसके सामने, मानों जीवन की और संसार की शून्यता एक बड़ी-सी-निराशा के रूप में प्रत्यक्ष हो गई। कल जो दो व्यक्ति आपस इस तरह उलझे हुए थे, आज उन्हीं के बीच असम्भाव्यता का ऐसा व्यवधान फैला हुआ है, कि पुर नहीं हो सकता। और कल उन्हें एक-दूसरे को भुला कर अपना समय बिताने की और कुछ तरकीब निकाल लेनी होगी। श्याम को अपने "मामा" को भुलाकर उसके अभाव में ही अपने तई जीवित और प्रसन्न रखना होगा। इसी तरह श्याम को भूल कर रामेश्वर को भी नित्य नियमित जीवनकार्य में लग जाना होगा।

कम्पनी-वाला मे सिर झुकाये हुए, लम्बे-लम्बे उंगो से

५६ मिनट सोचते सोचते इधर उधर घूमने के बाद रामेश्वर ने घर आ कर मा से कहा--“अम्मा, जो कहोगा सा करूंगा। आशा हा तो नौकरी कर लू।”

अम्मा ने कुछ नहीं कहा, बस प्यार किया। उस प्यार का अर्थ था—वेटा, जा चाहे सी कर। मा के लिए तो तू सदा ही वेटा है।

* * * * *

और कार्य के अभाव में रामेश्वर, अनवरत उद्योग से साहित्य समालोचक और राजनीतिक नेता बन बैठा।

(४)

साहौर की जिला काफ़िस के अध्यापक के आसन पर से अपना भाषण समाप्त कर चुकने के बाद, अधिवेशन की पंद्रह दिन की कारवाह समाप्त करके जय रामेश्वर अपने स्थान पर आया, तो उसके कोई १५ मिनट बाद उसके हाथ में एक चिट्ठी दी गई—

“क्या मुझे ४ घंटे पार्क में मिल सकोगे ?”

—“श्याम की अम्मा”

अलीगढ़ वाले सफर के दिन से ३६५ के छह गुने दिन गुजर चुके थे, पर हृदय पटल पर यह दिन जो चिह्न छोड़ गया था, उसे मिटा न सके थे। इस लम्बे काल और उसकी विभिन्न व्यस्तताओं ने उसे शुरू कर दिया था, पर हम पर

के इन शब्दों ने मानो एक दम उसे फिर हरा कर दिया—
उसमें चैतन्य ला दिया ।

रामेश्वर ने सोचा—श्याम !—अहा ! वह भी तो
साध होगा !

समय विताते-विताते जब चार बजने पर रामेश्वर पार्क
में पहुंचा, तो 'श्याम की अम्मा' उसी तरफ आ रही थीं ।

“तुम्हारा नाम क्या है ?”

“रामेश्वर”

“मैं अब नाम से पुकारूंगी । रामेश्वर ! क्या तुम अब
फोटो उतार सकते हो ?”

रामेश्वर ने देखा, वही श्याम की अम्मा है, पर फिर भी
कुछ और हैं । उनके इस व्यग्र आग्रह को समझ नहीं पाया,
योड़ा डरने-सा लगा । बोला—“अभी तो केमेरा नहीं है ।
अभ्यास भी नहीं है ।”

“केमेरा ला नहीं सकते ?”

“अभी ?”

“हां अभी !”

“अभी कहां से मिलेगा ?”

“क्यों ? क्यों नहीं मिलेगा ? तुम तो नेता हो, इतना
नहीं कर सकोगे ?”

“जाता हूँ—कोशिश करूंगा ।”—रामेश्वर ने बड़ा
कड़ा दिल करके यह कह दिया । रामेश्वर जब विदा होकर

कुछ ही दूर गया होगा, कि उन्होंने फिर बुला कर उससे कहा— रामेश्वर मुनो ये रुपये लो, केमेरा न मिल, तो नया खरीद लाओ।

‘नहीं नहीं’

“जाओ—अभी जाओ। जल्दी से लाना, नहीं तो तस्वीर नहीं खिंचेगी—रात हो जायगी।”

रामेश्वर कुछ कह न सका। इस अनुनय पूर्ण आदेश में ऐसा कुछ था जो अनुज्ञघनीय था। वह चल दिया। माँ हत मुदि सी, पागल सी, निर्जीव सी वहीं की वहीं बैठ गई।

घटे भर बाद जब वह केमेरा लाया, तो माँ ने हसने का प्रयत्न किया। आतक वह शायद रो रही थीं।

माँ बड़ी सज धज के साथ आई थीं। जब फोकस ठीक करके रामेश्वर एक दो तीन योलने को हुआ तो माँ ने अपनी सारी शक्ति लगा कर चेहरे पर स्मित हास्य की चमक ले आने का प्रयत्न किया। आह ! वह इसी कितनी रहस्यपूर्ण और कितनी दुःखपूर्ण थी ! कितना ही उसमें उल्लास प्रकट करने का प्रयास था उतना ही उसमें विरम पीडा का प्रत्यक्ष दर्शन था।

फोटो खिंच चुकने पर फिर वह अपना सारा बल लगाकर बड़ी मुश्किल से समाली रहीं और रामेश्वर के समीप आकर बोलीं— ‘एक दिन तुमने श्याम की और मेरी

तस्वीर खींची थी, याद है न ? वह मैंने तुड़वा दी थी !
क्यों, भूल तो नहीं गए ? अब एक काम करोगे ।”

रामेश्वर ने मूक दृष्टि में अपेक्षा और उत्सुक स्वीकृति
भर कर मां को देखा ।

“सुनो, मेरा चित्र तैयार करना !” मां ने भीतर की
जब से एक फोटो निकाल कर देते हुए फिर कहा—“और
यह लो श्याम का चित्र । इन दोनों का एक चित्र तैयार
करना और उसका बड़े-से-बड़ा रूप (Enlargement)
करके अपने यहां लगा लेना । यह काम तुम्हीं करना,
किसी दूसरे को न देना । जानते हो, श्याम तुम्हें प्यार
करता था ? दिल्ली में जब तुम गए थे, वह सो रहा था
जागते ही उसने पूछा—‘अम्मां, तछवील वाले मामा के
आँ हैं?’ जानते हो, अब तुम्हारा श्याम कहां है ? क्या
ताकते हो ? वह मेरी गोद में छिप कर थोड़े ही बैठा है !
यहां नहीं; वह बहुत बड़ी गोद में बैठा है ! देखते हो यह
सब क्या है ? आकाश है । यह आकाश ही परमात्मा की
गोद है । श्याम उसी गोद में छिप बैठा है । दीखता भी तो
नहीं । देखो, चारों तरफ़ आकाश है, चारों तरफ़ देखो, कहीं
दिखता है क्या ? दिखे, तो मुझे भी दिखाना । मैं भी देखूंगी ।
चुपचाप ही चला गया । अगर मैं उसे देख पाऊं, तो
कहूँ—देख, तेरा तछवीलवाला मामा देख रहा है ।—
रामेश्वर, वह तुम्हें याद करता गया है ।”

रामेश्वर का गला रुध रहा था, मानों आसुओं का घूट गले में अटक गया हो । मा की बढ चल रही थी, मानों शरीर की बची खुची शक्ति पकवारगी ही निम्न कर छत्म हो जायगी ।

“जानते हो ।—यही चौथी मार्च का दिन था, इसी दिन इसी बरू बढ गया था । मैं साल भर से इसी चौध मार्च को भटक रही थी । सोच रही थी—तुम मिलोगे, तो तस्वीर खिचवाऊंगी, तस्वीर में हम दोनों साथ रहेंगे और बढ तस्वीर तुम्हारे पास रहेगी । तुम मिल गए, तस्वीर खिच गई । दोनों को मिलाकर तुम एक तस्वीर बनाओगे न ? देखो जरूर बनाना । मैं कहती हूँ जरूर बनाना । बनाना यही से बड़ी बनाना और अपने कमरे में लगाना जहा चाहे भेजना । अलशरों को भेजना, मित्रों का भेजना । जहा दिखें, श्याम और श्याम की अम्मा साथ दिखें । अर जा रही हूँ, उसी के पास जा रही हूँ—सदा उसी के पास रहने जा रही हूँ ।”

मा की हालत शब्द शब्द पर सीण होती जा रही था । मा ने कहा—‘ सुनो, एक महीना हुआ मैं विधवा हो गई । यह भी चौथी ही तारीख थी । चौथी तारीख और मार्च का महीना । आज की यह, चौथी, मार्च का दिन मेरे जीवन का अन्तिम साध का अन्तिम दिन है । आज मुझे भी अन्तर्हित हो जाना है । मने ज़हर खाया है

तीन घंटे होने आये हैं, अब ज़हर की अवधि का अन्तिम क्षण दूर नहीं है। मैं फिर दुनिया में न रहूंगी।”

रामेश्वर के देखते-देखते मां की देह निष्प्राण होकर गिर पड़ी।

× × × ×

लेखकी और लीडरी को गद्दे में डाल रामेश्वर फिर भूली हुई अपनी फ़ोटोग्राफ़री के काम को चेताने लगा। साल भर में उसने श्याम और श्याम की अम्मा का पूर्णकार चित्र तैयार कर पाया। जिस कमरे में वह चित्र लगा, वह उसके आत्मचिन्तन का कमरा बन गया। वहाँ और कोई चित्र न रह सकता था।

अब फ़ोटोग्राफ़ी को ही उसने अपना व्यवसाय और ध्येय बनाया। थोड़े ही समय में वह मार्के का फ़ोटोग्राफ़र हो उठा।

सभी बढ़िया अख़बारों में श्याम और उसकी अम्मा का चित्र निकला और सभी में उसकी सराहना हुई।



श्री चतुरसेन शास्त्री

शास्त्री जी का जन्म सन् १८६१ मे हुआ। आप अच्छे अनुभव-शास्त्री वैद्य हैं। कुछ समय तक आप बम्बई में काम करते रहे, फिर दिल्ली चले आये।



आप अच्छे गद्य लेखक हैं। आपका गद्य काव्यमय होता है। 'हृदय की परख' आपका पहला उपन्यास था, जिसने हिंदी संसार में सूबू हलचल मचा दी थी। फिर आप कहानियां लिखने लगे। इनमें भी आपको अच्छी सफलता मिली है। आप जो

कुछ लिखते हैं दिल से लिखते हैं। आप अपने मन्तव्य के पक्षे हैं। जो उचित समझते हैं उसे लिख कर ही छोड़ते हैं—आलोचना की परवाह नहीं करते।

आपकी भाषा सरस और सजीव होती है।

'हृदय की परख' के अतिरिक्त आपके दो उपन्यास और हैं—

'हृदय की प्यास' और 'शमर अभिलाष'।

आपकी कहानियों के भी दो संग्रह प्रकाशित हुए हैं—'अरत' और 'रत्नकब'।

जैसलमेर की राजकुमारी

राजकुमारी ने हसकर कहा— पिता जी ! दुर्ग की चिन्ता न कीजिए । जब तक उसका एक भी पत्थर पत्थर स मिला है उसकी मैं रक्षा करूंगी । चाहे अलाउद्दीन कितनी ही वीरता से हमारे दुर्ग पर आक्रमण करे, आप निभय होकर शत्रु से लोहा लें ।”

यह जैसलमेर के राठौर दुर्गाधिपति महाराज रत्नासिंह की कन्या थी इस समय बलिष्ठ अरबी घोड़े पर चढ़ी हुई थी, और मदानी पोशाक पहने थी । उसकी कमर में दो तलवारें लटक रही थीं । कमरबन्द में पेशकब्ज, पीठ पर तरकस और हाथ में धनुष था । यह चपल घोड़े की रास को बलपूर्वक खींच रही थी जो एक क्षण भी स्थिर रहना नहीं चाहता था । रत्नासिंह ज़िरह-यज्ञतर पहने एक हाथी के फौलादी होदे पर बैठे आक्रमण के लिए प्रस्थान कर रहे थे । सामने सहस्रावधि राजपूत सवार नगी तलवारें लिये मैदान में खड़े थे । उनके घोड़े दिनदिना रहे थे, और शस्त्र मगमगता रहे थे ।

रत्नसिंह ने पुत्री के कन्धे पर हाथ धरके कहा—“बेटी, तुझसे मुझे पेली ही आशा है । मैंने तुझे पुत्री नहीं—पुत्र की भांति पाला और शिक्षा दी है । मैं दुर्ग को तुझे सौंपकर निश्चिन्त हो रहा हूँ । देखना, सावधान रहना । शत्रु केवल वीर ही नहीं, धूर्त और छलिया भी है ।”

वालिका ने वक्रदृष्टि से पिता को देखा, और हंसकर कहा—“नदी, पिताजी आप निश्चिन्त होकर प्रस्थान करें, किले का एक बाल भी बांका न होगा ।”

रत्नसिंह ने एक तीव्र दृष्टि अपने किले के धूप से चमकते हुए कंगूरो पर डाली, और हाथी बढ़ाया । गगनभेदी जय-निनाद से धरती आसमान कांप उठे । एक विशालकाय अजगर भाति सैन्य किले के फाटक से निकल कर पर्वत की उपत्यका में विलीन हो गई । इसके बाद घोर चीत्कार करके दुर्ग का फाटक वन्द हो गया ।

(२)

टिड्डीदल की भांति शत्रु ने दुर्ग घेर रखा था । सब प्रकार की रसद बाहर से आनी बन्द थी । प्रतिदिन यवन दल गोली और तीरों की वर्षा करता था, पर जैसलमेर का अजेय दुर्ग गर्व से मस्तक उठाये खड़ा था । यवन समझ गये थे कि दुर्ग विजय करना हंसी-ठट्टा नहीं है । दुर्ग रक्षिणी राजनन्दिनी रत्नवती निर्भय अपने दुर्ग में सुरक्षित बैठी

जैसलमेर की राजकुमारी

राजकुमारा ने हसकर कहा— पिता जी ! दुर्ग की विन्ता न कीजिए । जब तक उसका एक भी पत्थर परपर से मिला है उसकी मैं रक्षा करूंगी । चाहे अलाउद्दीन कितनी ही धारता से हमारे दुर्ग पर आक्रमण करे, आप निर्भय होकर शत्रु से लोहा लें ।”

यह जैसलमेर के राठौर दुर्गाधिपति महागव रत्नासिंह की कथा थी इस समय वलिष्ठ अरबी घोड़े पर चढ़ी हुई थी, आर मदाना पोशाक पहने थी । उसकी कमर में दो तलवारें लटक रहीं । कमरबन्द में पेशकब्ज पीठ पर तरकस और हाथ में धनुष था । वह स्वल्प घोड़े की रास को बलपूर्वक मान्य रहा था जो एक क्षण भी स्थिर रहना नहीं चाहता था । रत्नासिंह जिरह-उन्नत पहन एक हाथी के फौलादी होंदे पर बड़े आक्रमण के लिए प्रस्थान कर रहे थे । सामने सहस्रावधि राजपूत सवार नगा तलवारें लिये मैदान में खड़े थे । उनके घाट दिनादना रह व और शस्त्र भ्रमभ्रमता रहे थे ।

रत्नसिंह ने पुत्री के कन्धे पर हाथ धरके कहा—'बेटी, तुझसे मुझे पेली ही आशा है । मैंने तुझे पुत्री नहीं—पुत्र की भांति पाला और शिक्षा दी है । मैं दुर्ग को तुझे सौंपकर निश्चिन्त हो रहा हूँ । देखना, सावधान रहना । शत्रु केवल वीर ही नहीं, धूर्त और छलिया भी है ।'

बालिका ने वक्रदृष्टि से पिता को देखा, और हंसकर कहा—“नहीं, पिताजी आप निश्चिन्त होकर प्रस्थान करें, किले का एक बाल भी बांका न होगा ।”

रत्नसिंह ने एक तीव्र दृष्टि अपने किले के धूप से चमकते हुए कंगूरों पर डाली, और हाथी बढ़ाया । गगनभेदी जय-निनाद से घरती-आसमान कांप उठे । एक विशालकाय अजगर भांति सैन्य किले के फाटक से निकल कर पर्वत की उपत्यका में विलीन हो गई । इसके बाद घोर चीत्कार करके दुर्ग का फाटक बन्द हो गया ।

(२)

टिड्डीदल की भांति शत्रु ने दुर्ग घेर रखा था । सब प्रकार की रसद बाहर से आनी बन्द थी । प्रतिदिन यवन दल गोलियों और तीरों की वर्षा करता था; पर जैसलमेर का अजेय दुर्ग गर्व से मस्तक उठाये खड़ा था । यवन समझ गये थे कि दुर्ग विजय करना हंसी-ठट्टा नहीं है । दुर्ग रक्षिणी राजनन्दिनी रत्नवती निर्भय अपने दुर्ग में सुरक्षित बैठी

शत्रुओं के दात खट्टे कर रही थी। उसकी अर्घीनता में पुराने विश्वस्त राजपूत वीर थे, जो मृत्यु और जीवन को खेल समझते थे। वह अपनी सखियों समेत दुर्ग के किसी युद्ध पर चढ़ जाती, और यवन सेना का ठूँटा उड़ाती हुई वहाँ से सनसनाते तीरों की वर्षा करती। वह कहती—‘मैं खीड़, पर अबला नहीं। मुझ में मर्दों जैसा साहस और हिम्मत है। मेरी सहेलिया भी देखने मर की स्थिया हैं। मैं इन पापिष्ठ यवनों को समझनी क्या हूँ?’

उसकी बातें सुन सहेलिया टटाकर हस देती थीं। प्रयत्न यवनदल द्वारा आकाश दुर्ग में बैठना राजकुमारी के लिए एक विनोद था।

मलिक काफूर एक गुलाम था, जो यवन सेना का अधिपति था। वह दृढ़ता और शांति से राजकुमारी की चोटें सह रहा था। उसने सोचा था कि जय जिले में खाद्यपदार्थ कम हो जायगे दुर्गवश में आजायगा। फिर भी वह समय समय पर दुर्ग पर आक्रमण कर देता था, पर तु दुर्ग की चट्टानों और भारी दीवारों को कोई क्षति नहीं पहुँचती थी। राजकुमारी बहुधा युद्ध पर से कहती—‘ये धूल गर्द उड़ाकर और गोली वर्षाकर मेरे जिले को गंदा और मैला कर रहे हैं। इससे क्या लाभ होगा?’

यवनदल ने एक बार दुर्ग पर प्रयत्न आक्रमण किया। राजकुमारी चुपचाप बैठी रही। जब शत्रु आधी दूर तक

दीवारों पर चढ़ आये, तब भारी भारी पत्थर के ढाँके और गर्म तेल की वह मार पड़ी कि शत्रु-सेना छिन्न भिन्न हो गई। लोगों के मुँह झुलस गये। कितनों की चटनी बन गई। हजारों यवन 'तोवा-तोवा' करके प्राण लेकर भागे। जो प्राचीर तक पहुँचे, उन्हें तलवार के घाट उतार दिया गया।

(३)

सूर्य छिप रहा था। प्राची दिशा लाल लाल हो रही थी। राजकुमारी कुछ चिन्तित-भाव से अति दूर पर्वत की उपत्यका में सूर्य को डूबते हुए देख रही थी। उसे चार दिन से पिता का सन्देश नहीं मिला था। वह सोच रही थी कि इस समय पिता को क्या सहायता दी जा सकती है। वह एक बुर्ज के नीचे बैठ गई। धीरे धीरे अन्धकार बढ़ने लगा। उसने देखा, एक काली मूर्ति धीरे-धीरे पर्वत की तंग राह से किले की ओर अग्रसर हो रहा है। उसने समझा, पिता का सन्देशवाहक होगा। वह चुप-चाप उत्सुक होकर उधर ही देखती रही। उसे आश्चर्य तब हुआ, जब उसने देखा, वह गुप्त द्वार की ओर न जाकर सिंह द्वार की ओर जा रहा है। तब अवश्य शत्रु है। राजकुमारी ने एक तीखा बाण हाथ में लिया, और छिपती हुई उस मूर्ति के साथ ही द्वार की पौर के ऊपर आ गई।

वह मूर्ति एक गठरी को पीठ से उतार कर प्राचीर पर

चढ़ने का उपाय सोच रही थी। राजकुमारी ने धनुष पर बाण चढ़ाकर ललकारकर कहा—‘वहीं खड़ा रह, और अपना अभिप्राय कह ?’

कालरूप राजकुमारी को सम्मुख देख वह व्यक्ति भयभीत स्वर में बोला—‘मुझे किले में आने दीजिये, बहुत जरूरी सन्देश है।’

‘वह सन्देश वहीं से कह।

‘वह अतिशय गोपनीय है।

‘कुछ चिन्ता नहीं कह।’

मैं किले में आकर कहूंगा।

उससे प्रथम यह तीर तेरे कलेजे के पार हो जायगा।

‘महाराज विपत्ति में हूँ मैं उनका चर हूँ।

चिट्ठी हो तो फेंक दे।

जबानी कहना है।

‘जल्दी कह।’

‘यहाँ से नहीं कह सकता।’

तब ले।’— राजकुमारी ने तीर छोड़ दिया। वह उसके कलेजे को पार करता हुआ निकल गया। राजकुमारी ने साटी दी। दो सैनिक आ दानिर हुए। कुमारी की आवाज पा रस्सी के सहारे उढ़ोंने नीचे जा मृत व्यक्ति को देखा— पत्र था। दूसरा व्यक्ति घाँट पर गठरी में पड़ा था। वह देख राजकुमारी जोर से हस पड़ी। इसके बाद वह प्रत्येक

बुर्ज पर घूम-घूमकर प्रबन्ध और पहरे का निरीक्षण कर रही थी। पश्चिमी फाटक पर जाकर उसने देखा—द्वार-रत्नक द्वार पर न था। कुमारी ने पुकार कर कहा—“यहाँ पहरे पर कौन है ?”

एक वृद्ध योद्धा ने आगे बढ़कर कुमारी को मुजरा किया। उसने धीरे-धीरे कुमारी के कान में कुछ और भी कहा। वह हंसती-हंसती बोली—“ऐसा, ऐसा ? अच्छा वे तुम्हें घूस देवेंगे, चाचा जी साहेब ?”

“हा, बेटी !”—“बूढ़ा योद्धा तनिक हंस दिया।” उसने गांठ से सोने की पोटली निकालकर कहा—“यह देखो इतना सोना है।”

“अच्छी बात है।” ठहरो, हम उन्हें पागल बना देंगे। चाचाजी, तुम आधी रात को उनके इच्छानुसार द्वार खोल देना।”

वृद्ध भी हंसता और सिर हिलाता हुआ चला गया।

बारह बज गये थे। चन्द्रमा की चांदनी छिटक रही थी। कुछ आदमी दुर्ग की ओर छिपे छिपे आ रहे थे। उनका सरदार काफूर था। उसके पीछे सौ चुने हुए योद्धा थे। संकेत पाते ही द्वारपाल ने प्रतिज्ञा पूरी की। विशाल महारावदार फाटक खुल गया। सौ व्यक्ति चुपचाप दुर्ग में घुस गये, काफूर ने मन्द स्वर में कहा—“यहाँ तक तो

ठीक हुआ। अब हमें उस गुप्त भाग से दुर्ग के भीतरा महलों में पहुँचा दो, जिसका तुमने वादा किया है।'

राजदूत ने कहा—'म घादे का पन्का हू, मगर चाका सोना तो दा।

'यह तो।

यवन सेनापति ने मुहरों की यैली हाथ में धर दी। राजपूत फाटक का ताला धन्द कर चुपचाप प्राचीर की छाया में चला। वह लोमड़ी की भाँति चपकर खाकर कहीं पायब हो गया।

यवन सैनिक चक्रव्यूह में फस गए, न पीछे का रास्ता मिलता था, न आगे का। वे वास्तव में कैद हो गए थे, और अपनी मूर्खता पर पछता रहे थे। मलिक काफूर दात पीस रहा था। राजकुमारी की सहेलिया इतने चूड़ों को चूहेदानी में फसाकर हस रही थीं।

(४)

यवन सैन्य ने दुर्ग पर भारी घेरा डाल रखा था। खाद्य सामग्री धीरे धीरे कम हो रही थी। घेरे के बीच से किसी का आना अशक्य था। राजपूत मूर्खों मर रहे थे। राजकुमारी का शरीर पीला हो गया था। उसके अंग शिथिल हो गये थे पर नेत्रों का तेज्र वैसा ही था। उसे त्रैदियों के भोजन की पड़ी चिन्ता थी। क्रिले का प्रत्येक आदमी उसे

देवी की भांति पूजता था। उसने मलिक काफूर के पास जाकर कहा—‘यवन-सेनापति ! मुझे तुमसे कुछ परामर्श करना है, मैं विवश हो गई हूँ। दुर्ग में खाद्य-सामग्री बहुत कम हो गई है, और मुझे यह संकोच हो रहा है कि आपकी कैसे अतिथि-सेवा की जाय। अब कल से हम लोग एक मुट्ठी अन्न लेंगे, और आप लोगों को दो मुट्ठी उस समय तक मिलेगा, जब तक कि अन्न दुर्ग में रहेगा। आगे ईश्वर मालिक है।’

मलिक काफूर की आंखों में आंसू भर आये। उसने कहा—‘राजकुमारी ! मुझे यकीन है कि आप बीस किलों को द्विफ़ाज़त कर सकती है।’

‘हां, यदि मेरे पास हों तो !’

राजकुमारी चली आई।

अठारह सप्ताह बीत गये। अलाउद्दीन के गुप्तचर ने आकर शाह को कोर्निस की।

‘क्या राजकुमारी रत्नवती किला देने को तैयार... ..’

‘नहीं खुदावन्द वहां किसी तरकीब से रसद पहुंच गई है। अब क़िला नौ महीने पड़े रहने पर भी हाथ न आयेगा। फिर शाही फ़ौज़ के लिए पानी अब किसी तालाब में नहीं है।’

‘और क्या खबर है ?’

‘रत्नसिंह ने मालवे तक शाही सेना को खदेड़ दिया है।’

अलाउद्दीन इत बुद्धि हो गया, और महाराज से सौ
का प्रस्ताव किया ।

x x x x

मुद्गर प्रभात था । राजकुमारी ने दुग प्राचार पर सख
होकर देण, शाही सेना डेर डडे उखाड कर जा रही ।
और महाराज रजासिंह अपने सूयमुखी मंडे को फइरात
विजयी राजपूतों के साथ दुग की ओर आ रहे हैं ।

मंगल कलश सज थे । बाजे बज रहे थे । दुग में प्रत्या
वीर को पुरस्कार मिल रहा था । मलिक काफूर महाराज क
बगल में बैठे थे । महाराज ने कहा—‘छा साहब । जिते ।
मेरी पैरहाजरी में आपको तकलीफ और असुविधाए हु
होंगी इसके लिए आप माफ करेंगे । युद्ध के नियम सभ
होते ह । फिर जिते पर भारी मुसीबत आई थी । सबक
अकेला थी । जा धन सजा किया ।’

काफूर ने कहा— महाराज । राजकुमारी तो पूजने लायक
है, ये इंसान नहीं करिश्ता दें । मैं ताजिद्दया इनक
मेहरबानी मही मूल सकता ।

महाराज ने एक षड्मूल्य सरपेच उँदें दिया, और पान
का बीछा देकर बिदा किया ।

दुग में धौंसा पन रहा था ।

श्री श्रीराम शर्मा

शर्मा जी ने गल्प लिखने के क्षेत्र में थोड़ी देर से ही प्रवेश किया है। पर इतने थोड़े समय में ही आपकी अच्छी ख्याति हो गई है। आपके गल्प प्रायः 'विशाल-भारत' में निकलते रहते हैं। आपके गल्पों का प्रधान क्षेत्र ग्राम्य जीवन है, साथ ही शिकारी गल्प लिखने में भी आपकी लेखनी खूब चमकती है।

आपकी वर्णन शैली का अपना ही ढंग है। पढ़ते पढ़ते मन नहीं ऊबता। आपकी भाषा सरल, मुहावरेदार और सरस रहती है।

आपकी कहानियों का समूह 'शिकार' नाम से छपा है। उसका हिन्दी साहित्यिकों ने अच्छा आदर किया है।

स्मृति

सायंकाल को ज़र में अफ़ेला जगल से लौटता हूँ तो झुपट हुए सूर्य की किरणें पृथ्वी की ओर संकेत करता हुई माना कहती हैं—'शैशरकाल में हमारी दृष्टि अपने वर्तमान स्थान की ओर थी। इधर आने का हम उतावली हो रही थी, पर मध्याह्न के मद् के उपरांत अनुमथ हुआ—और अब तो हम विलम्ब रही हैं—कि वाट्य काल के माधुय की पुन प्राप्ति अन्वम्भव है ! प रायफलधारी ! शीघ्र ही आयु ढलने पर तू भी हमारी भाति वाट्य काल के लिए विदल होकर आसू यहायगा । अच्छा हो, तू अभी से चेते ।'

मैंने इस चेतावनी को बहुत कुछ सार्धक पाया है । उससे घेदात का पाट पड़ा है । प्रात काल के समय मनुष्य की छाया—दैवी सिगनल—परिचम—अत-की ओर होती है । मानो यह कहनी है कि अयसान पर दृष्टि डाल पर वाट्य काल में विरले ही उधर देखते हैं । कोई देखे भी कैसे और क्यों देखे ! जीवन यात्रा के प्रारम्भ में चारों ओर

हृदय की अन्तरतम लहर और मन की उच्चतम उड़ान तक सञ्ज वाग ही दिखाई पड़ते हैं । वरसात में उगे पौदे को आनेवाले शीत और शीष्म का कुछ पता नहीं होता । उद्गम के समीप के सरिता जल का क्या मालूम कि आगे चलकर संसार की शिलाजत उसमें आकर मिलेगी, और स्वच्छता तथा गंदगी में कितना संघर्ष होगा ! पिल्लो को यह समझ थोड़े ही होती है कि बाल्यावस्था के समाप्त होते ही उनकी स्नेहमयी मां रोटी के एक टुकड़े के लिए उन्हें काटने दौड़ेगी, न मृगशावक को इस बात का ज्ञान होता है कि उसके तनिक पीछे रह जाने पर रंभानेवाली उसकी मां, कुछ बढ़े होने पर, उसकी पासवाली घास तक न चरने देगी । और न इस मनुष्य जाति को बाल्य काल में इस बात का ज्ञान है कि आगे चलकर उसका जीवन इतना कष्टपूर्ण और दुःखमय होगा । पर धीरे-धीरे—ल्यो-ल्यो जीवन-यात्रा बढ़ती जाती है, बाल्य-काल का आशासूची ओसिस (Oasis) मरुभूमि में परिवर्तित होता है । उसका आभास तो युवावस्था का उत्तुंग चोटी से होने लगता है । पर्वत शिखर से जैसे घाटी की दोनों ओर दिखाई पड़ती है—जैसे तराजू की मूठ से दोनों पलकों के हलके-भारी होने को बताया जा सकता है—उसी प्रकार युवावस्था में अतीत का सिंहावलोकन और भविष्य की प्रगति का अनुमान किया जा सकता है । कोई न करे ।

गदला करने का अभियोग लगाया था । डरते डरते घर में घुसा । आशंका थी कि बेर खाने के अपराध में ही तो पेशी न हो, पर आंगन में भाई साहब को पत्र लिखते पाया । अथ पिटने का भ्रम दूर हुआ । हमे देखकर भाई साहब ने कहा—
 “इन पत्रों को ले जाकर मक्खनपुर डाकखाने में डाल आओ । तेजी से जाना, जिससे शाम की डाक में ही ये चिट्ठियाँ निकल जायं । ये बड़ी ज़रूरी है ।”

जाड़े के दिन तो थे ही, तिस पर हवा के प्रकोप से कंपकंपी लग रही थी । हवा मज्जा तक को ठिठुरा रही थी, इसलिए हमने कानों को धोती से बांधा । लू और शीत से बचने के लिए कान बांधे जाते हैं । दुर्ग की रक्षा के लिए चहारदीवारी की रक्षा की जाती है, ताकि उसमें शत्रु का प्रवेश न हो सके । मां ने भुंजाने के लिए थोड़े चने एक धोती में बांध दिये । हम दोनों भाई अपना-अपना डंडा लेकर घर से निकल पड़े । उस समय उस बबूल के डण्डे से जितना मोह था, उतना इस उमर में रायफल से नहीं । मेरा डंडा तो अनेक सांपों के लिए नारायण वाहन हो चुका था । मक्खनपुर स्कूल और गांव के बीच पड़ने वाले आम के पेड़ों से प्रतिवर्ष उससे आम भूरे जाते थे । इस कारण वह मूक डंडा सजीव-सा प्रतीत होता था । प्रसन्नवदन हम दोनों मक्खनपुर की ओर तेजी से बढ़ने लगे । चिट्ठियों को मैंने

वोली की प्रतिध्वनि सुनने की इच्छा थी, पर 'कुपे' में 'ज्यो ही डेला गिरा, त्यों ही एक फुसकार सुनाई पड़ी। कुपे के किनारे खड़े हुए हम सब बालक पहले तो उस फुसकार से ऐसे चकित हो गये, मानो किलोलें करता हुआ मृगसमूह अति समीप के कुत्ते की भोक से चकित हो जाता है। उसके उपरान्त सभी ने उभक उभक कर एक-एक डेला फेंका, और कुपे से आने वाली क्रोधपूर्ण फुसकार पर क्रुद्धकहे लगाये। सांप की फुसकार हमारे लिए अमोद-प्रमोद की सामग्री थी, और ऐसी सामग्री थी जिससे हम बहुत दिनों तक आनन्द ले सकते थे। उस अवस्था में यह खयाल थोड़े ही था कि बेचारे साप के भी जान होती है और डेला लगने से उसे भी कष्ट होता है। हमें तो उसकी फुसकार से मतलब था। यदि वह विरोध-स्वरूप फुसकार न मारता, तो हमारी बाले-क्रीड़ा का भी अन्त हो जाता। हमारा तमाशा था और उसे जान के लाले पड़े थे। गांव से मक्खनपुर जाते और मक्खनपुर से लौटते समय प्रायः प्रतिदिन ही कुपे में डेले डाले जाते थे। मैं तो आगे भाग कर आ जाता था और टोपी को एक हाथ से पकड़ दूसरे हाथ से डेला फेंकता था। यह रोज़ाना की आदत हो गई थी। सांप ने फुसकार करवा लेना, मैं उस समय बड़ा काम-समझता

था। कुप की कैद में इतने दिनों पड़े रहने से साप भी कुछ अपने उस जीवन से अभ्यस्त हो गया था, और बिना देला लगे वह पाद में फुसकार भी नहीं मारता था। देला कुप में गिरा कि फन फैलाकर यह खड़ा हो जाता और देलों की उपेक्षा किया करता। तनिक सा देला लगते ही वह फुसकार से अपना क्रोध प्रकट करता और कुप में इधर उधर घूमा करता, पर उन कारागार से मुक्ति मिलना कठिन था। उस कारागार में वह पड़ा रहता और अपनी उस मूर्खता पर जिसके कारण वह कुप में गिरा था पछताया करता—यदि सापों में पड़ताने की शक्ति होती है तो। अपमान को सहना अथवा अपमान का उत्तर न देना या मन मसोस कर रह जाना मनुष्य-योनी को छोड़ और किसी योनि का धर्म नहीं है। भय होने पर कीड़े मकोड़े और हिरन तक भाग जाते हैं, और भागकर जान बचाना ही उनका धर्म है। घायल होने पर या पकड़े जाने पर आजादी के लिए भरमूर प्रयत्न करेंगे। दात साँग डक और पैरों का उपयोग करेंगे। अकल के पुतले की भाँति पिट हुटकर अपना अपमानित होकर महीनों बाद दफ्ता १०६ में अदासत की ओर भागने की उनकी पान नहीं। उनके अदासत हैं ही नहीं। प्रकृति शासन है, जिसमें विषय नियंत्रण नहीं है। फिर वह साप चोट खाते पर प्रतिपादस्वरूप फुसकार क्यों न मारता—आजादी के लिए क्यों न तड़पता।

जैसे ही हम दोनों उस कुएं की ओर से निकले, तो कुएं में डेला फेंककर फुंकार सुनने की प्रवृत्ति जाग्रत हो गई। मैं कुएं की ओर बढ़ा। छोटा भाई मेरे पीछे ऐसे हो लिया, जैसे बड़े मृगशावक के पीछे छोटा मृगशावक हो लेता है। कुएं के किनारे से एक डेला उठाया और उभरकर एक हाथ से टोपी उतारते हुए सांप पर डेला गिरा दिया, पर मुझ पर तो विजली सी गिर पड़ी। सांप ने फुंकार मारी या नहीं—डेला उसके लगा या नहीं, यह बात अब तक स्मरण नहीं, टोपी के हाथ में लेते ही तीनों चिट्ठियां चकर काटती हुई कुएं में गिर रही थीं। अकस्मात् जैसे घास चरते हुए हिरन की आत्मा गोली से हत होने पर निकल जाती है और वह तड़पता रह जाता है, उसी भांति वे चिट्ठियां क्या टोपी से निकल गईं, मेरी तो जान निकल गई। उनके गिरते ही मैंने उनके पकड़ने के लिए एक झपट्टा भी मारा, ठीक वैसे, जैसे घायल शेर शिकारी को पेड़ पर चढ़ते देख उस पर हमला करता है। पर वे तो पहुंच से बाहर हो चुकी थीं। उनके पकड़ने की घबराहट में मैं स्वयं झटके के कारण कुएं में गिर गया होता।

x x x x

कुएं की पार पर बैठे हम रो रहे थे—छोटा भाई बाँ
मारकर और मैं चुपचाप आँसू डबडबाकर। पतीली

उफान आने से ढकना ऊपर उठ जाता है और पानी बाहर टपक जाता है। निराशा पिटने का भय और उद्वेग से रोने का तूफान आता था। पलकों के ढकने भीतरी भावों को रोकने का प्रयत्न करते थे। पर कपोलों पर आसूँ ढलक ही आते थे। मा की गोद की याद आती थी। जी चाइता था कि मा आकर छाती से लगा लें और लाडल्यार करके कह दें कि कोई बात नहीं चिट्ठिया फिर लिख ली जाएगी। तबीयत करती थी कि रुप में बहुत सी मिट्टी डाल दी जाय और घर जाकर कह दिया जाय कि चिट्ठी डाल आये, पर उस समय भूठ बोलना में जानता ही न था। घर लौट कर सब बोलने से रुई की भांति धुनाई होती। मार के खयाल से शरीर ही नहीं, मन बाप जाता था। अकारण अथवा कसूर पर भी पिटने से हृदय की कोमल कली मुरझा जाती है। मानसिक और शारीरिक विकास रुक जाता है। सब बोलकर पिटने के भावी भय और भूठ बोल कर चिट्ठियों के पहुँचने की जिम्मेदारी के बोझ से दगा, मैं बैठा खिसक रहा था। पास ही रास्ते पर एक खी अर्धन बालक का हाथ पकड़े जा रही थी। उसे देखकर तो कदला-सागर ही उमड़ आया। हृदय के उफान ने पलकों के ढकने को हटा दिया। फाटक खुल गये। अश्रुधारा बह रही थी। इसी सोच विचार में पंद्रह मिनट होने आये। हो रही थी और उधर दिन का सुझावा बढ़ता जाता

था। कहीं भाग जाने को तवीयत करती थी, पर पिटने का भय और जिम्मेदारी की दुधारी तलवार कलेजे पर फिर रही थी।

× × × ×

असंप्रज्ञात समाधि से माया के बन्धन से दूट जाते हैं। दृढ़ संकल्प से दुविधा की वेड़ियां कट जाती हैं। मेरी दुविधा भी दूर हो गई। कुएं में घुसकर चिड़ियों को निकालने का निश्चय किया। कितना भयंकर निर्णय था। पर जो मरने को तैयार हो, उसे क्या? मूर्खता अथवा बुद्धिमत्ता से किसी काम के करने के लिए कोई मौत का मार्ग ही स्वीकार कर ले, और वह भी जान बूझकर, तो फिर वह अकेला संसार से भिड़ने को तैयार हो जाता है। और फल? उसे फल की क्या चिन्ता! फल तो किसी दूसरी शक्ति पर ही निर्भर है। शुभ घड़ी और शुभ मुहूर्त के अनेक कामों का दुखद फल होता है। शुभ घड़ी और शुभ मुहूर्त बुरी नहीं हैं, पर उनमें किया हुआ फल अपने वश की बात नहीं। मुझे अपने निर्णयकाल की घड़ी और मुहूर्त का पता नहीं, पर मेरा निर्णय मेरी अब की दृष्टि से अति भयंकर था। उस समय चिड़ियां लिखने के लिये मैं विषधर से भिड़ने को तैयार हो गया। पांसा फेंक दिया था। मौत का आर्लिगन हो अथवा सांप से बचकर दूसरा जन्म—इसकी कोई चिन्ता

न थी। पर विश्वास यह था कि डंडे से साप को पहले मार दूंगा, तब फिर चिंटिया उड़ा लूंगा। वस इसी दृढ़ विश्वास के बूते पर मैंने कुप में घुसने की ठानी।

छोटा भाई रोता था, और उसके रोने का तात्पर्य था कि मेरी मौत मुझे नीचे सुला रही है, यद्यपि वह शरीर से न कहता था। वास्तव में मौत सनीय और नग्न रूप से कुप में बैठी थी, पर उस नग्न मौत से मुटभेड़ के लिए मुझे भी नग्न होना पड़ा। छोटा भाई भी नगा हुआ। एक घोती मेरी, एक छोटे भाई की, एक चनेगाली, दो कानों से बधी हुई घोतिया—पाच घोतिया और कुछ रस्सी मिलाकर कुप की गहराई के लिए काफ़ी हुई। हम लोगों ने घोतिया एक दूसरी से बांधी और खूब खींच खींच कर आज्ञा माँ ली कि गाँठे कहीं हैं या नहीं। अपनी ओर से कोई घोखे का काम न रखा। घोती के एक सिरे पर डंडा बाधा और उसे कुप में डाल दिया। दूसरे सिरे को डेंग (यह लकड़ी जिस पर चरसपुर टिकता है) के चारों ओर एक चक्कर देकर और एक गाँठ लगाकर छोटे भाई को दे दिया। छोटा भाई केवल आठ घण्टा का था, इसी लिए घोती को डेंग से कड़ी करके बाध दिया और तब उसे खूब मज़बूती से पकड़ने के लिए कहा। मैं कुप में के सहारे घुसने लगा। छोटा भाई फिर रोने लगा। विश्वासन दिलाया कि मैं कुप के नीचे पहुँचते

ही सांप को मार दूंगा, और मेरा विश्वास भी ऐसा ही था। कारण यह था कि उससे पहले मैंने अनेक सांप मारे थे। दो एक को तो जूते या कंकर-पत्थर से मारा था। मैं यह बात उस समय ही जानता था कि सांप को अपने दाईं ओर से होकर मारना चाहिए, और उसको मारने के लिये सबसे अच्छी लकड़ी, अरहर की लग-सांट—है। यदि वह सांप के एक भी कहीं—पूंछ को छोड़ कर—लग जाय, तो वह वहीं-का-वहीं रह जाता है। उसकी हड्डियों की बनावट ऐसी होती है कि वेंट या सांट के लगते ही उसकी हड्डी बेकार सी हो जाती है, और वह वहीं बिलबिलाने लगता है, तब तक दूसरी चोट को अवसर मिलता है। भागते काले सांपों को मैंने इसी प्रकार कई बार मारा था। दो एक बार काटने से भी बचा था, इसलिए कुएं में घुसते समय मुझे सांप का तंत्रिक भी भय न था। उसको मारना मैं बाएं हाथ का खेल समझता था। ऐसा न होता, तो शायद मैं कुएं में घुसने का साहस न करता। हृदय का तूफान तो पहले ही शान्त हो गया था। जो अश्रुधार बहाई थी, वह अपनी असमर्थता पर कि कुएं से चिट्ठिया कैसे निकाली जायं, पर जब घोती के साधन की सूझ हुई, तब तो सन्तोष और प्रसन्नता की सीमा में पहुंच गया। इस समय भी मेरा कद मझौला है, उस समय तो निरा बालक था। घोती के सहारे उतरते समय जोर भुजाओं पर ही अधिक था,

क्योंकि पैरों का पकड़ में घोंठी आती न थी। जैसे जैसे नाच उतरता जाता था हृदय की धड़कन बढ़ती जाती थी कि कहीं साप न मरा ता, चिट्ठियाँ कैसे उठाऊगा। कुप के घरातल से जय चार-पाच गज़ रहा-हुगा, तब ध्यान से नाच का दृष्य अकल चकरा गर। साप फन फैलाये घरातल स एक हाथ ऊपर उठा हुआ लहरा रहा था। पूछ और पूछ क समाप का भाग पृथ्वी पर था, आधा अग्रभाग ऊपर उठा हुआ था मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। नीचे जो उडा वधा था मेरे उतरने की गति से इधर-उधर हिसता था। उसी क कारण शायद मुझे उतरते देख सांप घातक चोट क आसन पर बैठा था। सपेरा जैसे चीन बजाकर जाल साप को खिन्नाता है और साप क्रोधित हो फन फला कर खड़ा होता तथा फुकार मारकर चोट करता है, टाक उन्ही प्रकार साप तैयार था। उसका प्रतिहृद्दी—मे—उसस कुछ हाथ ऊपर घाती पकड़े लटक रहा था। घाना हेंग स बर्षा हाने के कारण कुप के बीचोंबीच लटक रहा थी और मुझ कुप के घरातल की परिधि के बाचाबाच हा उतरना था। इसके माने ये साप से डेढ़ दो फाट—गच नहीं—की दूरी पर पैर रखना, और इतनी दूग पर साप पर रहत हा चोट करता। स्मरण रहे, कये का यास बहुत कम होता है। नीचे तो यह डेढ़

३
 ज स आघक दाना ही नहीं। ऐसी दशा में कुप में मैं

साँप से अधिक-से अधिक चार फुट की दूरी पर रह सकता था, वह भी उस दशा में, जब साँप मुझ से दूर रहने का प्रयत्न करता; पर उतरना तो था कुएं के बीच में, क्योंकि मेरा साधन बीचोबीच लटक रहा था । ऊपर से लटक कर तो साँप नहीं मारा जा सकता था । उतरना तो था ही । थकावट से ऊपर चढ़ भी नहीं सकता था । अब तक अपने प्रतिद्वन्द्वी को पीठ दिखाने का निश्चय नहीं किया था । यदि ऐसा करता भी, तो कुएं के घरातल पर उतरे बिना क्या मैं ऊपर चढ़ सकता था ? धीरे धीरे उतरने लगा । एक एक इंच ज्योज्यों मैं नीचे उतरता जाता था, त्यों-त्यों मेरी एकाग्रचित्तता बढ़ती जाती थी । एकाग्रचित्त में—चित्तवृत्ति-निरोध में—जो विचार-रत्न सूझते हैं, वे व्यग्रचित्त में नहीं । टूटे हीरे का वह मूल्य नहीं होता, जो सम्पूर्ण हीरे का । मुझे भी एक सूझ सूझी । दोनों हाथों से घोती पकड़े हुए मैंने अपने पैर कुएं की बगल से लगा दिये । दीवार से पैर लगाते ही कुछ मिट्टी नीचे गिरी, और साँप ने फूं करके उस पर मुंह मारा । मेरे पैर भी दीवार से हट गये, और मेरी टांगें कमर से समकोण बनाती हुई लटकती रहीं, पर इससे साँप से दूरी और कुएं की परिधि पर उतरने का ढंग मालूम हो गया । तनिक झूलकर मैंने अपने पैर कुएं की बगल से सटाये, और कुछ धके के साथ अपने प्रतिद्वन्द्वी के

लिए स्थान ही न था । लाठी या डंडा चलाने के लिए काफ़ी स्थान चाहिए, जिसमें वे घुमाये जा सकें । सांप को डंडे से दबाया जा सकता था, पर ऐसा करना मानो तोप के मुहरे पर खड़ा होना था । यदि फन या उसके समीप का भाग न दबा, तो फिर वह पलट कर ज़रूर काटता, और फन के पास दवाने की कोई सम्भावना भी होती, तो फिर उसके पास पड़ी हुई दो चिड़ियाँ को कैसे उठाता । दो चिड़ियाँ उसके पास उससे सटी हुई पड़ी थीं और एक मेरी ओर थी । मैं तो चिड़ियाँ लेने ही उतरा था । हम दोनों अपने पैतरोँ पर डटे थे । उस आसन पर खड़े-खड़े मुझे चार-पांच मिनट हो गए । दोनों ओर से मोरचे पड़े हुए थे, पर मेरा मोरचा कमज़ोर था । कहीं सांप मुझ पर झपट पड़ता तो मैं—यदि बहुत करता तो—उसे पकड़ कर, कुचल कर मार देता, पर वह तो अचूक तरल विष मेरे शरीर में पहुंचा ही देता और अपने साथ-साथ मुझे भी ले जाता । अब तक सांप ने वार न किया था, इसलिए मैंने भी उसे डंडे से दवाने का सयाल छोड़ दिया । ऐसा करना भी उचित न था । अब प्रश्न था कि चिड़ियाँ कैसे उठाई जायं । वस, एक सूरत थी । डंडे से सांप की ओर से चिड़ियाँ को संरकाया जाय । यदि सांप दूट पड़ा, तो कोई चारा न था । फुर्ता था, और कोई कपड़ा भी न था, जिसे सांप के मुँह करके उसके फन को पकड़ लूं । मारना या

छेड़छानी न करना—ये दो मार्ग थे। सो पदला मेरी शक्ति के बाहर था। बाध्य होकर दूसरे मार्ग का श्रवणमयन करना पड़ा।

उडे को लेकर ज्यों ही मैंने साप की दाईं ओर पड़ी हुई चिट्ठी की ओर उसे बढ़ाया कि साप का पन पीछे का हुआ। धीरे धीरे उडा चिट्ठी की ओर बढ़ा और ज्यों ही चिट्ठी के पास पहुँचा कि पृथ्वी के साथ काली विजली तड़पी और उडे पर गिरी। हृदय में कम्प हुआ, और दायाँ न आग माना। उडा छूट पड़ा। मैं तो न मालूम कितना ऊपर उड़ल गया। जान बूझकर नहीं, यों ही चिढ़कर। उड़ल कर जो खड़ा हुआ, तो देखा उडे के सिर पर तीन चार स्थानों पर पीय सा कुछ लगा हुआ है। वह चिन था। साप ने मानों अपनी शक्ति का सर्टोफिकेट सामन रख दिया था, पर मैं तो उसकी योग्यता का पहले ही स कायल था। उसी सर्टोफिकेट की ज़रूरत न थी। साप न लगातार पृ पृ करके उडे पर तीन चार चोटें का। वह उडा पहला बार ही इस भाँति अपमानित हुआ था या वह साप का उपद्रास कर रहा था।

उपर उपर पृ पृ और मेरे उड़लने और फिर वहाँ धमाक स पड़ हान से डोटे माइ ने समझा कि मेरा काय मान हो गया और गन्तु का नाता पृ-पृ और धमाके से टूट गया। उसने खयाल किया कि साप के काटने से

मैं गिर गया। मेरे कण्ठ और विरह के खयाल से उसके कोमल हृदय को धक्का लगा। भ्रातृ स्नेह के ताने बाने को चोट लगी। उसकी चीख निकल गई। सिनेमा में कहरणा-पूर्ण दृश्य देखकर मैं इस आयु में भी रो पड़ता हूँ। विरह-वर्णन से मेरी आंखें अब भी सजल हो जाती हैं। शक्काखाने में दूसरे के—गैर के—चीरा लगते देख बहुतों को बेहोशी आ जाती है।

फिर छोटे भाई की आशंका बेजा न थी, पर उस फूँ और धमाके से मेरा साहस कुछ बढ़ गया। दुबारा फिर उसी प्रकार लिफ़ाफ़े को उठाने की चेष्टा की। अब की बार सांप ने वार भी किया और डंडे से चिपट भी गया। डंडा हाथ से छुटा तो नहीं, पर भिन्नक—सहम अथवा आतंक से अपनी ओर को खिंच गया और गुंजलक (Coils) मारता हुआ सांप का पिछला भाग मेरे हाथों से छू गया उफ़! कितना ठंडा था। डंडे को मैंने एक ओर पटक दिया। यदि कहीं उसका दूसरा वार पहले होता, तो उछल कर मैं सांप पर गिरता और न बचता, लेकिन जब जीवन होता है तब हजारों ढंग बचने के निकल आते हैं। वह दैवी रूपा थी। डंडे के मेरी ओर खिंच आने से मेरे और सांप के आसन बदल गए। मैंने तुरन्त ही लिफ़ाफ़े और पोस्ट-कार्ड चुन लिए। चिट्ठियों को धोती के छोर में बांध दिया, और छोटे-भाई ने उन्हें ऊपर खींच लिया।

× × × ×

डहे को साप के पास से उठाने में भी बड़ी कठिनाई पदी । साप उससे द्युलकर उस पर घटना देखर बैठा था । जात तो मेरी हो चुकी थी, पर अपना निशान तथा चुका था । आभे हाथ बढ़ाता, तो साप हाथ पर धार करता, इसलिये कुप की वजह से एक मुट्ठी मिट्टी लेकर मने उसकी दाईं ओर फेंकी कि वह उस पर ऋपटा, और मेने दूसरे हाथ से उसकी बाईं ओर से डहा खींच लिया पर यात-की यात में उसने दूसरी ओर भी धार किया । यदि बीच में डडा न होता, तो पैर में उसके दात (Fangs) गड गप होते ।

+ + + +

विवाद और जीन का मोर भी बड़ा विकट होता है । ऊपर चढ़ना कोई कठिन काम न था । केवल हाथों के सहारे पैरों के बिना कहीं लगाए हुए ३६ फुट ऊपर चढ़ना 'मुम्मेसे अब नहीं हो सकता । १५२० फुट बिना पैरों के सहारे केवल हाथों के बल चढ़ने की हिम्मत रखता हू । कम ही—अधिक नहीं, उस पर ग्यारह बर की आयु में मैं ३६ फुट चढ़ा । पाँह भर गई थी । छाती फूल गई थी । घोंकनी चल रही थी, पर एक एक रींच सम्क सरक कर अपनी मुजाओं के बल में ऊपर चढ आया । यदि हाथ हुट जाते, तो क्या होता, इसका अनुमान करना कठिन है । ऊपर आकर,

बेहाल होकर थोड़ी देर पड़ा रहा । देह को भार-भूर कर धोती और कुर्ता पहना । फिर किशनपुर के लड़के को, जिसने ऊपर चढ़ने की मेरी चेष्टा को देखा था, ताकीद करके कि वह कुएं वाली घटना किसी से न कहे, हम लोग आगे बढ़े ।

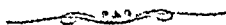
× × × ×

सन् १९१५ में मैट्रीक्यूलेशन पास करने के उपरान्त यह घटना मैंने मां को सुनाई । सजल नेत्रों से मां ने मुझे अपनी गोद में ऐसे बैठा लिया, जैसे चिड़िया अपने बच्चों को डैने के नीचे छिपा लेती है ।

× × × ×

कितने अच्छे थे वे दिन ! उस समय रायफल न थी, डंडा था । और डंडे का शिकार—कम-से-कम उस सांप का शिकार—रायफल के शिकार से कम रोचक और भयानक न था । बालकपन की वह घटना मैं कभी भूल नहीं सकता । उस घटना के साक्षी परमात्मा को छोड़ कर हम तीन हैं; छोटे रुग्ण भाई पं० जगन्नाथ शर्मा, पाती और स्वयं मैं । शायद पास के वृक्ष भी हैं, जो यों ही खड़े हैं । सांप उसी कुएं में दबा पड़ा है । कुएं के स्थान का चिह्न अब भी है, पर वे दिन नहीं हैं, न वह उमंग ! अब तो बस—

“मसरत हुई, हंस लिए दो घड़ी,
मुसीबत पड़ी, रोके चुप हो रहे ।”



श्री जयशङ्कर 'प्रसाद'

जाति के आप वैश्य हैं और एक प्रतिष्ठित कुल के दीपक हैं । आपका जन्म सन् १८६० में हुआ था । आपके पिता ने आपको घर पर ही अच्छी शिक्षा देने का प्रबन्ध किया था ।

पहले पहल आप कविता-क्षेत्र में प्रविष्ट हुए । तत्पश्चात् कहानी और नाटक लिखना शुरू किया । नाटकरचना में आपको इतनी सफलता नहीं मिली । कारण यह है कि रंगमञ्च पर अभिनेय नाटकों की भाषा बड़ी सरल और साधारण जन-ग्राह्य होनी चाहिये, यह बात आपकी भाषा में नहीं ।

आपकी कहानियों के भाव बहुत हृदयाकर्षक होते हैं । उस समय तक आपकी कहानियों के तीन संग्रह और साधे दूरजन के लगभग नाटक प्रकाशित हो चुके हैं । कहानी संग्रहों में आंधी, आकाशदीप और प्रतिध्वनि और नाटकों में जनमेजय का नागयज्ञ, अज्ञातशत्रु, स्कन्द-गुप्त, एक घूंट, चन्द्रगुप्त विशेष उल्लेखनीय हैं । आपका ककाल (न्यास) भी अच्छा विख्यात है । आपके 'तितली' उपन्यास जनता ने अच्छा आदर किया है ।

ममता ।

(१)

रोहतास दुग के एक प्रकोष्ठ में बैठी हुई युवती ममता शोण के तीक्ष्ण गम्भीर प्रवाह को देख रही है। ममता विधवा थी। उसका यौवन शोण के समान ही उमड़ रहा था। मन में बदना, मन्तक में आधी, आँखों में पानी की बरसात के लिए बह सुख के कण्टक शयन में विकल थी। बह रोहतास दुगपति के मंत्री चूड़ामणि की अकेली दुहिता थी, फिर उसके लिये कुछ अभाव होना असम्भव था, परन्तु बह विधवा थी—दिम्बू विधवा संसार में सबसे तुच्छ निराश्रय प्राणी है तब उसकी दिहम्बना का कदा अन्त था ?

चूड़ामणि ने सुपचाप उसके प्रकोष्ठ में प्रवेश किया। शोण के प्रवाह में उसके कल नाद में अपना जीवन मिलाने में बह प्रसुप्त थी। पिता का आना न जान सकी। चूड़ामणि स्थापित हो उठे। खेद पालिता पुत्री के लिए क्या करे, बह स्थिर न कर सकते थे। लौट कर वापस चले गए। ऐसा

प्रायः होता, पर आज मन्त्री के मन में बड़ी दुश्चिन्ता थी।
पैर साँघे न पड़ते थे।

एक पहर रात बीत जाने पर फिर वे ममता के पास
आए। उस समय उनके पीछे दस सेवक चाँदी के बड़े थालों
में कुछ लिए हुए थे, कितने ही मनुष्यों के पद-शब्द सुन
ममता ने घूम कर देखा। मन्त्री ने सब थालों के रखने का
संकेत किया। अनुचर थाल रख कर चले गए।

ममता ने पूछा—यह क्या है पिता जी ?

‘तेरे लिए वेटी ! उपहार है’ कहकर चूड़ामणि ने उसका
आवरण उलट दिया। स्वर्ण का पीलापन उस सुनहली
सन्ध्या में विकीर्ण होने लगा। ममता चौंक उठी—

‘इतना स्वर्ण ! यह कहाँ से आया ?

‘चुप रहो ममता ! यह तुम्हारे लिए है।’

‘तो क्या आपने म्लेच्छ का उत्कोच स्वीकार कर लिया ?
पिता जी ! यह अनर्थ है, अर्थ नहीं। लौटा दीजिए। पिता
जी ! हम लोग ब्राह्मण हैं। इतना सोना लेकर क्या करेंगे ?’

‘इस पतनोन्मुख प्राचीन सामन्त वंश का अन्त समीप है,
वेटी ! किसी भी दिन शेरशाह रोहिताश्व पर अधिकार कर
सकता है। उस दिन मंत्रित्व न रहेगा, तब के लिए वेटी !’

‘हे भगवान ! तब के लिए ! विपद के लिए !
आयोजन ! परम पिता की इच्छा के विरुद्ध इतना साहस
पैताजी ! क्या भीख न मिलेगी ! क्या कोई हिन्दू भृष्ट

न बचा रह जायगा, जो ब्राह्मण को दो मुट्टी अन्न दे सके ! यह असम्भव है । फेर दीजिए पिता जी ! मैं काप रही हूँ— इसकी चमक आँखों को आघात बना रही है !'

मूर्ख है — कहकर चूडामणि चले गए ।

दूसरे दिन जब डालियों का ताता भीतर आ रहा था ब्राह्मण मंत्री चूडामणि का हृदय धक धक करने लगा । यह अपन का राक न सफा । उसने जाकर राक्षिताभ्य दुर्ग के तारण पर डालियों का आवरण खुलवाना चाहा । पठानों ने कहा—

‘यह महिलाओं का अपमान करना है ।’

बात बढ़ गई । तलवारें खिंचीं, ब्राह्मण बर्हों मारा गया और राणा रानी काप सब छली शेरशाह के हाथ पड़े । नकल गई ममता । डाली में भर हुए पठान सैनिक दुर्ग भर में फल गए पर ममता न मिली ।

(२)

काशा के उत्तर धर्मचक्र विहार, मौय और गुप्त सम्राटों का कीर्ति का स्रष्टर था । भग्न-चूड़ा एवं गुल्मों से ढके हुए प्राचार ईदों के दर में रखते हुए भारतीय शिल्प की विभूति प्राप्ति रत्न का चाद्रकामें अपन आपकी शीतल कर रही थी ।

नहा पञ्चवर्गीय भिल्लु गौतम का उपदेश प्रदण करने के लिये पदल मिले थे उसी स्तूप के भग्नावेश की मलिन छाया

मे एक भोंपड़ी के दीपालोक में एक स्त्री पाठ कर रही थी—
‘अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते .’

पाठ रुक गया। एक भीषण और हताश आकृति दीप के मन्द प्रकाश में सामने खड़ी थी। स्त्री उठी, उसने कपाट बंद करना चाहा। परन्तु उस व्यक्ति ने कहा—‘माता! मुझे आश्रय चाहिए।’

‘तुम कौन हो?’ स्त्री ने पूछा।

‘मैं मुगल हूँ। चौसा युद्ध में शेरशाह से विपन्न होकर रक्षा चाहता हूँ। इस रात अब आगे चलने में असमर्थ हूँ।’

‘क्या शेरशाह से?’ स्त्री ने अपने आँठ काट लिए।

‘हां माता!’

‘परन्तु तुम भी वैसे ही क्रूर हो? वही भीषण रक्त की प्यास! वही निष्ठुर प्रतिविम्ब, तुम्हारे मुख पर भी है! सैनिक! मेरी कुटी में स्थान नहीं, जाओ कहीं दूसरा आश्रय खोज लो!’

‘गला सूख रहा है, साथी छूट गए हैं, अश्व गिर पड़ा है—इतना थका हुआ हूँ इतना!’—कहते कहते वह व्यक्ति धम से बैठ गया और उसके सामने ब्रह्माण्ड घूमने लगा। स्त्री ने सोचा, यह विपत्ति कहाँ से आई! उसने जल दिया, मुगल के प्राणों की रक्षा हुई। वह सोचने लगी—‘सब विधर्मी दया के पात्र नहीं—मेरे पिता का वध करने वाले आततायी!’ घृणा से उसका मन विरक्त हो गया।

स्वस्थ होकर मुगल ने कहा—‘माता ! तो फिर मैं चला जाऊँ ?’

स्त्री विचार कर रही थी— मैं ब्राह्मणी हूँ, मुझे तो अपने धर्म—आतिथिदेव की उपासना—का पालन करना चाहिए। परन्तु यहाँ नहीं नहीं सब विघर्षों दया के पात्र नहीं। परन्तु यह दया तो नहीं कर्त्तव्य करना है। तब ?’

मुगल अपनी तलवार टेककर उठ खड़ा हुआ। ममता ने कहा— क्या आश्चर्य है कि तुम भी छल करो, ठहरो !’

छल ! नहीं तब नहीं माता ! जाता हूँ तैमूर का पशु धर स्त्री से छल करेगा ? जाता हूँ। भाग्य का खेल है !’

ममता ने मन में कहा—यहाँ कौन दुग है ! यही झोंपड़ी न जा चाहे ले ले मुझ ता अपना कर्त्तव्य पालन करना पड़ेगा !— यह गहर खला आँस और मुगल से धोली—‘जाओ भीतर, थक हुए भयभीत पथिक। तुम चाहे कोर हो, मैं तुम्हें आश्रय दता हूँ। मैं ब्राह्मण कुमारी हूँ सब अपना धर्म छोड़ दें तो मैं भी क्यों छाड़ूँ ?’ मुगल ने चन्द्रमा के मन्द प्रकाश में यह महिमामय मुखमण्डल देखा उसने मन ही मन नमस्कार किया। ममता पास की दूटा हुई दीवारों में चली गई। भातर थक पथिक ने झोंपड़ी में विधाम किया।

प्रभात में खगडहर का संधि से ममता ने देखा, सँकड़ों जम्बाराहा उम प्रात म मूम रह हैं। यह अपनी मूर्खता पर अपने का कामन लगा।

अब उस भोपड़ी से निकल कर उस पथिक ने कहा—
'मिरज़ा ! मैं यहां हूं ।'

शब्द सुनते ही प्रसन्नता की चीत्कार-ध्वनि से वह प्रान्त गूंज उठा । ममता अधिक भयभीत हुई । पथिक ने कहा—
'वह स्त्री कहां है ? उसे खोज निकालो ।' ममता छिपने के लिए अधिक सचेष्ट हुई । वह मृग दाव में चली गई । दिन भर उसमें से न निकली । संध्या में जब उन लोगों के जाने का उपक्रम हुआ, तो ममता ने सुना, पथिक घोड़े पर सवार होते हुए कह रहा है—'मिरज़ा ! उस स्त्री को मैं कुछ दे न सका । उसका घर बनवा देना, क्योंकि मैंने विपत्ति में वहां विश्राम पाया था । यह स्थान भूलना मत ।' इसके बाद वे चले गए ।

चौसा के मुगल-पठान युद्ध को बहुत दिन बीत गए । ममता अब सत्तर वर्ष की वृद्धा है । वह अपनी भोपड़ी में एक दिन पड़ी थी । शीतकाल का प्रभात था । उसका जीर्ण कंकाल खांसी से गूंज रहा था । ममता की सेवा के लिए गाव की दो तीन स्त्रियां उसे घेरकर बैठी थीं, क्योंकि वह आजीवन सब के सुख दुःख की समभागिनी रही ।

ममता ने जल पीना चाहा, एक स्त्री ने सीपी से जल पिलाया । सहसा एक अश्वारोही उस भोपड़ी के द्वार पर दिखाई पड़ा । वह अपनी धुन में कहने लगा—'मिरज़ा ने जो चित्र बनाकर दिया है, वह तो इती जगह का होना चाहिए । वह बुढ़िया मर गई होगी, अब किससे पूछूं कि एक दि-

शाहशाह हुमायू किस छप्पर के नीचे बैठे थे ? यह घटना भी तो सतालीस वर्ष से ऊपर की हुई ।

ममता ने अपने त्रिक्ल कानों से सुना । उसने पास की स्त्री से कहा— उसे बुलाओ ।

अश्वारोही पास आया । ममता ने रुक रुक कर कहा— 'मैं नहीं जानती कि वह शाहशाह था या साधारण मुगल पर एक दिन इसी भोंपड़ी के नीचे रह रहा । मैंने सुना था कि वह मरा पर मनमान की आज्ञा दे चुका था, मैं आजीवन अपना भोंपड़ी खोदवान के डर से भीतर ही थी । भगवान ने मुन लिया मैं आज इसे छोड़े जाती हूँ । अब तुम इसका मकान बनाओ या महल—मैं अपने चिर विधाम गृह में जाती हूँ ।'

वह अश्वाराही अग्राह् खड़ा था । बुढ़िया के प्राण पक्षी अनन्त में उड़ गए ।

वहा एक अष्टकोण मंदिर बना, और उस पर शिलासेख लगाया गया—

सातों दश क नरेश हुमायू ने एक दिन यहा विधाम किया था । उनके पुत्र अकबर ने उनकी स्मृति में यह गगन चुम्बा मंदिर बनाया था ।

पर उसमें ममता का कहीं नाम नहीं ।



श्री रायकृष्णदास

राय कृष्णदास जी काशी निवासी एक प्रतिष्ठित रईस हैं । आपका जन्म सम्बत् १९४६ में हुआ था । आपके पिता भारतेन्दु जी के बुआ के पुत्र थे । इतने बड़े रईस होने पर भी आपका साहित्य-प्रेम अगाध है । आपके लेखों में कला और प्रेम के शुद्ध स्वरूप की प्रधानता रहती है—इन्हीं के कारण आप हिन्दी के गद्य लेखकों में उच्च कोटि तक पहुँच चुके हैं । आपके 'साधना' गद्य-काव्य ने साहित्य क्षेत्र में पदार्पण करते ही हलचल मचा दी थी । जिस विषय का आप वर्णन करते हैं उसका चित्र-सा खड़ा कर देते हैं ।

आपकी कहानियों में भी गद्य काव्य की ही प्रधानता रहती है और बीच-बीच में आर्या भाषा का भी सुचारु रूप से प्रयोग होता जाता है । जहाँ जहाँ पर आपने अलंकारों का प्रयोग किया है वहीं वहीं पर भाषा और भावों में विशेष सौष्ठव आगया है । आपकी भाषा में घन तत्र उर्दू शब्द रहते हैं, पर समुचित स्थानों पर ।

'साधना' के अतिरिक्त आपके 'प्रवाल' और 'भावुक' तथा 'सुधाद्यु' ने अच्छी ख्याति पाई है । इनमें से पहले दो गद्य-काव्य हैं, शेष इनकी गल्पों के संग्रह ।

माँ की आत्मा

हे मगवान् माँ की आत्मा में तूने कहीं से ममता भर दी है। नि स्वार्थ प्रेम सच्चा छेद, अकृत्रिम प्रणय देखना है तो माँ के हृदय को देखो। यदि आत्मोत्सर्ग का अभ्यास करना हो, तो माता से सीखो। यदि कठुणा का तत्त्व जानना हो तो माता के अतत्करण का अध्ययन करो। यदि परम पवित्र तीर्थ में ज्ञान करना हो तो मा के आसुओं से भीगो। यदि इस पापपूर्ण ससार में देव सेवा करके निष्पाप होना है तो निरन्तर मातृचरण की धूल में लोटो।

“हे राम” ये शब्द मुह से नहीं निकले थे। इनमें एक व्यथित हृदय की समस्त व्यथा भरी हुई थी। ज्वालामुखी से जालपट्टें निकलती हैं उहें कहीं साधारण दीपशिखान समझ लेना। किस अनंत अग्नि को ये बाहर निकालने का उद्योग करती हैं इसका अनुमान कर लेना कोई साधारण काम नहीं। राम तुम्हारे सिवा दुःख में प्राणी किसे पुकार सकता है? हे दान! दुःखियों के एकमात्र आधार इस स्थाय , मय नय य ससार में उहें और कौन आश्रयदाता है!

लंबी साँस के साथ “ हे राम ” कहती हुई, सेवती ने चूड़ी पोसनी शुरू की। छोटा सा घर है। वह कच्चा है। उसमें केवल दो कोठरियाँ, एक दालान और एक छोटा सा आँगन है। आज, माघ के महीने में उसे खड़ा देख कर यही आश्चर्य होता है कि वह पिछली बरसात में टिक कैसे गया !

एक कोठरी में दो खाटे पड़ी हैं। खाटें क्या, भिलंगे हैं। उन पर फटी-पुरानी, मैली-कुचैली कथरी गुदाड़ियाँ धरी हैं। दूसरी कोठरी में एक फटी चटाई, दो फटे बोरे पड़े हैं। वे इस योग्य हैं कि यदि भारत की आर्थिक दशा दिखाने के लिए कोई प्रदर्शनी की जाय, तो उसमें उन्हें सर्वोच्च पुरस्कार (Grand Prize) मिले। एक कोने में दो तीन छोटे बड़े घड़े और झुंझर पड़े हैं। चुड़िया वार-वार आती है और कूद कर उनके गले पर जाकर, उनके भीतर भाँक कर फिर अपने बिल को लौट जाती है। शायद किसी ज़माने में उनमें सौदा-सामान रक्खा जाता रहा होगा। एक ओर एक डोरी पर कई फटे पुराने कपड़े टँगे हैं। बस, इतनी गृहस्थी के बूते पर इस घर के लोग ‘ गृहस्थ ’ कहे जाते हैं।

नहीं नहीं, मैं एक बात तो भूल ही गया। दालान में एक चूल्हा भी है। देखने से जान पड़ता है वह कई

दिनों से नहीं जला। ठीक उसके ऊपर खूटियों में दो काली काली हॉडियाँ टगी ह।

पाठक, यह घर है किसका ? पंडित रामद्विज दूबे का। दूबे जी अब इस सप्ताह में नहीं, उन्हें मरे तीन वर्ष हो चुके। अब उनकी विधवा सेवती और सात बरस का लड़का रामसूरत उनकी स्मृति बनाए हुए हैं।

दूबे जी एक लोथर प्राइमरी स्कूल में अध्यापक थे। उन्हें () मिलते थे उसी में वे सुख दुःख घर चलाते थे। उनके मरने पर घरवालों का कोई आश्रय न रह गया।

आ बेचारी न पढ़ी लिखी थी, न कोई कला-कौशल ही जानती थी। घर का खर्च चलता तो कैसे ? हाँ उसके तन पर कई गहन अश्रय थे। वे एक एक करके आधे दामों पर आरक गय। तब भूखों मरने की नौबत आई। पर माँ की आत्मा भला लड़के का दुःखी देख सकती है ? सेवती ने (५०) पर मकान उधर रख कर साल भर किसी प्रकार उसका पेट भरा। इधर महाजन न तकाजा शुरू किया। पहले तो यह महानों तक टालती रहीं। जब वह उपाय न देख पड़ा तब उसने माफ कह दिया कि भाई रुपये मेरे दिये न दिये जायग तुम्हारे जा मन आव करो। बस इसी की तो प्रताज्ञा जा। महाजन का शील कहीं ! मला महाजनी और शान कहीं एक साथ रह है ! राम कहिये ! ! उसने

चट नालिश करके ५६) पर मकान नीलाम करा लिया ।
३७) की डिगरी घाते में बनी रही ।

आज तीन दिन हुए, उसने सेवती को ज़रानी नोटिस दे दिया कि माघी पूर्णिमा से या तो किराया दिया करो या मकान खाली कर दो । अब तक मैंने बहुत नुकसान उठाया अब नहीं सह सकता ।

गाँववाले उसकी इस दयालुता की भूरे-भूरि प्रशंसा करते हैं । दूसरा नीलामदार होता तो उसने तुरंत कब्ज़ा ले लिया होता । प्रशंसा न करते, तो जाते कहाँ ? सारे गाँव का साहूकार तो वही था ।

रामसूरत को इन सब बातों की कोई चिंता नहीं । चिंता कैसे हो ? एक तो उसकी उम्र नहीं, दूसरे सिर पर माता का छत्र है । वह अपने खेलने-कूदने में मस्त रहता है । जिस दिन मकान नीलाम हो रहा था, वह और लड़कों के संग खड़ा-खड़ा तमाशा देख रहा था ।

जब एक, दो, तीन होकर आखिरी बोली बोली गई थी, तब वह आनन्द की किलकारी मारता हुआ उछलने लगा था । बेचारी माता भीतर बैठी बैठी रक्त के आंसू रो रही थी, और 'उत्तर-राम चरित' के राम की भाँति पुटपाक में पक रही थी । उसको सब से भारी चिन्ता रामसूरत के भविष्य की थी ।

रामसूरत, जाने आज के याद तेरे भाग्य में वे आनन्द की किलकारियाँ हैं या नहीं।'

सेवती में कोई विद्या तो न थी, पर बाहुबल था। उसने घर-घर यह प्रस्ताव किया या तो मुझसे आटा पिसवाया करो पानी भरवाया करो या और जो मेहनत मज़दूरी चाहो, करा लो। पर इस पर कोई कैसे सम्मत होता? भला, हिंदू-समाज पड़ितानी से कहीं चाकरी करा सकता है? ऐसा हो तो वह आज ही रसातल को न चला जाय! अततोभत्या उसे चारों ओर अधिकार ही अधिकार सूझने लगा। किसके लिए? कुछ अपने लिए नहीं, अपने एकमात्र प्राण रामसूरत—लटलू—के लिए। जिस प्रकार कछुद पानी में बंठी-बैठी बालू में गड़े अपने अडों की मंगल कामना किया करती है, उसी भाँति लटलू चाहे जहाँ रहे, सेवती का जी उसी में लगा रहता, उसी की शुभ कामना किया करता।

आज लटलू के सध्या को खाने के लिए घर में कुछ भी नहीं। सत्तू की अन्तिम मुट्ठी खाकर घट खेलने गया है। आज ही क्या आज से आगे सेवती के किये कुछ नहीं हो सकता। यों होने को तो एक उपाय है। पर क्या वह उसके लिए तैयार होगी? कदापि नहीं। इसी से उसने चूड़ी या र प्राण देना निश्चित किया है।

लटलू का कष्ट क्या वह अपनी आँधों देय सकती है ?

कभी नहीं। क्या वह लल्लू से अपने मुँह से कह सकती है 'बेटा, तुम्हारे खाने के लिए कुछ नहीं है।' कभी नहीं, कभी नहीं—ऐसा अवसर आने के पहले ही वह खुशी खुशी प्राण देकर अपना जी ठंडा करेगी।

सेवती, सेवती, तुम यह क्या अनर्थ कर रही हो! सोचो तो, तुम कैसे भयंकर पाप गर्त में कूद रही हो! अब भी समय है। चेत जाओ—'जीवन्नरो भद्रशतानि पश्येत्।' पर नहीं, मैं भूल रहा हूँ, वे भारत के स्वर्णमय दिनों की बातें थीं। अब तो इस अभाग्य देश में दुःख के सिवाय सुख कहां सेवती, तुम मरो, अवश्य मरो, इसी में तुम्हें चिरशांति मिलेगी, हत-भाग्य भारतवासियों, प्राण देने में ही तुम्हारे लिए जीवन है।

चूड़ी पिस गई। सेवती ने उसे जिस धीरज के साथ फाँककर पानी पिया, उस धीरज के साथ शायद ही किसी योगी ने आज तक ब्रह्माण्डद्वारा प्राणवायु-विमोचन के लिए समाधि लगाई हो। परन्तु इसके बाद वह अपने को न संभाल सकी—'हाय लल्लू, अब तेरा क्या होगा! क्या तू सचमुच ही सपना हो जायगा!' कहकर रोते-रोते वह घड़ाम से आँगन में गिर पड़ी। पर शीघ्र ही संभल कर रोती-रोती अपनी टूटी खाट पर जाकर मुँह ढक के पड़ रही।

सोओ सेवती, तुम शांतिपूर्वक महानिद्रा में सोओ, अब लल्लू की विन्ता का समय नहीं। उसके सिर पर भगवान् है।

श्री पट्टमलाल पुत्रालाल बरूशी

बरूशी जी का निवासस्थान मध्यप्रदेश में है। आपके विचार बहुत गहन होते हैं और आपकी रचना में प्रौढ़ता और व्यङ्ग्य का विशेष मिश्रण रहता है। जैसा आपको प्राच्य-साहित्य का अच्छा ज्ञान है वैसा ही आपका परिचय पाश्चात्य साहित्य से भी बहुत है। आपके लेखों से यह स्पष्ट मालूम भी होता है।

श्रीयुक्त महावीरप्रसाद द्विवेदी जी के बाद सरस्वती का सम्पादन-भार आपके ही कंधों पर पटा था। जब तक उसे उठाया खूब निभाया।

आपके 'साहित्यविमर्श' का खूब आदर हुआ है। 'विश्वसाहित्य' भी अच्छा है। 'पंचपात्र' 'प्रदीप' भी आपकी ही कृतियाँ हैं। आपके गल्पों में मानवजीवन का अच्छा चित्र-चित्रण होता है। आपका कहानीसंग्रह 'मूलमला' अद्य प्रकाशित हुआ है। आप कवितार्य भी अच्छी लिखते हैं पर आज्ञोचनात्मक साहित्य आपका प्रधान क्षेत्र है।

गूँगी

गूँगी का नाम था गोमती । पर वह स्त्र बोलती थी । इसीलिए मैंने उसका नाम गूँगी रख दिया था । गूँगी बन जाने पर भी गोमती की वाक् शक्ति कम नहीं हुई । तो भी सब लोग उस गूँगी ही कहते गए ।

गूँगी हम लोगों की दासी विमला की लड़की थी । नीच घर में जन्म देकर भी भगवान् ने उसे कुछ ऐसा रूप दिया था कि उसे देखते ही सब लोग उसे गोद में लेना चाहते थे । वह प्रति दिन अपनी माँ के साथ हमारे घर आती । जब तक विमला घर का काम काज करती, वह मिनी के साथ खेलती जब मिनी पढ़ने के लिए आती, तब वह भी आ जाती । पर वह छुप तो बैठ नहीं सकती थी, इसलिए वह भी मिनी के साथ पढ़ती थी । गूँगी की खुशियाँ भी तीव्र थी । मैंने देखा थोड़े ही दिनों में वह मिनी से आगे बढ़ गई । उसकी ऐसी खुशियाँ देख, मैं उसे स्त्र उत्साह से पढ़ाने लगा । मैं पाँच वर्ष तक
२० रहा, और गूँगी पाँच वर्ष तक मुझसे पढ़ती

रही। जब मुझे विलासपुर छोड़कर कलकत्ता जाना पड़ा, तब गूंगी ११ वर्ष की थी। पर उस समय भी उसने मुझसे 'वालिका-भूषण', 'भूगोल', 'अङ्क-गणित' और 'इतिहास' तक के कुछ अंश पढ़ लिए थे। जाते समय मैं उसे 'रामचरित-मानस' देता गया। मैं जानता था, थोड़े ही दिनों में वह सब भूल जायगी।

कलकत्ता आते ही मेरा भाग्योदय हुआ। साहब की मुझ पर कृपा दृष्टि हुई। मेरी पदोन्नति होने लगी। मैं भी खूब परिश्रम करने लगा। कलकत्ते में मैं १५ वर्ष तक रहा। १५ वर्ष के बाद मैं फ़र्स्ट ग्रेड का डिपुटी-मजिस्ट्रेट होकर श्रीरामपुर चला गया।

शीत काल का प्रारम्भ ही था, पर ठण्ड पड़ने लगी थी। मैं बाहर धूप में कुर्सी डालकर आराम से 'स्टेड्समैन' पढ़ रहा था। कुछ देर पढ़ने के बाद मैंने "स्टेड्समैन" फेंक दिया और एक बार चारों ओर दृष्टि पात किया। मेरे घर के सामने ही एक कुँआ था। प्रति-दिन वहाँ प्रातःकाल स्त्रियों की बड़ी भीड़ रहती थी। उस दिन भी वहाँ स्त्रियों की संख्या कम न थी। मैंने देखा कि हमारे घर की दासी, मालती, भी गगरा लिये बैठी है। इतने में कुछ स्त्रियाँ लकड़ियों का गट्टा सिर पर लिए उधर से निकलीं। मालती ने उनमें से एक को पुकार कर कहा—“लकड़ी बेचोगी?” उसने उत्तर दिया, “क्या दोगी”

मालती कहने लगी—“तू ही कह देना, क्या लेगी !”

उस स्त्री ने कहा—“आठ आना ।”

मालती ने कहा—“यस यहन, हो गया ! यह तो लेने-देने की बात नहीं है ।”

तब उस स्त्री ने कहा—“यहन, छ आने से कम न लूँगी, तुम्हें लेना हो तो लो, नहीं जाती हूँ ।”

यह कहकर यह जाने का उपश्रम भी करने लगी ।

मालती ने कहा,—“मैं तो पाँच आने दूँगी ।” तब यह स्त्री जाने लगी ।

इतने में दूसरी लकड़ीवाली ने उससे कहा—“देदे री, पाँच आने ठीक तो हैं ।”

उस स्त्री ने उत्तर दिया—“नहीं यहन, मैं न दूँगी। छ आने से एक कौड़ी भी कम न लूँगी ।”

तब तब मालती ने गगरा भर लिया था । यह कहने लगी—“अच्छा ला ।

यह स्त्री मालती के साथ आने लगी । उसकी सक्किनी लकड़ीवाली दूसरी ओर चली गई ।

मैंने फिर चश्मा साफ करके ‘स्टेड्समैन’ उठा लिया और पढ़ने लगा । थोड़ा ही पढ़ा था कि मालती आकर कहने लगी—“बाबूजी, लकड़ीवाली लकड़ी रखकर कहाँ गई ? उसने पैसे भी नहीं लिए !”

मैंने कहा—“आती होगी; उसे क्या अपने पैसों की

चिन्ता न होगी ?” मालती चुप हो गई । तब तक धूप कुछ तेज़ हो गई थी । मैंने उससे कहा—“मालती, कुरसी भीतर रख दे ।”

मालती ने वैसा ही किया । मैं भीतर बैठ गया ।

दस बजते ही मैं कचहरी चला गया । दिन-भर मैं काम में लगा रहा । सन्ध्या होते ही मैं घर लौट आया । घर में आकर मैंने देखा कि पुरुषोत्तम बाबू भरे कमरे में बैठे हुए हैं । मैंने प्रसन्नता-सूचक स्वर में कहा—“ओ हो, पुरुषोत्तम बाबू ! इतने दिनों मैं ! मिनी कैसी है ?”

पुरुषोत्तम बाबू ने कहा—“वह भी तो आई है ।”

तब तो मैं पुरुषोत्तम बाबू को छोड़कर भीतर चला । देखा, तो मिनी कमला के साथ बैठी हुई है ।

मिनी ने मुझे प्रणाम किया । मैंने उसे अन्तःकरण से आशीर्वाद दिया । बड़ी देर तक हम लोग बैठे रहे । इधर-उधर की खूब गप्पें होती रहीं । ग्यारह बजे हम लोग सोने लगे ।

दूसरे दिन मैं फिर बाहर कुर्सी डालकर बैठ गया । पुरुषोत्तम बाबू अभी तक सो रहे थे । मैंने 'स्टेड्स्मैन' उठा लिया । थोड़ी देर बाद मैं फिर कुर्से की ओर देखने लगा । आज भी वहाँ स्त्रियों की वैसी ही भीड़ थी । मालती भी गगरा स्त्रिय वहाँ बैठी थी । इतने में पिछले दिन की लकड़ीवाली फिर उधर से निकल पड़ी । मालती ने उसे पुकारकर कहा—

“ओ लकड़ीवाली ! कल तूने पैसे नहीं लिये ?”

यह कहने लगी— ‘यहन आज भी तो लकड़ी लाई हूँ । इन्हें भी ले लो । दोनों का दाम साथ ही ले लूँगी ।’

मालती ने कहा— ‘अच्छा ।’ इतने में पुरुषोत्तम बाबू आगए । मैं उनसे गप्पें मारने लगा । थोड़ी देर में भीतर से ‘चोर ! चोर !’ का हल्ला हुआ । हम लोग घबराकर भीतर दौड़े । देखा, लकड़ीवाली को दरवान ने पकड़ लिया है । मालती आदि चार पाँच और स्त्रियाँ इधर उधर छड़ी थीं; मुझे देखकर सब चुप हो गईं । मैंने पूछा— ‘माजरा क्या है ?’

मालती कहने लगी— ‘बाबू, मैं इस लकड़ीवाली के पैसे लाने के लिये भीतर गई । लौटने पर देखती हूँ कि यह नहीं है । इतने में आपके कमरे में से कुछ आवाज आई । मैं ‘चोर-चोर’ कहकर चिल्लाने लगी । जब दरवान आया, तब यह आपके कमरे में पकड़ी गई ।’

दरवान ने कहा— ‘बाबू इसने अपने कपड़ों में कुछ छिपा लिया है ।’

तब मैंने लकड़ीवाली से पूछा— ‘क्यों, क्या बात है ?’

लकड़ीवाली ने एक थस्ता निकालकर कहा— ‘बाबूजी, मैं इसे रखने के लिये आई थी ।’

मैंने थस्ता खोलकर देखा, तो उसमें ‘रामचरितमानस’ की एक कौपी थी । उसके ऊपरी पृष्ठ पर मेरे हाथ का लिखा

हुआ था-‘गूँगी’ । मैं चौंक पड़ा । तब मैंने लकड़ीवाली की ओर ध्यान से देखा वह मेरी ‘गूँगी’ ही थी । ‘गूँगी !’ मैंने इतना कहा ही था कि वह मेरे पैरों पर गिर पड़ी । क्षण भर के लिए सब भूलकर मैंने उसे गोद में उठा लिया । गूँगी मेरी गोद में रोने लगी ।

श्री चण्डीप्रसाद 'हृदयेश'

हृदयेश जी का जन्म १९५६ वि० में हुआ था। आपको गोलोक सिधारे लगभग दस-न्यारह साल बीत चुके हैं। आप पीलीभीत के रहने वाले थे। आपकी भाषा मधुर और श्लंघित होती थी। श्लंकारों में भी अनुप्रास का आप अधिक प्रयोग करते थे। आख्यायिकाओं के चरित्र-चित्रण में आप सिद्धहस्त थे।

आप हिन्दी साहित्य में एक विशेष धारा चलाना चाहते थे पर उसे कार्यरूप में लाने से पूर्व ही आपको कराल काल ने कवलित कर लिया। आपने कुछ समय तक 'चांद' का संपादन भी किया है। आपके 'संगलप्रभात' ने अच्छी ख्याति पाई थी। आपका 'मनोरमा' उपन्यास भी अच्छा है। आपका 'नन्दननिकुञ्ज' और 'वनमाला' आदि कतिपय गल्प-संग्रह अब तक प्रकाशित हुए हैं। आप कवि भी थे।

प्रतिज्ञा

(१)

जीवन-ज्योति का निवाण ! कदा है ? नैराश्य की कालिमायों कद्रा में, अथवा आनन्द के आलोकमय प्रासाद में ? कल्पना और चिन्ता ! इनका समुचित उत्तर क्या तुम दोनों की सब्र विहारिणी बुद्धि के भी परे है ?

उत्तर हो, या न हो, कतव्य के कठार पथ से भ्रष्ट हो जाने पर जीवन ज्योति अवश्य ही रसातल की अपमान कद्रा में चिरकाल के लिये पतित हो जायगी, भविष्य गगतः के पाल सूर्य की उज्वल आभा अछान सिंधु के भयकर पक्षः स्थल में निश्चय ही विलीन हो जायगी । ऐसे समय जीवन-मरण की विकट समस्या, के समुपस्थित होने पर वीन से मार्ग का अचलम्यन करना होगा ! विभ्रनाथ के विमल

इस प्रातिहारी प्रश्न ने बड़ी हलचल मचा है ।

विभ्रनाथ की अवस्था २० वर्ष की है । बी० ए० पास

होने पर भी उन्हें ग्राम्य जीवन और गामीण वेश ही विशेष प्रिय हैं। जिन्हें अंगरेज़ी पढ़कर अपने देश और वेश से घृणा हो जाती है, शिक्षा के सर्वोच्च सोपान पर पहुँच कर भी जिन में करुणा और विनय का एकान्त अभाव तथा स्वार्थ और अहंकार का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है, जो देश के सर्वस्व का उपभोग करते हुए भी उसके साथ—अपने जन्म-दाता के साथ—विश्वासघात करने में कण-मात्र भी कुंठित नहीं होते, जो देश की दरिद्र संतान से—अन्न दात्री कृपक मंडली से—एक बार हँसकर बोलने में भी अपनी निःसार मान मर्यादा के अपमान की कल्पना करते हैं, उनके—विदेशी सभ्यता के तीव्र आलोक में विचरने वाले ममता-शून्य अहम्मानियों के—विश्वनाथ अपवाद स्वरूप थे।

विश्वनाथ जिस गाँव में रहते थे, वह उन्हीं की ज़िर्मी-दारी में था। विश्वनाथ केवल अपने माता पिता के ही स्नेह-भाजन हों, यह बात न थी। गाँव के छोटे-बड़े धनी-मानी, राव-रंक, सभी विश्वनाथ से समान स्नेह करते थे। विश्वनाथ की करुणा-लहरी भी अनवरुद्ध गति से प्रवाहित होकर सबको समान भाव से शीतल करती थी। गाँव की युवतियाँ उन्हें भाई कहती, गाँव के कपट-शून्य युवक उनसे सहोदर समान स्नेह करते, गाँव की प्रौढ़ा उन्हें अपनी संतान के समान देखतीं और गाँव के बच्चे, बूढ़े उन्हें अपनी आत्मा का दूसरा स्वरूप समझते। प्रकृति क उस परम रम्य

विहार-वन में स्नेह के उम औरममय निकुञ्ज में और शांति के उस पुण्य-उपरन में विभ्वनाथ इस प्रश्न की समुचित समस्या हल करने के लिये व्याकुल हो उठे।

तर्क ! चक्रगति का परित्याग कर दो। नियम ! अपराध का अनादर कर दो। न्याय ! विचार का बहिष्कार कर दो। और सत्य ! तुम अपने ध्रुव आलोकमय रूप में दर्शन देकर विभ्वनाथ के इस हृदय-गगन की इस सदेह-कालिमा को दूर कर दो।

(२)

इस ब्रह्मांड-व्यापी भू-रूप के समय भारत-रूप अपने पैरों पर खड़ा रह सकेगा या नहीं, इस विषय पर विचार करते करते विभ्वनाथ ग्राम-बाहिना कल्लोलिनी के तट पर घूम रहे हैं। दिननाथ अपनी कदण किरणों से सरोजिनी के भ्रतान होते हुए मुख का रसास्वाद पानकर अपनी रसातल-यात्रा में अग्रसर हो रहे हैं। मध्य गगन में अष्टमी का अधचन्द्र मुरन भास्कर के असीम राज्य पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए नियेष समुसुक हो रहा है।

विभ्वनाथ आप ही आप कहने लगे कैसी भयकर परिस्थिति है ! कहाँ है दयताओं के पेरधर्य को पराजित करने वाली बृह विभूति ? स्वप्न हो गई ! ये सब इतिहास शेष बाने हैं। देयता हैं, कमल दत्त विहारिणी भगवती कमला अपने पर सराज क मुरकाप हुए एक पन्नर शेष सरोज की अपनी प्रभु घारा से मित्र कर रही हैं, दबी शारदा भगतावेश मुरन

में बैठकर, अपनी भुवन-मोहिनी वीणा के दृटे हुए तारों को मिलाकर, मर्मगतक गान गा रही है। चली गई सब संपदा ! कहाँ है वह ऋद्धि सिद्धि का अनुपम नृत्य ? कहाँ है वह विश्व विमोहन ऐश्वर्य ? विधि का कैसा भयानक विधान है ? भाग्य नाटक का कैसा मर्मभेदी दुःखात दृश्य है ? आनंद का वह जयोल्लास मानो अनंत गगन में विलीन हो गया, ऐश्वर्य की वह आभा मानो अनंत तिमिर के उदर में शेष हो गई, विभूति मानो श्मशान भूमि में भूति-शेष रह गई !”

कहते कहते विश्वनाथ के लोचन युगल से अश्रु धारा बहने लगी। हृदय में जब भयंकर उत्ताप होता है, कल्पना जब केवल प्रज्वलित प्रदेश में परिभ्रमण करती है, मस्तिष्क जब, चिता-भूमि की भांति, घधकते हुए विचारों का केन्द्र बन जाता है, तब नयनों की अश्रु धारा क्या इस भयंकर अग्नि-त्रयी को शांत करने में समर्थ होती है ?

विश्वनाथ अश्रु-प्रवाह को पोंछकर पुनः कहने लगे—
 “सुनता हूँ विधवाओं का मर्म-भेदी आर्तनाद, शुष्कस्तानी माताओं के मृतप्राय बालकों का भयंकर चीत्कार, दरिद्रता का भीषण अट्टहास, और हाय ! इन सबके बीच में सुनता हूँ सर्वनाशिनी ईर्ष्या की पैशाचिक हँसी ! लज्जा आज शीर्ष-वस्त्रावृता है, शील जठराग्नि में दग्ध होकर विकल हो रहा है, आचार अभाव के कठोर अत्याचार से मृतप्राय हो रहा है

और प्रेम चिंता की मयकर चिंता में दग्ध होकर भस्मान्शेष होना चाहता है। हाँ दैव ।'

विश्वनाथ अत्यन्त उद्विग्न हो उठे। जब दुःख सिन्धु अपनी मर्यादा का उल्लंघन करना चाहता है प्रकांड भूकंप का आघात जब धैर्य शैल को रसातल क गर्भ में ले जाने का उपशम कर रहा है प्रबल पयोद पुञ्ज अपनी भयंकर गचना में जब निर्मल के भद्र चीत्कार को विलीन कर लेना चाहता है तब प्रलय में—जगत् के मीषण परिवर्तन में—विशेष विलम्ब नहीं है।

(३)

रमानाथ और विश्वनाथ वाटय वधु हैं। कल्लोलिनी तट पर निकुञ्ज वन में, दोनों ने अनेक बार अपने अपने सरल हृदय के निदग्ध भावों को एक दूसरे के सम्मुख प्रकट किया है। एक ही भूमि पर दोनों ने सृष्ट की प्रथम किरणों को देखा एक ही भूमि पर दोनों ने मनोहर वाटय जीवन को समाप्त करके यौवन में पदार्पण किया, एक ही कॉलेज में अध्ययन करके दोनों ने बी० ए० की उपाधि प्राप्त की और एक ही मन प्राण होकर दोनों ने अपने अपने जीवन की अमूल्य मणि को एक ही प्रेम सूत्र में पिरोया। रमानाथ विश्वनाथ का यह देर दुलभ प्रगाढ़ प्रेम इस कुत्सित की कपट नाट्यशाला में, धीरामचंद्र और लक्ष्मण के चरित्र की भांति, एक स्वर्गीय हृदय है।

विश्वनाथ आज रमानाथ के बिना ही कल्लोलिनी-तट पर विचरण करने आए थे। यह रमानाथ के लिए प्रथम आश्चर्य था। अपने अतीत जीवन में रमानाथ ने विश्वनाथ के बिना और विश्वनाथ ने रमानाथ के बिना कोई भी कार्य नहीं किया था। नित्य ही दोनों एक स्थान पर भोजन करते, नित्य ही दोनों एक ही कच्चा में अपने अपने अध्ययन में प्रवृत्त होते। आज विश्वनाथ रमानाथ को छोड़कर, अपने चिन्ता-दग्ध हृदय को लेकर, कल्लोलिनी-तट पर कल्पना की सहायता से माता का करुणा-पूर्ण मुख-मण्डल देखते-देखते विचरण कर रहे हैं। यह विश्वनाथ और रमानाथ के प्रेम-इतिहास का एक नूतन अध्याय है।

जिस समय विश्वनाथ अपनी कच्चा से बाहर निकले थे, उस समय रमानाथ सो रहे थे। उन्हें निद्रादेवी की सर्द-संतापहारिणी गोद में छोड़कर विश्वनाथ चले आए थे। रमानाथ ने जागकर देखा कि विश्वनाथ नहीं है। आश्चर्य और आवेग के साथ, संदेह और संशय के साथ, रमानाथ शीघ्रता-पूर्वक कल्लोलिनी-तट के अभिमुख चल दिए।

जिस स्थल पर प्रेम की दो शीतल धाराएं मिलती हैं, उस स्थान को भगवान् की अदृश्य करुणा लहरी प्रयाग-तीर्थ में परिणत करती है। इस पवित्र त्रिवेणी संगम पर स्नान करने वाले, योग दुर्लभ परममद को प्राप्त कर, विश्व को—सतत संसार को—विश्वप्रेम का पवित्र पाठ पढ़ाते हैं।

रमानाथ और विश्वनाथ की सृष्टि क्या भगवान् ने इसी उद्देश्य से नहीं की ?

रमानाथ ने देखा, विश्वनाथ की मुख थी, दिनकरण किरण सतत सुमन की भांति, मलिन हे, स्निग्ध कदना पूर्ण लोचन युगल जल पूण हैं और वसुम कोमल शरीर शिथिल हो रहा है। रमानाथ ने आवेग से उनका हाथ पकड़कर कहा— ' विश्वनाथ !'

विश्वनाथ ने चौंक्कर कहा— 'कोन ? रमानाथ !'

(४)

पतंग प्रिया पद्मिनी, थी विहीन होकर सङ्कुचित हो गई। पक्षिकुल सरक्षक विहीन गायक समाज की भांति, मूक हो गया। प्रकृति, परिश्रम के विधाम की भांति, स्तब्ध हो गई। गगनागण में विहार करता हुआ चन्द्रमा अपनी शुभ्र चद्रिका की शीतल धारा से धरणीदिगी के दिनकर करतल कलेवर का सिंचन करने लगा। कुमुदिनी प्रफुल्लित हो गई। औप धिया अनुकूल नायक को प्राप्त करके अह के अपेश में चमकने लगी। कल्लोलिनी की तरंग माला चन्द्रमा की किरणों खेलने लगी। रमानाथ ने कहा— विश्वनाथ, अपनी इस प्यथा की यात मुझसे न कहकर तुमने मेरे साथ कैसा है, सो तुम जानते हो।

विश्वनाथ ने दुःखित स्वर में कहा— 'भैया, मैं सदा का

दोपी हूँ। तुम्हारे प्रेम का मैंने अनादर किया हो, यह बात नहीं है। तुमसे मैंने कौन-सा रहस्य छिपाया है? वास्तव में मेरे इस जीवन का समस्त इतिहास तो तुम्हारे हृदय की प्रेम-पुस्तक में लिखा हुआ है। भैया, मैं समझता था कि इस विश्व में सहानुभूति और करुणा की शीतल तरंगिणी अनवरुद्ध गति से बढ़ती है। किंतु नहीं, अब देखता हूँ कि प्रवल अत्याचार का प्रकांड पर्वत, द्वेष की कठोर भित्ति, स्वार्थ-प्रवृत्ति का भीषण पापाण समूह, एकमत होकर, पग पग पर, मही-तल के हृदय-तल को शीतल करने वाली इस निर्भरिणी के मार्ग का अवरोध कर रहे हैं। भारत भूमि निर्वलो के रक्त से लाल हो रही है। हिमाचल की कन्दराएँ निरीह बालक-बालिकाओं की कंदन-ध्वनि से परिपूर्ण हो रही हैं। भारतीय गगन मंडल अचलाओं की रोदन-ध्वनि से विदीर्ण हो रहा है। वोलो रमानाथ, विश्वेश्वर का सिंहासन फिर कब डोलेगा?"

कहते-कहते विश्वनाथ फिर अधीर हो उठे। रमानाथ ने भी इस बार आवेश के साथ उत्तर दिया—“डोलेगा! अवश्य डोलेगा! क्यों न डोलेगा! किंतु भाई, जब तक हमारे ही हृदय का करुणा-सिंहासन अचल भाव में स्थित रहेगा, जब तक हमारा रक्त धमनी में जल होकर बहता रहेगा, जब तक समस्त भारत एक मन, एक प्राण होकर एक ही उद्देश्य की ओर प्रधावित नहीं होगा, जब तक अकर्मण्य बनकर केवल कल्पना द्वारा ही भारतवासी, भगवान् की करुणा को पुकारते

(५)

रमानाथ और विश्वनाथ चौक उठे। उन्होंने देखा, एक शतायु संन्यासी सम्मुख खड़ा है। मुख पर अपूर्व तेज है। शरीर अत्यंत सुंदर एवं गठा हुआ है। एक हाथ में त्रिशूल है, दूसरे में भिक्षा पात्र। संन्यासी ने कहा—‘बंधु-द्वय! तुम दोनों की बातें सुनकर मुझे परम सुख प्राप्त हुआ है। चलो, संन्यासी की कुटी को पवित्र करो।’

रमानाथ और विश्वनाथ ने वद्धांजलि प्रणाम किया। संन्यासी ने ईपत् हास्य के साथ कहा—‘विजय हो।’

रमानाथ और विश्वनाथ संन्यासी के पीछे-पीछे चल दिए। गाम-विहारिणी सरिता एक सुन्दर वन में प्रवेश करती है। वास्तव में वह एक विस्तृत वन के मध्य ही में होकर, मधुर कलकल ध्वनि करती हुई, सिंधु पति की ओर अग्रसर होती है। प्रकृति की उस विहार स्थली में सरोजिनी शोभित सरिता के सुरम्य तट पर, संन्यासी की लता-पत्रादि वेष्टित स्व-निर्मित कुटी है। संन्यासी की आक्षा पाकर विश्वनाथ और रमानाथ, कुटी के बाहर ही, चंद्रिका-चर्चित दूर्वा के कोमल आस्तरण पर बैठ गए। संन्यासी भी उनके सम्मुख बैठ गया।

संन्यासी ने कहा—‘युगल बंधु, तुम जानते हो तुम
कर्म-क्षेत्र दुग्ध-फेन-सम कोमल शय्या नहीं, किंतु
दुस्तर मार्ग है? विश्व के समस्त काल्पनिक बंधनों को

शीश पर धारण करके, ऋषि पुंज के मंत्र पूत जल से पवित्र होकर, देवताओं की अविरल पुष्प वृष्टि में, देवांगनाओं के स्वर्गीय संगीत में 'स्वदेश सेवा और सुख' का गम्भीर निनाद करते हुए दो निष्काम युवक संन्यासी कर्तव्य की कठोर भूमि में अवतीर्ण हुए । चन्द्रदेव ने हँसकर कहा—
'शुभास्ते पंथानः ।'

कल्लोलिनी ने कलकल-ध्वनि में कहा—'शुभास्ते पंथानः ।'
अचल ने अचल भाव से कहा—'शुभास्ते पंथानः ।'

मिलाकर गाने लगे । मातृ प्रतिमा मद हास्य करती हुई सुनन लगी—

गान

जयति जयति जनना ।

आवन मूरि, -याति लाचन की अरि कञ्ज सकल प्रथमनी ।
 नित पयोधि परमन पत् पकन, पुण्य पियूष प्रसवना ।
 वारन लन, मन धन जन जीवन पाप प्रशमनी ।
 मागत नित ह यश चरण रति भति-गति मा मन वसनी ।

गान समाप्त होन के बाद सयासी ने कहा—
 ' यधु द्वय, मातृ चरण का स्पर्श करके प्रतिज्ञा करो कि
 हम माता की उत्पत्ति क लिये जीवन दान देकर चेष्टा करने में
 भी पराङ्मुख नहीं होंगे ।

विश्वनाथ और रमानाथ ने मातृ-चरण छूकर प्रतिज्ञा
 की । उसी समय माता के कर सरोजों से विश्वनाथ और
 रमानाथ क गल में दो मालाएँ गिर पड़ीं । माता ने मारों
 विजय-माला पहनाकर कहा—“विजय हो ।

x x x x

उसी रात्रि को उसी पुण्य अयसर में, विश्वनाथ और
 रमानाथ ने अपने कर्तव्य-भाग को ठीक ठीक जान लिया ।
 समार का नि सार मोह यधन काटकर विश्व-प्रेम के अनन्त
 आश्रय का प्राप्त करके, प्रकृति के पुण्य आशीर्वाद

शीश पर धारण करके, ऋषि-पुंज के मंत्र-पूत जल से पवित्र होकर, देवताओं की अविरल पुष्प-वृष्टि में, देवांगनाओं के स्वर्गीय संगीत में 'स्वदेश सेवा और सुख' का गम्भीर निनाद करते हुए दो निष्काम युवक संन्यासी कर्तव्य की कठोर भूमि में अवतीर्ण हुए । चन्द्रदेव ने हँसकर कहा—
'शुभास्ते पंथानः ।'

कल्लोलिनी ने कलकल ध्वनि में कहा—'शुभास्ते पंथानः ।'

अचल ने अचल भाव से कहा—'शुभास्ते पंथानः ।'



मिलाकर गाने लगे । मातृ प्रतिमा मद हास्य करती हुई सुनने लगी—

गान

जयति जयति जननी !

जीवन मूरि, ज्योति लोचन की अरि कुल सकल प्रथमनी !

नित पयोधि परसत पद पकज, पुण्य पिण्ड प्रसवनी !

धारत सन, मन धन जन जीवन पाप प्रथमनी !

मौगत नित हृदयेष' चरण रति मति-गति मो मन बसनी ।

गान समाप्त होने के बाद स यासी ने कहा—
“बधु द्वय, मातृ चरण का स्पर्श करके प्रतिज्ञा करो कि हम माता की उन्नति के लिये जीवन दान देकर चेष्टा करने में भी पराङ्मुख नहीं होंगे।”

विश्वनाथ और रमानाथ ने मातृ-चरण छूकर प्रतिज्ञा की। उसी समय माता के कर सरोजों से विश्वनाथ और रमानाथ के गले में दो 'मालाएँ गिर पड़ीं। माता न मारो विजय-माला पहनाकर कहा—'विजय हो।'

x x x x

उसी रात्रि को उसी पुरुष अवसर में, विश्वनाथ और रमानाथ ने अपने कर्तव्य-मार्ग को ठीक ठीक जान लिया। ससार का नि सार मोह बंधन काटकर विश्व-प्रेम के शनत आश्रय को प्राप्त करके, मूर्ति क पुण्य

शीश पर धारण करके, ऋषि-पुंज के मंत्र-पूत जल से पवित्र होकर, देवताओं की अविरल पुष्प-वृष्टि में, देवांगनाओं के स्वर्गीय संगीत में 'स्वदेश सेवा और सुख' का गम्भीर निनाद करते हुए दो निष्काम युवक संन्यासी कर्तव्य की कठोर भूमि में अवतीर्ण हुए । चन्द्रदेव ने हँसकर कहा—
'शुभास्ते पंथानः ।'

कल्लोलिनी ने कलकल ध्वनि में कहा—'शुभास्ते पंथानः ।'
अचल ने अचल भाव से कहा—'शुभास्ते पंथानः ।'

मिलाकर गाने लगे । मातृ प्रतिमा मद हास्य करती हुई सुनने लगी—

गान

जयति जयति जननी !

जीवन मूर्ति, उद्योति लोचन की, धरि कुञ्ज सकल प्रथमनी !
 नित पयोधि परसत पद पवन, पुण्य पियूष प्रसवनी !
 भारत तन, मन धन जन जीवन पाप प्रशमनी ।
 माँगत नित हृदयेय' चरण रति मति गति मो मन वसनी ।

गान समाप्त होने के बाद सन्यासी ने कहा—
 “यद्यु द्वय, मातृ चरण का स्पर्श करके प्रतिष्ठा करो कि हम माता की उन्नति के लिये जीवन दान देकर चेष्टा करने में भी पराङ्मुख नहीं होंगे ।”

विश्वनाथ और रमानाथ ने मातृ-चरण छूकर प्रतिष्ठा की । उसी समय माता के करसरोजों से विश्वनाथ और रमानाथ के गले में दो मालाएँ गिर पड़ीं । माता ने मातों विजय-माला पहनाकर कहा—“विजय हो ।”

x x x x

उसी रात्रि को उसी पुरुष अथमर में, विश्वनाथ और रमानाथ ने अपने कर्तव्य-भाग को ठीक ठीक जान लिया । ससार का नि सार मोड़ धधन काटकर विश्व-प्रेम के अन्त आश्रय को प्राप्त करके, प्रकृति व पुण्य आशीर्वाद का अपने

शीश पर धारण करके, ऋषि-पुंज के मंत्र-पूत जल से पवित्र होकर, देवताओं की अविरल पुष्प-वृष्टि में, देवांगनाओं के स्वर्गीय संगीत में 'स्वदेश-सेवा और सुख' का गम्भीर निनाद करते हुए दो निष्काम युवक संन्यासी कर्तव्य की कठोर भूमि में अवतीर्ण हुए । चन्द्रदेव ने हँसकर कहा—
'शुभास्ते पंधानः ।'

कल्लोलिनी ने कलकल-ध्वनि में कहा—'शुभास्ते पंधानः ।'
अचल ने अचल भाव से कहा—'शुभास्ते पंधानः ।'

श्री गोविन्दवल्लभ पन्त

पन्त जी का जन्म संवत् १९५६ वि० में हुआ था । आपका जन्म स्थान आल्मोड़ा है । आजकल आप ए०वी स्कूल, रानीखेत में अध्यापक हैं । आपने एक नाटक लिखा था—'वरमाता' । नाटक था तो अच्छा और अपने ढंग का एक ही, पर इसका कुछ बहुत आदर नहीं हुआ । उसके बाद एक आपका नाटक राजमुकुट निकला है । इस नाटक की अच्छी प्रशंसा हुई है । आप अच्छे कहानी-लेखक हैं । आपकी कहानियां हिन्दी की प्रमुख पत्रिकाओं में समय समय पर प्रकाशित होती रहती हैं ।

आपकी रचनाओं में छायावाद का आभास रहता है ।

प्रियदर्शी

(१)

चन्द्रगुप्त का पौत्र अशोक वात्स्यकाल से ही निन्द्य, निमम और नृशंस था। ममघ के सिंहासन पर बैठकर उसने अपने राज्य भर में यह कठोर आज्ञा प्रचारित की कि समस्त बौद्धों के सिर काट लिए जायँ। प्रत्येक नर मुंड के लिए पुरस्कार की घोषणा हुई। चंडगिरि नामक एक दुरात्मा इस काय के लिए नियुक्त किया गया।

शांति की सुविमल सुर सरिता में सद्यः सन्त आयायत फिर लघिराक्त होने लगा। देश के चारों ओर हाहाकार मच गया। कितने ही घरों के दीपक बुझ गए कई जनपद उनाड़ हो गए, कई पुर शमशान बन गए। मुक्त-कुतला, दीनारमणियों के कष्टमय भ्रमण से चंडगिरि का हृदय नहीं पसीजा। छोटे छोटे बालकों के निष्पाप सरल मुख मडलों को देखकर वह द्रवित नहीं हुआ।

अशोक की भीषण आज्ञा और पापात्मा चंडगिरि की कठोर असि के आगे किसी की न चली। वसुंधरा ने शत-सहस्र मुंडों की माला धारण की। इस भयानक रक्त-पात से भारत-माता थर-थर काँपने लगी। आँखों से छल छल अध्रु धारा बहाने लगी।

(२)

मथुरा पुरी में एक वृद्ध वणिक् रहता था। श्याम-सलिला यमुना के तट पर उसकी गगनचुम्बी अट्टालिका थी। अट्टालिका का सौंदर्य और विस्तार वणिक् की अतुल धन-राशि का परिचय देता था। उसके समुद्र नाम का एक पुत्र था, जो वाणिज्य सम्बन्धी कार्य के लिये देशांतर में था।

जो पुष्प सबसे सुंदर और सरस होता है, उसी पर मधु भक्तिका सबसे पहले आक्रमण करती है, जो देश सबसे अधिक धन-धान्य और प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण होता है, उसी पर विदेशी आधिपत्य स्थापित कर उसे पददलित करते हैं, जो वृक्ष सबसे ऊँचा होता है, उसी पर पहले वज्र गिरता है। सौंदर्य दुःख का जनक है, लक्ष्मी क्लेशों की जननी है, उत्थान ही पतन का मूल कारण है।

छिपते हुए सूर्य की स्वर्ण-वर्ण आभा से प्रकाशित वणिक् की सुविशाल अट्टालिका पर तस्करो को दृष्टि पड़ी। अट्टालिका के भीतर रहने वाली अवगुंठनवती लक्ष्मी का मुख भी

उन्होंने कल्पना और अनुमान के नेत्रों से देख लिया । इस फिर क्या था ? एक दिन वे शून्य निर्जन में एकत्र हुए, और उस वणिक् का सशस्त्र दृश्य करना निश्चित किया ।

अमावस्या की तामसी रात्रि थी । उस अँधेरी रात्रि के आतक से चन्द्रमा आकाश में पदापण नहीं करता, मनुष्य गृह के द्वार बंद कर लेता है, पशु कूटियों और गुफाओं में छिप जाते हैं पत्नी पेड़ की सर्वोच्च शाखा पर स्थित नौड़ में विधाम करते हैं । कहते हैं, वृद्ध भी उस समय अपनी सुगंध को कोरक में बंद करके सो जाते हैं, आति से अपरिचित तरंगिणी भी रुक जाती है । ऐसे भवानक समय में उस दस्यु दल ने एक हाथ में मशाल और दूसरे हाथ में खड्ग लेकर उस धेड़ी के प्रासाद की ओर प्रस्थान किया ।

वृद्ध वणिक् सुप्त की आशा और प्रतीक्षा करते करते सो गया था । अचानक मूर्तिमान् दु ख ने उसे पुकारा, उसका द्वार खटखटाया उसके द्वार की शृंखला कूनकनार ।

वृद्ध अर्द्ध निशा की उस अर्द्ध निद्रा से चौंकर उठा, और उसने अचतुले गजद्वार से बाहर देखा । दस्युओं का एक दल सिंह द्वार पर उसके प्रहरियों को विद्युद्देग से मृमि शाय कर रहा है । वणिक् ने द्वार बंदकर एक दु ख भरी चान्कार छोड़ी । उस चान्कार से उसकी स्त्री, उसका पुत्रधू और उसका नव जात पौत्र तीनों जाग उठे । उस समय दस्यु-दल द्वार तोड़कर भीतर आ गया था ।

मनुष्य का हृदय रखकर भी जब दस्युओं को गलित अंग और पलित केशवाले वृद्ध और उसकी वृद्धा गृहिणी की उन आँखों को, जो आलोक के स्थान में अश्रुओं से पूर्ण थी, देखकर दया न आई, तो वे खड्ग, जिनके आँखें न थी, जो जड़ थे, क्या देखते ? किसे देखकर दया आती ?

चार दस्युओं ने खड्ग उठाए—चार खड्गों की 'धार' में वृद्ध दंपति और संसार के सुखों का संपूर्ण भोग न किए हुए माता और पुत्र के जीवन न जाने किस दिशा को बह गए ।

दस्यु-गण सब रत्नाभरण, मणि-मुक्ता, मुद्रा सुवर्ण एकत्र करके चले । जाते समय मशालों से उस गृह में आग लगा गए । जिस गृह ने वणिक कुटुंब को जीते-जी स्थान दिया था, उसी गृह ने चिता बनकर अपनी उभ्र भेदी ज्वालाओं में उन्हें अपनाया । यह स्वामी के ऋण का परिशोध था !

घड़ी भर पहले जहाँ सदन था, वहाँ मसान बन गया ! जो संगीत-निमग्न थे, उनकी मृत्यु पर कोई रोनेवाला भी न रहा । मनुष्य जिस जीवन के लिये घोर युद्ध, घोर अत्याचार करता है, जिस देह के स्वास्थ्य और सौंदर्य के लिये अनेक चिंताएँ किया करता है, जिस सुख का इतना गर्व करता है, वे कहीं पर जाकर पर्यवासित हुए ! कैसा यह संसार है ! कितना यह क्षणिक है !

दो पक्ष वाद की बात है । समुद्र विदेश से लौट रहा था,

अपरिमित धनोपाजन कर नाना प्रकार की कल्पनाओं में निमग्न होता आ रहा था। वह माता पिता के तीर्थ चरणों के दशन की इच्छा लिए विरह विकला प्रियतमा के मिलन का सुख लिए, सुन्दर बालक की अस्फुट वाणी और अर्द्ध विकसित हास्य की स्मृति लिए यव को योजन और पल को प्रहर अनुभव करते हुए आ रहा था। आह ! उस समय उससे कौन कहता कि "समुद्र कहीं जा रहे हो ? तुम्हारा घर इस ससार में कहीं नहीं है। सदन द्वार के समीप प्रमात समय काक पक्षी की ध्वनि को तुम्हारे आगमन की पूर्व सूचना समझकर हर्षोत्फुल्ल होनेवाली तुम्हारी माता अब इस पृथ्वी पर तुम्हें खोजने से भी नहीं मिल सकती। जहाँ से तुमने उस दिन विदेश गमन किया था, शिशु को गोद में लेकर, उस पथ को निमिषहीन नेत्रों से सध्या के अत और रात्रि के प्रारम्भ तक देखनेवाली तुम्हारी अर्द्धांगिनी इस विश्व में कहीं नहीं है। वह सर्वस्य देने पर भी नहीं लौट सकती। लौटो समुद्र, किसी का कहीं घर नहीं है किसी क कोई माता पिता नहीं है, किसी क कोई स्त्री पुत्र नहीं है, सब मरोचिका है, सब माया है।'

प्रमात का आरम्भ था। समुद्र अपने गृह से आधे कोस की दूरी पर सुन्दर रथ में बैठा हुआ आ रहा था। उसके पीछे कई रथों में उसका उपार्णित धन आदि सामग्री थी। क्रमशः समुद्र अपने गृह के निकट पहुँचा। जहाँ उसको

सुप्रशस्त श्रद्धालिका देखने का विश्वास था, वहाँ उसने क्या देखा—एक भस्म स्तूप !

समुद्र ने चौंककर सारथी से पूछा—“तुम पथ तो नहीं भूले ?” सारथी ने चकित होकर उत्तर दिया—“नहीं, स्वामी !”

“फिर—?” समुद्र इसके आगे कुछ न कह सका । उसका मस्तक चकराने लगा; स्थिर आकाश घूमता हुआ देख पड़ा—श्रविराम-प्रवाहिनी यमुना स्थित प्रतीत हुई !

रथ उस भस्म-स्तूप के निकट आ लगा । समुद्र ने देखा, वह वही स्थल था, जहाँ से यमुना पार के वृक्षों के झुरमुट में छिपे हुए नंद-नंदन के मंदिर का सर्वोच्च हेम-कलश उसे नित्य दिखाई देता था । आज भी वह उसे उसी प्रकार दिखाई दिया । मंदिर ऊपर मुक्त आकाश में फहरानेवाली ध्वजा भी उसी रंग-ढंग से फहरा रही थी । मंदिर के घण्टे का रव भी उसी भाँति भरे स्वर में था । यमुना के इस पार उसने देखा—उसके पूज्यपाद पिता की बनवाई सोपान-श्रेणी वही थी । यह आँखों का भ्रम नहीं था, स्मृति की भूल नहीं थी ।

समुद्र का हृदय दूने-चौगुने वेग से स्पंदित होने लगा । वह रथ से विद्युद्देग से उतरा । रत्न खचित मुकुट भूमिशायी हुआ, पादत्राण न जाने कहाँ गिर गए, उत्तरीय रथ में उलझ कर फट गया, रत्न हार छिन्न होकर पृथ्वी में बिखर गया ।

बह एक विलसित की भाँति रथ से उतरकर भस्म-स्तूप की आर दौड़ा। अचानक उसे समीप ही एक परिधिता, प्रतिवेशिना वृद्धा मिली। बह रिक्त कलश लिए सरोवर को आ रही थी। वृद्धा ने उसे देखते ही दीर्घ श्वास त्यागकर कहा—
‘हाय ! भाग्य-हीन समुद्र !’

समुद्र का मस्तक सङ्कुचित हुआ, दौड़ हिले आँधे विस्फारित हुई। वृद्धा का हाथ पकड़कर उसने एक साँस में कहा— देवा देवी, तुम यह क्या कहती हो ? तुम्हारे शरीर में अमृत का आभास पाया जाता है। मेरे गृह में कुशलता है ?

“तुम्हारे गृह के साथ ही कुशल चली गई”-वृद्धा ने दुर्घटाकर यह कहा। आश्चर्य और दुःख के आवेग में समुद्र ने कहा—‘क्या ? क्या ? हमारी अट्टालिका कहाँ है ?’

वृद्धा ने शोक में डूबे हुए स्वर से कहा—‘दस्युओं ने चला डाला !’

इस आघात को सहनकर समुद्र ने पूछा—‘माता पितृ’
वृद्धा ने नीरव रह कर कर एक दीर्घ श्वास ली, समुद्र का धय जाता रहा। उसने विरक्त होकर पूछा—“स्त्री-पुत्र ?”

वृद्धा का आँसू से अध्रु गिरन लगे। समुद्र ने कहा—
‘रताआ रताआ मा तुम चुप क्यों हो ? कहे, कहे, मेरे स्मरण मरा सुखसान्नाय मरा स्वर्ग कहाँ गया !’

वृद्धा ने पहले आकाश और फिर पृथ्वी की ओर संकेत करके कहा—“उसकी इच्छा !”

समुद्र ने विद्वल होकर पूछा—“क्या सब भस्मसात् हो गए ?”

वृद्धा—“हां, दस्युओं ने तुम्हारी संपत्ति लूट ली, तुम्हारा गृह जला डाला, और उस अग्नि में तुम्हारे माता, पिता, स्त्री, पुत्र सब भस्मीभूत हो गए।”

समुद्र ‘हाय !’ कहकर मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा।

(३)

समुद्र स्वजन और सर्वस्व से हीन होकर संसार के प्रति वीत राग हुआ। जो कुछ संपत्ति वह अपने साथ लाया था, सो सब उसने दीन दुखियों को बांट दी। कौपेय चरित्र के स्थान में काषाय चीर धारण किया। मस्तक के सुवासित तैल-सिक्क केश गुच्छ काट कर सिर का मुंडन किया। रत्नाभूषण विहीन करो मे भग्न मृत्तिका-पात्र लिया। पुष्प की कोमलता में कंटक की तीक्ष्णता का अनुभव करने वाले चरण द्वय उपानह हीन किए, और प्रव्रज्या लेकर बुद्ध-धर्म और संघ की शरण ली।

इसके बाद उसने ज्ञानान्वेषण के लिए बौद्ध-धर्मियों का सत्संग किया, बौद्ध-तीर्थों का परिभ्रमण किया। इन्द्रियों का दमन किया, और उन पर विजय पाई। माया के पाश को

तोडा और शांति पाइ । अनेक वर्ष के बाद वह पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर पाटलिपुत्र नगर में आया ।

पाटलिपुत्र में उन दिनों राजा अशोक अहिंसावती बौद्धों के निर्दोष रहने की नदिया बढ़ा रहा था । समस्त वैश्य ग्रहण कर दिए गए थे, विहारों में आग लगा दी गई थी । समुद्र ने एक भग्न मठ में जाकर निवास किया ।

चंडगिरि को जब यह समाचार ज्ञात हुआ कि पाटलिपुत्र में एक बौद्ध आया है तो उसने उसका सिर काट लाने के लिए एक सशस्त्र सैनिक भेजा ।

सैनिक ने जाकर देखा एक सौम्य मूर्ति, ज्ञान के दिव्य लोक से जिनका मुख मडल ही नहीं, समस्त शरीर भासमान था एक घट वृक्ष के नीचे मुद्रासनस्थ है । सैनिक के दृष्टि से तलवार झनककर गिर पड़ी । वह स्वामी का काय भूल गया । उसने पातर भाव से भिक्षु के चरणों को छुआ । भिक्षु ने उसे आशीर्वाद दिया—' धर्म में मति हो । क्या चाहते हो वरस !'

सैनिक— भगवान् की दया ।'

समुद्र—' यह तो प्रत्येक पल्लव से बरस रही है वरस ! आओ, उसमें ज्ञान कर पवित्रता और शांति प्राप्त करो ।'

सैनिक—' मुझे क्षमा करो भिक्षु भेष । मैं आपका प्राण नाश करने आया था । मुझे जीवन दो ।'

भिन्नु समुद्र ने स्मित आनन से कहा—‘तो तुमने मेरी हत्या करने से हाथ क्यों खींच लिया ?’

सैनिक ने दीन होकर कहा—‘क्या इस स्थिर, शांत मूर्ति के ऊपर किसी की तलवार उठ सकती है ? यह गर्दन तलवार के लिये नहीं, भक्ति के पुष्पहार के लिये है । जब संसार का मंगल करने वाले भिन्नु की हत्या की जायगी, तो संसार के दुरात्माओं के दंड की क्या व्यवस्था होगी ? भगवन्, मैं आपकी दया का भिखारी हूँ, राजा के दिए हुए दंड को हँसते-हँसते सह लूँगा ।’

‘यह राजा का दंड कैसा ?’—भिन्नु ने आश्चर्य-मुद्रा से कहा ।

सैनिक—‘क्या आपको विदित नहीं है ? महाराज अशोक ने समस्त बौद्धों के विनाश की कठोर आज्ञा राज्य भर में प्रचारित की है । उसी के अनुसार मैं आपका वध करने आया था ।’

भिन्नु—‘फिर तुमने मेरे बदले अपने स्वामी की आज्ञा का वध क्यों किया ? यह तो स्वामी के प्रति विश्वास घात है ।’

सैनिक—‘किंतु इस लोक के बाद भी एक महालोक है । उसका भी एक स्वामी है । यह उस स्वामी की भक्ति है ।’

अमण समुद्र ने मुग्ध होकर कहा—‘धन्य सैनिक, तुम्हारा ज्ञान धन्य है । आज्ञाओं, मैं तुम्हें तथागत अमिताभ के प्रेम से परिपूर्ण साम्राज्य का पथ बतलाऊँगा ।’

जब चडगिरि को ज्ञात हुआ कि उसके भेजे हुए सैनिक ने समुद्र से बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण कर ली है, तो वह क्रोध से लाल हो उठा। उसने तत्क्षण चार सैनिकों को आशा दी—'जाओ शीघ्र उन दोनों राजसों के द्विज मुद्र मर समीप उपस्थित करो। तुम्हें प्रचुर पुरस्कार दिया जायगा।'

सैनिक नगी तलवारें चमकाते हुए चले। मठ में पहुँचकर उन्होंने यों ही बौद्ध भिक्षु और उस सैनिक का घेरे करने के लिए तलवार उठाई परमेश्वर की सीला, उन दोनों के मस्तकों के बदल चारों सैनिकों के मुँह कटकर दूर जा पड़े। बौद्ध भिक्षु ने यह दुःखद दृश्य देखकर एक चीत्कार छोड़ी। नयान भिक्षु सैनिक धर्म की शक्ति का प्रत्यक्ष उदाहरण देख कर कुछ विस्मित हुआ कुछ मुस्कराया।

यथा समय चडगिरि के पास समाचार गया कि बौद्ध भिक्षु समुद्र से प्रथम प्रेषित सैनिक की सहायता से चारों भानकों का मार डाला है। यह समाचार सुनकर चडगिरि के क्रोध का सामा न रही। उसके मुँह का घण तप्त लौह के समान लाल हो उठा। उसकी बाणी काँपने लगी। यह रूप पद दलित सब का तरह फुकारते हुए, प्रसित सिद्ध की भाँति उदात्त हुए तलवार लेकर उन दोनों के घेरे को चला।

जब वहाँ जाकर, बिजली के समान अक्षिपट होकर,

मेघ के समान गरजते हुए कहा—“नराधमो, तुम्हें ज्ञात है ? तुम्हारे इस पाप का क्या दंड है ?”

समुद्र ने शांत शब्द से कहा—“किस पाप का ?”

चंड०—“महाराज अशोक के भेजे हुए इन सैनिकों के प्राण-वध का !”

समुद्र—“यह प्राण-वध किसने किया है ?”

चंड०—“तुमने !”

समुद्र—“मैंने ?—एक बौद्ध श्रमण ने ? जिसका मंत्र प्रेम है, जिसका धर्म विश्व मात्र पर दया है, जिसका मोक्ष अहिंसा है, जिसका स्वर्ग भी अहिंसा ही है, वह प्राणि वध करेगा ?”

चंड०—“दांभिक श्रमण ! पाखंडी भिक्षु ! आर्यावर्त में नास्तिकता फैलाने वालो ! मैं तुम्हें खूब जानता हूँ। तुमने इनका वध नहीं किया, तो क्या ये सैनिक स्वयं ही कटकर गिर गए ?”

समुद्र—“हाँ, स्वयं ही कटकर गिर गए। श्रमण हिंसा नहीं करता; न वह बोधिसत्त्व की आज्ञा के अनुसार असत्य ही बोलता है।”

चंड०—“सैनिक तुम्हारा वध करने आए, और स्वयं उनका ही वध हो गया ! तलवार गर्दन काटने चली, और स्वयं दो-टुकड़े होकर भूमि पर गिर पड़ी। क्या इससे

अधिक अनिश्चयोंके अधिन असत्य इस पृथ्वी पर कोई दूसरी यात हो सकती है ।

यदि आपका इसका विश्वास नहीं है, नो लीजिए, मैं गर्दन नीची करता हूँ, आप तलवार ऊँची करें—यह कह कर समुद्र ने अपनी गर्दन झुकाई ।

चडगिरि ने तलवार उठाकर कहा—‘हाँ, यह ठीक है ।’

अचानक वह रुक गया, धमण के कथन की सत्यता के विचार स वह भय भीत हो गया । उसने सोचा—‘यदि भिन्नु की बात सच हुई तो मेरा मुँह पृथ्वी पर होगा । तब सत्यासत्य का विचार करने वाला ही कहाँ रहेगा ? दूसरे, मेरी नव विवाहिता पत्नी विधवा हो जायगी ।

प्राणों का मोह मरते बढ़ा है । धन के लिये मनुष्य धर्म की उल्लिखता है । भोग विलास के लिये धन को तुच्छ समझता है । किन्तु निधिल विलास पूण इद्र की अमरावती क लिए भी वह प्राणों का निद्रायर नहीं कर सकता ।

चडगिरि ने तलवार नीची कर कुछ देर तक सोचा । एकाएक उमने कहा— इस तरह नहीं एक दूसरी तरह मैं तुम्हारे सत्य की परीक्षा करता हूँ । तुम अपना दाढ़ना हाथ शिला छड पर रक्खो, मैं इस पर आघात करता हूँ ।’

भिन्न न अपना हाथ शिला छड पर रक्खा, चडगिरि ने गम पर तलवार चलवाई । भिन्नु का हाथ वायु निर्मित हाथ की तरह अतक रहा । उसके स्थानमें तलवार सहित पाठक

चंडगिरि की दाहनी भुजा दूर जा गिरी । आहत और भय-भीत चंडगिरि विकट चीत्कार करता हुआ, अपने दुर्दिन और दुर्भाग्य को कोसता हुआ, शोणितारु हाथ को लेकर नगर की ओर दौड़ा गया ।

(४)

महाराजा अशोक के समीप जाकर उसने कहा—
‘भगवन्, मेरे ऊपर दया करिए, अपना यह कठोर कार्य-भार मुझ से लेकर किसी और के सिर पर रखिए ।’

अशोक ने चकित होकर कहा—‘क्यों वीर ! तुम्हारी इस विह्वलता का क्या कारण है ? हैं ! तुम्हारा यह हाथ किसने काट डाला ?’

चंडगिरि ने कहा—‘यह मेरे पाप का प्रायश्चित्त है । इस हाथ से मैंने अपने जन्म देने वाले माता पिता का वध किया, अनेक निरापराध वीरों का वध किया, अनेक माता-पिताओं को पुत्र हीन और पुत्रों को अनाथ किया था, यह उसी का दंड है ।’

अशोक ने अधिक आश्चर्ययुक्त होकर कहा—‘इसे कौन दंड कहता है ? किसने तुम्हें यह दंड दिया ?’

चंड०—‘उसने, जो वास्तविक दंड दाता है ।’

अशोक—‘वह कौन है ? किसने सुतसिंह को छोड़ा है—मृत्यु को जगाया है ? क्या वह अशोक के आतंक से परिचित नहीं है ? बताओ, वह कौन है ?’

चड०— ब्राह्मण और बौद्ध, दोनों का पिता परमेश्वर । मैं आप से बौद्धों का वध नहीं करूँगा । प्रत्यक्ष परमेश्वर ने प्रकट होकर चेतावनी दी है ।'

अशोक ने शासक स्वर में कहा—'हैं तुम क्या कहते हो ? सत्सार शूद्र से इन नास्तिक बौद्धों का नाम श्रेय करना प्रत्येक का धर्म है । उपवन की उन्नति क लिये काटों को पकड़ कर चतुर उद्यान रक्षक उनमें अग्नि स्थापित करता है, जिसमें वे काटे उड़कर पुष्प लताओं के जीवन में बाधा न बनें ।'

चड०—'किंतु कोई भी उद्यान रक्षक वसंत की कुसुमित लता को काटकर अग्नि का समर्पित नहीं करता । क्या ये बौद्ध सत्सार के कटक हों ? इन्होंने आर्यावत का कौन सा अनिष्ट किया है ?-यही न किये सचित्र अहिंसा और प्रेम के परिश्रम का प्रचार करते फिरते हैं । क्या अहिंसा और प्रेम अधर्म है ? आज तक मैं सोया हुआ था, मेरी दोनों आँखें बन्द थीं । मुझ पर आपका जादू चल गया । आज मैं जाग गया हूँ, मेरे अंतर क नेत्र खुल गये हैं । मैं स्पष्ट रूप से देख रहा हूँ—ब्राह्मण और बौद्ध, दोनों एक ही पिता की सतान हैं । आपको कोई अधिकार नहीं कि आप बौद्धों का रक्त बहावें, उनकी धन संपत्ति लूट लें, उनके वास स्थान में आग लगा दें उनके प्राण प्रिय दारा, मुन आदि को उनके सम्मुख ही काटकर दो टुकड़े कर दें ।'

प्रहरी ने विनम्र होकर कहा—“देव के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा है।”

अशोक ने तलवार हाथ में ली, और वह घोड़े पर चढ़ कर स्वयं बौद्ध-भिक्षु का वध करने को चले।

भिक्षु समुद्र उसी वट-वृक्ष के नीचे ध्यानावस्थित होकर बैठे थे। नवीन संन्यासी वह सैनिक समीप के किसी ग्राम में भिक्षा के लिए गया हुआ था। भिक्षु को देखते ही अशोक का रक्त उबलने लगा। घोड़े का एक बकुल के वृक्ष से बांध कर अशोक तलवार झनकारते हुए आगे बढ़े। भिक्षु की उस ओर पीठ थी।

अशोक ने बिना कुछ वाक्य-व्यय किए अपने अंग की समस्त शक्ति भुजा में केन्द्रित कर उस भिक्षु के ऊपर तलवार चलाई।

मगर फल क्या हुआ? भिक्षु की गर्दन छूते ही तलवार कोमल पुष्प की माला बन कर उसके कापाय शोभित वक्षःस्थल पर झूलने लगी! अशोक ने भिक्षु को देखा। उसकी दृष्टि में आश्चर्य भरा था। भिक्षु ने अशोक को देखा। उसकी दृष्टि में प्रेम था। आश्चर्य और प्रेम का सम्मिलन हुआ। उस सम्मिलन से अशोक के हृदय के भीतर एक महाक्रांति पैदा हुई। हिंसा भाव के विरुद्ध प्रेम-भाव ने शस्त्र हाथ में लिया। अधर्म को पराजित कर धर्म ने हृदय के आसन पर अधिकार जमाया।

अशोक—“एक नास्तिक के भगवान् रक्षक है !”

चड०— निस्सन्देह ।”

अशोक— ‘यह दुर्शीलता ! यह उद्दता !”

चड०— ‘सत्य उद्दता नहीं है । मैं या आप क्या ससार की कोई शक्ति उसका बाल भी बाका नहीं कर सकता ।”

अशोक— ‘शात हो ।’

चड०—“सत्य पर परदा डालना पाप है ।”

अशोक— ‘तुम्हें ज्ञात है इसका क्या फल होगा ?”

चड०—“हा, मेरा बच । उसके लिए प्रस्तुत हूँ, मुझ बर्दा काजिए ।’

अशोक की आँखें लाल हो गई, भ्रुकुटि ने विक्रम रूप धारण किया, श्रोत्राधर क्रोध से कापने लगे । उन्होंने प्रहरा को आज्ञा दी—जाओ, चार सैनिकों को बुलाओ, और हमारा घोड़ा तैयार करो ।’

सैनिकों के आने पर अशोक ने उन्हें आज्ञा दी— ‘इसका बर्दा करो । आज के तीसरे दिन गगातीरस्थ सुविस्तृत मदान में पाटलिपुत्र के समस्त नर नारी एकत्र किए जायेंगे । वहीं इस राज द्रोही को प्राण दंड और समस्त जनता की शिक्षा मिलेगी ।

जो आज्ञा —बहकर सैनिकों ने अभिवादन किया और चले गए ।

अशोक ने पुकारा—“प्रहरा, अभ्य उपास्थित है !”

प्रहरी ने विनम्र होकर कहा—“देव के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा है।”

अशोक ने तलवार हाथ में ली, और वह घोड़े पर चढ़ कर स्वयं बौद्ध-भिक्षु का वध करने को चले।

भिक्षु समुद्र उसी वट-वृक्ष के नीचे ध्यानावस्थित होकर बैठे थे। तर्बान संन्यासी वह सैनिक समीप के किसी ग्राम में भिक्षा के लिए गया हुआ था। भिक्षु को देखते ही अशोक का रक्त उबलने लगा। घोड़े का एक बकुल के वृक्ष से बांध कर अशोक तलवार झनकारते हुए आगे बढ़े। भिक्षु की उस ओर पीठ थी।

अशोक ने बिना कुछ वाक्य-व्यय किए अपने अंग की समस्त शक्ति भुजा में केन्द्रित कर उस भिक्षु के ऊपर तलवार चलाई।

मगर फल क्या हुआ? भिक्षु की गर्दन छूते ही तलवार कोमल पुष्प की माला बन कर उसके कापाय शोभित वक्ष-स्थल पर झूलने लगी! अशोक ने भिक्षु को देखा। उसकी दृष्टि में आश्चर्य भरा था। भिक्षु ने अशोक को देखा। उसकी दृष्टि में प्रेम था। आश्चर्य और प्रेम का सम्मिलन हुआ। उस सम्मिलन से अशोक के हृदय के भीतर एक महाक्रांति पैदा हुई। हिंसा भाव के विरुद्ध प्रेम-भाव ने शस्त्र हाथ में लिया। अधर्म को पराजित कर धर्म ने हृदय के आसन पर अधिकार जमाया।

समुद्र ने ध्यान भंग होने पर देखा, एक सुन्दर काति विशिष्ट, राजकीय परिधान स शोभित, बलवान् युवक उसके समीप, एक अपराधी की भाति विनत बदन, यद्ग कर और कपित हृदय लिए खड़ा है ।

भिक्षु के स्पर्श से जब जड़ अपना स्वभाव भूल गया, तो मनुष्य की उनके दर्शन से क्या दशा हुई कौन कह सकता है ?

भिक्षु ने करुणा मिश्रित वाणी से कहा—' कौन ?'

अशोक—' मगधाधिपति—अशोक ।'

भिक्षु—'एक भिक्षु से मगधाधिपति क्या चाहते हैं ?'

अशोक— एक भिक्षा ।'

भिक्षु—' कैसी ?'

अशोक—'मेरे हाथ निरपराध मनुष्यों के रक्त से सने हैं। मेरी आँखों में प्रायश्चित के आसू दो, जिसमें मैं अपने रक्त रजित हाथ उन आँसूओं से धो सकूँ ।'

भिक्षु—' जाआ यही होगा । आज के एक सप्ताह बाद तुम्हें महास्थगिर उपगुप्त क दर्शन होंगे । उनके निकट बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण करना, तुम्हारे सब सत्ताप दूर होंगे ।'

अशोक आनन्द मग्न होकर भिक्षु के चरणों को छूकर विदा होने लगे ।

भिक्षु समुद्र न थाधा देकर कहा— और सुनो, ठहरो । जिस बौद्ध धर्म का सधनाश करने पर तुम कटि यद्ग हुए थे अब उसकी उन्नति ही तुम्हारे जीवन की सर्वोच्च साधना

होगी । यह मेरा आशीर्वाद है । आज से तुम्हारा नाम 'प्रियदर्शी' हुआ ।'

अशोक ने भिक्षु के चरणों पर अपना मस्तक रख दिया । भिक्षु ने स्नेह-पुलकित हृदय से उनके मुकुट मंडित मस्तक में अपने हस्तद्वय स्थापित किए ।

भारत, चीन, जापान, तिब्बत, वर्मा, सिंहल, जावा, सुमात्रा, फ़ारस, रोम, यूनान, मिश्र, अरब के आदि लोगों ने एक भाषा और एक स्वर में उच्चारण किया—'नमो बुद्धाय !'

उस ध्वनि ने मर्त्य लोक, सुर लोक और नाग लोक, तीनों को प्रकंपित कर दिया !

श्री शिवपूजनसहाय

आपका निवास-स्थान विहार प्रान्त में है । आपकी भाषा अपने ही ढंग की निराली है । जितना हिंदी-मुहावरों का समुचित प्रयोग आप करते हैं उतना किसी दूसरे ने अब तक नहीं किया । भाषा की उत्कृष्टता के साथ-साथ अलंकार का खूब मिश्रण रहता है । अलंकारों में भी अनुप्रास का अधिक । आपको भाषा के सचे कलावित् कहना अत्युक्ति नहीं । भाषा-सौन्दर्य-मुग्ध होकर कभी कभी आप ध्येय विषय से ज़रा दूर रह जाते हैं, पर जो लोग किसी एक धुन के पकड़े होते हैं उनके लिये यह घात साधारण है ।

आपकी 'महिला-महत्त्व', 'देहाती दुनियां' पुस्तकों का अच्युत आदर हुआ है । पहले आप 'बालक' का सम्पादन करते थे और उसी में आपके कई लेख भी निकलते थे । अब आप 'गंगा' के सम्पादक हैं ।



मुण्डमाल्य

आज उदयपुर के चौक में चारों ओर वही चहल पहल है। नवयुवकों में नवीन उत्साह उमड़ उठा है। मालुम होता है कि किसी ने यहा के कुओं में उमग का भग घोल दी है। नवयुवकों का मूँछों में पेंठ भरी हुए है। आँखों में ललार छा गई है। सब की पगडी पर देशानुराग की कनगी लगी हुए है। हर तरफ़ से वीरता की ललकार सुन पड़ती है। बाँके लडाके वीरों के कलेजे रणभेरी सुन कर चागुने होते जा रहे हैं। नगाहों से तो नाकों में दम हो चला है। उदयपुर की घरती घोंसे की धुधफार से डगमग कर रही है। रण रोष से भरे हुए घोड़े उनके की चोट पर उड़ रहे हैं। मतवाले हाथी हर ओर से, काले मेघ की तरह उमड़े चले आते हैं। घटों की आवाज से समूचा नगर गूँज रहा है। शस्त्रों की भनकार और शखों के शब्द से दसों दिशाएँ सरस शब्द मयी हो रही हैं। बड़े अभिमान से फहराती हुए, विजय-पताका राजपूतों की कीर्ति लता सी सहराती है। स्वच्छ

आकाश के दर्पण में अपने मनोहर मुखड़े निहारने वाले महलों की ऊँची-ऊँची अटारियो पर चारों ओर सुन्दरी-सुहागिनियों और कुमारी कन्याएँ भर-भर अंचल फूल लिये खड़ी हैं, सूरज की चमकीली किरणों की उज्ज्वल धारा से धोए हुए आकाश में चुभने वाले कलश, महलों के मुँड़ेरों पर, मुसकरा रहे हैं। बन्दीवृन्द विशद विरुदावली बखानने में व्यस्त है।

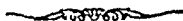
महाराणा राजसिंह के समर्थ सरदार चूड़ावतजी. आज औरंगज़ेब का दर्प दलन करने और उसके अन्धाधुन्ध अन्धेर का उचित उत्तर देने जाने वाले हैं। यद्यपि उनकी अवस्था अभी अठारह वर्षों से अधिक नहीं है, तथापि जङ्गी जोश के मोरे वे इतने फूल गये हैं कि कवच में नहीं अँटते। उनके हृदय में सामरिक उत्तेजना की लहर लहरा रही है। घोड़े पर सवार होने के लिए वे ज्यों ही हाथ में लगाम थाम कर उचकना चाहते हैं, त्यों ही अनायास उनकी दृष्टि सामने वाले महल की भँभरीदार खिड़की पर, जहाँ उनकी नवोढ़ा पत्नी खड़ी है, जा पड़ती है।

हाड़ा-वंश की सुलक्षणा, सुशीला और सुन्दरी सुकुमारी कन्या से आपका ब्याह हुए दो-चार दिनों से अधिक नहीं हुआ होगा। अभी नवोढ़ा रानी के हाथ का कंकण हाथ ही की शोभा बढ़ा रहा है। अभी चाँद बादल ही के अन्दर छिपा हुआ था; किन्तु नहीं, आज तो उदयपुर की

नाश्री और व्यसनों से विरक्त होकर इस समय केवल वीरत्व धारण कीजिए । मेरा मोह-झोह छोड़ दीजिए । भारत की महिलाएँ स्वार्थ के लिये सत्य का संहार करना नहीं चाहती । आर्य महिलाओं के लिए समस्त संसार की सारी संपत्तियों से बढ़कर “सतीत्व ही अमूल्य धन है !” जिस दिन मेरे तुच्छ साँसारिक सुखों की भोग-लालसा के कारण मेरी एक प्यारी बहन का सतीत्व-रत्न लुप्त जायगा, उसी दिन मेरा जातीय-गौरव अरवली-शिखर के ऊँचे मस्तक से गिर कर चकना-चूर हो जायगा । यदि नवविवाहिता उर्मिलादेवी ने वीर-शिरोमणि लक्ष्मण को साँसारिक सुखोपभोग के लिए कर्त्तव्य-पालन से विमुख कर दिया होता तो, क्या कभी लखनलाल को अक्षय्य यश लूटने का अवसर मिलता ? वीर-बधूटी उत्तरादेवी ने यदि अभिमन्यु को भोग विलास के भयङ्कर बन्धन में जकड़ दिया होता तो, क्या वे देव-दुर्लभ गति को पाकर भारतीय क्षत्रिय-नन्दनों में अग्रगण्य होते ? मैं समझती हूँ कि याद तारा की बात मानकर वाली भी, घर के कोने में मुँह छिपा कर, डरपोक-जैसा छिपा हुआ, रह गया होता तो उसे वैसी पवित्र मृत्यु कदापि नसीब न होती । सती-शिरोमणि सीतादेवी की सतीत्व-रक्षा के लिए जरा-जर्जर जटायु ने अपनी जान तक गँवाई जरूर, लेकिन उसने जो कीर्ति कमाई और बधाई पाई, सो आज तक किसी कवि की कल्पना में भी नहीं समाई । वीरों का यह रक्त मांस का

अटारियों पर से सुन्दरियों ने भर-भर अञ्जली फूलों की वर्षा की, मानों स्वर्ग की मानिनी अप्सराओं ने पुष्पवृष्टि की। बाजे-गाजे के शब्दों के साथ घबराता हुआ आकाश फाड़ने वाला, एक गम्भीर स्वर चारों ओर से गूँज उठा—

“धन्य मुण्डमाल्य” !!!



दिन रात झूठी रहती थी । इसी साधना ने उसकी कर्त्तव्य-शक्ति को अटूट बना दिया था । इसी कर्त्तव्य शक्ति के सहारे वह जीवन संग्राम में वीरता पूर्वक लड़ रही थी ।

मज़दूरी करके वह अपने बेटे को पढ़ा रही थी । आप भूखी रह जाती, पर दयानिधि को दिन में तीन बार अवश्य खिलाती । उसके तन पर वस्त्र है या नहीं, इसकी कोई परवाह नहीं, पर बेटे के शरीर पर कभी मैला वस्त्र न रहने देती, पुत्र की सुख-सुविधा के लिए वह जो कुछ कर सकती थी, करती थी । पर साथ ही इस बात का भी ध्यान रखती थी कि उसके दुलार का दुरुपयोग तो नहीं हो रहा है ? उसके अध्ययन और आचरण की निगरानी करते समय उसकी प्यार की आँखें प्रभुत्व के प्रकाश से चमकने लगती थी । उस समय वह माता से पिता बन जाती थी ।

(२)

माता की तपस्या व्यर्थ नहीं गई । दयानिधि बड़ा ही अच्छा लड़का निकला । स्कूल भर में उसके पैना सौम्य, सुशील और कर्त्तव्य-परायण बालक कोई था ही नहीं । उसकी गम्भीरता पर सभी मुग्ध रहते थे । उसकी अध्ययन-शीलता का अनुकरण करने के लिए उसके सहपाठी तरसते रहते थे । उसका चरित्र औरों के लिए आदर्श था । यह सब तो था, पर उसके हृदय के भीतर एक प्रकार की हलचल मची रहती थी । जब उसे अच्छा नहीं मालूम होता था कि

गिर रहा है। अब भी समय है। शक्तिसिंह के हृदय में भाई की ममता उमड़ पड़ी।

एक आवाज़ हुई—रुको !

दूसरे क्षण शक्तिसिंह की बन्दूक छूटी, पलक मारते दोनों मुगल-सरदार जहाँ-के तहाँ ढेर हो गये। महाराणा ने क्रोध से आँख चढ़ाकर देखा। वे आँखें पूछ रही थी—क्या मेरे प्राण पाकर तुम निहाल हो जाओगे? इतने राजपूतों के खून से तुम्हारी हिंसा-वृत्ति नहीं हुई?

किन्तु यह क्या, शक्तिसिंह तो महाराणा के सामने नत मस्तक सड़ा था। वह बच्चों की तरह फूट-फूटकर रो रहा था। शक्तिसिंह ने कहा—नाथ ! सेवक अज्ञान में भूल गया था, आज्ञा हो तो इन चरणों पर अपना शीश चढ़ाकर पद-प्रक्षालन कर लूँ, प्रायश्चित्त कर लूँ!

राणा ने अपनी दोनों बाँहें फैला दीं। दोनों के गले आपस में मिल गये, दोनों की आँखें स्नेह की वर्षा करने लगीं। दोनों के हृदय गद्गद हो गये।

इस शुभ मुहूर्त्त पर पहाड़ी वृक्षों ने पुष्प वर्षा की, नदी की कल-कल धाराओं ने वन्दना की।

प्रताप ने डबडबाई हुई आँखों से ही देखा—उनका चिर-सहचर प्यारा 'चेतक' दम तोड़ रहा है। सामने ही शक्तिसिंह का घोड़ा सड़ा था।

